पुस्तक चयन और पुस्तकालय विज्ञान की अन्य दिशाएँ

डॉ॰ रामेश्वर नारायण 'रमेश'

पु-168

Pustak Chayan Aur Pustakalaya Vigyan Ki Anya Dishain

by

Dr. Rameshwar Narayan 'Ramesh'

प्रथम संस्करण : १९९० © लेखक मूल्य : ३५.०० रुपये

साहित्य भवन (प्रा०) लि०, ९३, के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित तथा एस० ए० प्रिन्टर्स, २९८/ए, दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित ।

विषय-क्रम

प्रस्तावना

पुस्तकालय विज्ञान पुस्तकालय के व्यवस्थापन और सुचालन को सही वैज्ञानिक दिशा तथा एतद्विषयक अध्ययन को वास्तविक चिन्तन प्रदान करने वाला विज्ञान है। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में पुस्तकालय विज्ञान विषयक ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं और हिन्दी भी इसका अपवाद नहीं है। पिछले दो-तीन दशकों में हिन्दी में पुस्तकालय विज्ञान साहित्य का प्रचुर मात्रा में प्रकाशन हुआ है। सर्वश्री द्वारकाप्रसाद शास्त्री, डॉ० प्रभुनारायण गौड़, डॉ० गोपालदत्त भार्गव, डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह, डॉ० शत्रुघ्न-मणि त्रिपाठी, डॉ० शमशेर गुप्ता, डॉ० पाण्डेय सूर्यकान्त शर्मा, डॉ० कुमुद कुमार कमल, डॉ० चन्द्रकान्त शर्मा, भाष्करनाथ तिवाड़ी और स्व० अनुज शास्त्री जैसे समर्थ पुस्तकालय विज्ञानियों ने हिन्दी में चिन्तन की इस धारा को अपना योगदान दिया है। इसके बावजूद हिन्दी में पुस्तकालय विज्ञान विषयक अध्ययन और अनुसन्धान की सम्भावनायें समाप्त नहीं हो गई हैं। आनेवाली शताब्दी में पुस्तकालय की नयी भूमिका साकार होगी और तदनुरूप हिन्दी में भी पुस्तकालय विज्ञान विषयक अध्ययन के नये-नये गवाक्ष खुलेंगे।

पुस्तकालय विज्ञान से सम्बद्ध हर नयी पुस्तक की हैसियत ससुराल में पहलकदमी करनेवाली नववधू जैसी होती है। भविष्य के सपने, हृदय की गुदगुदी, मन के संकोच और कुछ नया करने के उत्साह का मिला-जुला बोध प्रस्तुत पुस्तक के साथ भी जुड़ा हुआ है। प्रारम्भ में केवल पुस्तक-चयन पर एक सम्पूर्ण पुस्तक तैयार करने की योजना बनी, जिसमें कालान्तर में पुस्तकालय विज्ञान की अन्य दिशायें भी जुड़ती गईं।

इस पुस्तक का वर्तमान रूप अध्ययन के इसी विस्तार का परिणाम है, जिसमें पुस्तकालय विज्ञान की परम्परागत दिशाओं के समानान्तर कम्प्यूटर-सेवा जैसी सर्वथा नयी दिशा का भी संकेतन है। पुस्तकालय विज्ञान विषयक अध्ययन और अनुसन्धान को प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से तनिक भी सहारा मिल सका, तो यही मेरे परिश्रम की सार्थकता होगी।

'पुस्तक-चयन और पुस्तकालय विज्ञान की अन्य दिशाएँ' के लेखन में जिन हिन्दी-अंग्रेजी पुस्तकालय विज्ञानियों के पूर्व अध्ययन से सहायता मिली है, उनके प्रति आभार व्यक्त न करना अकृतज्ञता होगी। बिहार राज्य केन्द्रीय पुस्तकालय के पुस्तकालया-ध्यक्ष डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह ने कृपापूर्वक परिचय के कुछ वाक्य लिखे हैं, एतदर्थ उनका भी आभारी हूँ।

—डॉ० रामेश्वर नारायण 'रमेश'

अनुशंसा

हिन्दी में पुस्तक-चयन और पुस्तकालय विज्ञान पर पुस्तकों की संख्या बहुत कम है। पुस्तकालय विज्ञान को अब एक आधुनिक प्रतिष्ठित व्यावसायिक शिक्षा के रूप में विशिष्ट स्थान प्राप्त हो चुका है। अतएव राष्ट्रभाषा हिन्दी में पुस्तकालय विज्ञान के विविध विषयों पर अलग-अलग पुस्तकें प्रकाश में आनी चाहिए।

पुस्तकालय के संगठन-संचालन में रुचि रखने वाले पुस्तकालय विज्ञान के छात्रों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

विषय की दृष्टि से ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त किया गया है। खण्ड (एक) में पुस्तक-चयन सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर चौदह शीर्षकों के अन्तर्गत विचार प्रस्तुत किये गये हैं। खण्ड (दो) में आठ शीर्षकों के अन्तर्गत पुस्तकालय विज्ञान से सम्बन्धित विविध विषयों पर संक्षेप में विचार प्रगट किये गये हैं। विषय-प्रतिपादन-शैली सरस, साहित्यिक और रोचक है। विश्वास है प्रस्तुत कृति पुस्तकालय विज्ञान वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी और लेखक अपने ज्ञान और अनुभव की परिपक्वता का लाभ हिन्दी जगत् को देते रहेंगे।

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह
पुस्तकालयाध्यक्ष
बिहार राज्य केन्द्रीय (सिन्हा) लाइब्रेरी
पटना

खण्ड : एक

अध्याय १

पुस्तक

पुस्तकों का महत्व

निरक्षर को साक्षर, साक्षर को पाठक और पाठक को विद्वान् बनाने में केवल पुस्तकें ही समर्थ हैं। इसीलिए पुस्तकों की तुलना, सभ्यता के विशाल सागर में मार्ग दिखाने वाले प्रकाश-घर से की जाती है। पुस्तकों के कारण ही मनुष्य की सभ्यता अगणित शताब्दियों से जीवित है और आने वाली शतियों में भी जीवित रहेगी। कैनिंग ने हर व्यक्ति को एक पुस्तक की संज्ञा दी है और शायद हर समाज इस दृष्टि से पुस्तकालय है। इसका कारण यही है कि पुस्तकों की ही तरह मनुष्य भी पढ़ा जाता है और उसका निर्माण अलग-अलग विचार-तन्तुओं से होता है। मनुष्य के लिए जीवनोपयोगी संसाधनों में पुस्तक की गणना अनिवार्यतः करनी पड़ती है, क्योंकि मौजूदा परिवेश में पुस्तक एक फलोद्यान, एक भण्डार-गृह, एक जनसमूह, एक परामर्शदात्री-समिति और एक कुशल मित्र है। जिन विचारकों ने पुस्तक को मानव-संस्कृति के संरक्षण का मूलभूत केन्द्र माना है, उनकी दृष्टि में यह सत्य लगातार रहा होगा कि पुस्तकें एक साथ मानव-सभ्यता के लिए कम्पास और दूरवीक्षण यन्त्र का काम करती हैं।

पुस्तक शब्द का विकास

पुस्तक शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में भाषाचिन्तकों ने ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। इस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य ने पहले विचार-विनिमय के माध्यम के रूप में भाषा का आविष्कार किया, फिर भाषा के लेखन की शुरुआत हुई और तब इस लिखित साहित्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पुस्तकों की परिकल्पना सामने आई। पुस्तबन्ध की प्रक्रिया से पुस्तक शब्द का विकास हुआ, ऐसी परिकल्पना कर लेना अप्रासंगिक नहीं है। प्रारम्भ में लिखित साहित्य को एक साथ बाँधकर रखने अथवा संग्रथित करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया होगा, क्योंकि एक साथ बाँधकर नहीं रखने से लिखित-सामग्री के खो जाने का भय सामने था। लेखन-सामग्री के रूप में भोजपत्र, तालपत्र, कागज, काष्ठ, चमड़ा, पत्थर, सोना, लोहा, काँसा, ताँबा, पीतल, चाँदी और मिट्टी का उपयोग इतिहास में वर्णित है। इन सारे अवयवों पर लिखित साहित्य को संग्रथित करने की प्रक्रिया ने पुस्तक को साकार किया। इसीलिए संस्कृत में ग्रन्थ शब्द का प्रचलन है। बाँधने या संग्रथित करने की क्रिया से ही पुस्तक तथा ग्रन्थ शब्दों का विकास माना गया है—

पुस्त + घ = पुस्तः। पुस्त + क = पुस्तकम्।

पुस्तक के विविध पर्याय

इसी पुस्त शब्द में ङिप् प्रत्यय के संयोग से पुस्ती का विकास हुआ, जिसे अपभ्रंश में पोथी कहा गया। पुस्तक में टाप् प्रत्यय के संयोग से पुस्तिका की उत्पत्ति हुई। इसी तरह ग्रन्थ शब्द गूंथना और बांधने जैसी क्रियाओं के भाव से विकसित हुआ है। संस्कृत में पुस्तक के पाँच पर्याय उपलब्ध हैं—पुस्त, पुस्ती, पुस्तक, पुस्तिका तथा ग्रन्थ। इनके अतिरिक्त अन्य स्रोतों से प्राप्त पोथा, पोथी, बही और किताब का प्रयोग भी हिन्दी में प्रचलित है। लगभग इन्हीं पर्यायों का इस्तेमाल अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में होता है। जैसे—

भाषा	नाम	भाषा	नाम
पंजाबी	पुस्तक, किताब	उड़िया	बहि
कश्मीरी	किताब्	तेलुगु	पुस्तकमु
सिन्धी	किताबु	तमिल	नूल्, पुत्तकम्
मराठी	पुस्तक, ग्रन्थ	मलयालम	पुस्तकम्
गुजराती	चोपडी	कन्नड़	पुस्तक, होत्तगे
बंगला	बइ, पुस्तक	संस्कृत	पुस्तक
असमिया	पुथि, किताप	उर्दू	किताब

संसार की विभिन्न भाषाओं में पुस्तक के पर्याय स्वरूप कई शब्द प्रचलित हैं। जैसे—

अंग्रेजी	बुक	जर्मन	बच
डच	बुक	रूसी	नीगा
स्वीडीश	बोक	ग्रीक	विब्लियन
डैनिश	बोग	पोलिश	कशियांका
नार्वेनियन	बोक	फिनीश	किरजा
फ्रांसीसी	लिबोन	हिब्रू	सेफर
इटालियन	लिबरो	जापानी	होन
स्पेनिश	लिब्रो	इंडोनेशियाई	बुक्व, किताब
पुर्तगीज	लिबरो	अरबी	कित

पुस्तक लेखन का इतिहास

इन सारे पर्यायों में केवल भाषा-भेद है अन्यथा पुस्तक का महत्त्व तो हर व्यक्ति, हर समाज और हर राष्ट्र के लिए एक जैसा है। इतिहास साक्षी है कि प्राचीन भारत में लिपियों से सुपरिचित होने के बावजूद हमारे मनीषी ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं को लिखने की बजाय सुनने और बोलने तक सीमित रखा। यही कारण है कि वेदों को लिखकर पढ़ना ब्रह्महत्या के समानान्तर पाप समझा गया—

वेदस्य लेखनं कृत्वा यः पठेत् ब्रह्महा भवेत् ।
पुस्तकं वा गृहे स्थाप्यं वज्रपातो भवेद् ध्रुवम् ।।

चतुर्वेदी, त्रिवेदी या त्रिपाठी, द्विवेदी आदि वंशोपाधियाँ वेदों को स्मरण करने की क्षमता के आधार पर निर्धारित हुईं। लेकिन जल्दी ही लेखन-कला और लेखन का आरम्भ हो गया और मानदण्ड निर्धारित किये गये कि हाथ भर, मुट्ठी भर, आठ उँगली, दस उँगली अथवा बारह उँगली ही धर्म-सम्मत आकार है। सद्मोत्तर खण्ड में संकेत मिलते हैं कि तालपत्रों एवं अन्य धातुपत्रों पर पुस्तकों का लेखन होने लगा था :

भूर्जे वा तेजपत्रे वा ताम्रे वा तालपत्रके ।
अनुरूणापि देवेशि ! पुस्तकं कारयेत् प्रिये ।
सम्भवे स्वर्ण पत्रे च ताम्रपत्रे च शांकरि ।
अन्यवृक्षत्वचि देवि ! तथा केतकि पत्रके ।
मार्त्तण्डपत्रे रौप्ये वा वटपत्रे वरानने ।
अन्य पात्रे वसुदले लिखित्वा यः समभ्यसेत् ।
स दुर्गतिमवाप्नोति धनहानिर्भवेद ध्रुवम् ।

ऐसे तालपत्रादि पर लिखित पांडुलिपियों की अनेक प्रतिलिपियाँ होती थीं और प्रतिलिपिकार को ही लेखक कहकर पुकारा जाता था। चाणक्य नीति में उल्लिखित है कि लेखक को सभी शास्त्रों से परिचित और सुस्पष्ट लेखन में दक्ष होना चाहिये —

सकृदुक्तगृहीतार्थो लघुहस्तो जिताक्षरः
सर्वशास्त्रसमालोकी प्रकृष्टो नाम लेखकः ।

बहुत काल तक पुस्तकें केवल हस्तलिखित रूप में प्रस्तुत होती रहीं और जब नवीन तकनीकी आविष्कारों के पश्चात् मुद्रण-कला का विकास हुआ, तब पुस्तकों के इतिहास में क्रान्ति आ गई।

कुछ विशिष्ट पुस्तकें

अद्यतन अनुसन्धान के आधार पर ज्ञात हुआ है कि कोरिया में ७०४ ई० पू० में मुद्रित सामग्री थी, लेकिन सबसे प्राचीन पुस्तक के रूप में कोरियाई कविताओं के २८ पृष्ठों के संग्रह का उल्लेख इतिहासकार करते हैं, जो ११६० के आसपास धातुनिर्मित सांचों द्वारा छपा। मुद्रण की असुविधा के कारण ही भारतीय चिन्तन और सृजन का बहुत बड़ा भाग शताब्दियों तक हस्तलिखित ही रहा। ऐसी हस्तलिखित पुस्तकें लुप्त होती रहीं और नष्ट होती रहीं, लेकिन आज पुस्तकों का वर्तमान सन्तोषजनक ही नहीं, गर्व करने योग्य भी हो गया है। इसका कारण यही है कि आज हमारे बीच संसार की सबसे बड़ी और सबसे छोटी, सबसे मँहगी और सबसे सस्ती सभी कोटियों की पुस्तकें उपलब्ध हैं। कोलोरेडो अमेरिका में १९७६ में छपी ३०० पृष्ठों की सुपर बुक को आकार की दृष्टि से दुनिया की सबसे बड़ी पुस्तक माना गया है, जिसका आयतन २·१४ × ३·७ मीटर है और २५२·६ कि० ग्रा० है। इस भीमकाय पुस्तक के ठीक विपरीत संसार की सबसे छोटी

सजिल्द पुस्तक जापान में १९८० में प्रकाशित हुई थी, जिसके बीस पृष्ठों को १·४ मिली-मीटर वर्गाकार में मुद्रित किया गया है। संसार की सस्ती पुस्तकों की प्रतिद्वन्द्विता में तो वे सारी छोटी-छोटी कृतियाँ आ सकती हैं, जिन्हें पोस्टकार्ड से भी छोटे आकार में निःशुल्क वितरित किया जाता है, लेकिन संसार की सबसे मँहगी पुस्तक १९६० में अफगानिस्तान के अमीर को फारस के शाह द्वारा दी गई वह कुरान है जिसमें १९ हीरे, १६९ मोती और ११३२ लाल जड़े हुए हैं।

समूचे संसार में प्रकाशन की तकनीक इतनी विकसित और नयनाभिराम हो गई है कि आज पुस्तक शब्द से केवल मुद्रित विचार-सामग्री का ही बोध नहीं होता, अपितु यह 'पुस्तक' शब्द एक साथ मन और आंखों को आनन्दित कर डालता है। जापान में तो कुछ ऐसी पुस्तकें भी आविष्कृत हो गई हैं, जिनके पृष्ठ पलटने पर विशिष्ट संगीत गूंजता है। आने वाले दिनों में, पुस्तक का विकास श्रव्य-दृश्य माध्यम के चरण रूप में होने वाला है। निश्चय ही पुस्तकें मानव-सभ्यता के गुणात्मक और तकनीकी विकास की साक्षी रही हैं।

पुस्तक : मानव मनीषा की दस्तावेज

पुस्तकों के कारण ही समूची मनुष्य जाति की मनीषा और सांस्कृतिक उपलब्धियाँ सुरक्षित हैं। इसीलिए पुस्तक के स्वरूप, चरित्र और महत्त्व को रेखांकित करने वाली विचार-सारणियाँ अन्ततः यही सिद्ध करती हैं कि पुस्तकों की पहचान सभ्यता की गति और दिशा देने वाली जीवन्तता के रूप में है। पुस्तक ही हमें अतीत से जोड़ती हैं, वर्तमान से परिचित कराती हैं और भविष्य के प्रति जागरूक करती हैं।

□ □

अध्याय २

अच्छी पुस्तक : बुरी पुस्तक

अच्छी पुस्तकों के सुपरिणाम

हस्तलिखित अथवा मुद्रित सामग्री के रूप में, जो कुछ भी हम पढ़ते हैं, वह सब पुस्तक की परिसीमा में नहीं आ सकता। हम जितनी पुस्तकों को पढ़ते हैं, वे सब अच्छी अथवा पठनीय नहीं कही जा सकतीं। इसीलिए पुस्तकों की चर्चा अच्छे मित्र के रूप में होती रही है, जिनके साहचर्य से हम अपने सही विकास के योग्य चिन्तन और प्रेरणा प्राप्त करते हैं। प्रसिद्ध कवि मिल्टन का कथन है कि अच्छी पुस्तक एक महान् आत्मा का अमूल्य जीवन-रक्त है। वास्तव में प्रत्येक अच्छी पुस्तक के निर्माण में रचयिता को व्यापक चिन्तन और श्रम करना पड़ता है, तभी कोई अच्छी कृति रची जाती है। अच्छी कृति से तात्पर्य ऐसी पुस्तकों से है जिनमें किसी समाज या देश को आगे ले चलने की शक्ति हो। प्रेमचन्द ने साहित्य को समाज के आगे-आगे चलने वाली मशाल के रूप में रेखांकित किया था तो उनका संकेत उन अच्छी पुस्तकों की ओर था जो अँधेरे में कभी न बुझने वाले दीपस्तम्भ की तरह आलोक विकीर्ण करती रहती हैं। इसीलिए प्रत्येक अच्छी पुस्तक को एक अच्छे व्यक्ति का सार कहा गया है; क्योंकि उसमें रचनाकार के सद्गुणों का साम्राज्य रहता है।

फ्रांसीस बेकन ने लिखा है कि कुछ पुस्तकें चखी जा सकती हैं, कुछ निगली जा सकती हैं और कुछ चबायी या पचायी जा सकती हैं। आस्वाद के धरातल पर पुस्तकों में यह भेद स्थापित करने का तात्पर्य यही है कि हमारे आसपास की सारी पुस्तकें उपयोगिता की दृष्टि से एक जैसी नहीं होतीं। अच्छी पुस्तकें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगिता से सम्पन्न होती हैं। फ्रांसीसी दार्शनिक प्लीनी ने लिखा है कि कोई भी पुस्तक खराब नहीं होती; क्योंकि उनसे कुछ-न-कुछ बहुमूल्य तथ्य अवश्य प्राप्त किये जा सकते हैं। यह धारणा भ्रान्त है कि ढेर सारी पुस्तकें किसी नशीले पेय के समान बुद्धि और आत्मा को विनष्ट कर डालती हैं।

बुरी पुस्तकों का कुप्रभाव

ज्ञान के समुद्र में छिद्रयुक्त नाव की तरह बहने वाली पुस्तकें न तो व्यक्ति को सही संस्कार दे सकती हैं और न देश को कोई दिशा दे सकती हैं। इसीलिए मनीषियों ने बुरी पुस्तकों का निषेध किया है और बताया है कि विष की एक खुराक अपनी प्रक्रिया तेजी से समाप्त कर डालती है, लेकिन बुरी पुस्तकें व्यक्ति और परिवेश के मस्तिष्क को निरन्तर

जहरीला बनाती रहती हैं। बुरे लोगों की संगति से बचने का उपदेश देने वाले लोगों ने बुरी पुस्तकों से बचने की भी सलाह दी है। एक प्रसिद्ध जर्मन कहावत है कि किसी खराब पुस्तक से बढ़कर और कोई बुरा डाकू नहीं है।

अच्छी पुस्तकों का महत्व

अच्छी पुस्तकों की परिकल्पना मस्तिष्क अपने अनुकूल पाता है। ऐसी ही पुस्तकें, उपदेशक और शिक्षक, सचिव और सखी की तरह, उचित मार्ग का निर्देशन करती हैं। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने श्रेष्ठ काव्यों का उल्लेख करते हुए बताया है कि श्रेष्ठ कविता कान्तासम्मत-उपदेश देने में समर्थ होनी चाहिये। जिस तरह आदर्श गृहिणियां अपने पति को सही परामर्श देकर जीवन-यज्ञ में अग्रसर करती हैं, ठीक वैसे ही अच्छी पुस्तकें हमें सही दिशा का ज्ञान कराती हैं। आज कल्पना नहीं की जा सकती कि पुस्तकों के बिना मनुष्य का जीवन कैसा हो जायेगा। इसका कारण यही है कि पुस्तकों ने मनुष्य को एक-दूसरे से बांध रखा है। इन पुस्तकों के कारण अपने वर्तमान से ही नहीं, भविष्य और अतीत से भी जुड़े हुए हैं। इसीलिए यदि कोई कहे कि पुस्तकों में अपूर्व जीवनी-शक्ति है और वे अमर हैं तो यह कोई आश्चर्यजनक वक्तव्य न होगा। आधुनिक विज्ञान ने जीव और उसके अवयवों को परिवेश से संरक्षित रखने के लिए जैसे आवरणों का आविष्कार किया है, पुस्तकों के रूप में सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण का साधन शताब्दियों पहले आविष्कृत हो चुका है। अच्छी पुस्तकों की चर्चा मस्तिष्क को विकृत होने से बचाने वाली औषधि के रूप में की गई है, जबकि बुरी पुस्तकें योजनाबद्ध ढंग से मस्तिष्क को विकृत करती हैं। पुस्तक की तुलना पड़ोसियों से भी की जा सकती है। यदि यह अच्छी है तो अच्छे पड़ोसी के साथ की गई मैत्री की तरह इसका असर शाश्वत रहेगा। लेकिन यदि यह बुरी है तो इससे छुटकारा पा लेना ही श्रेयस्कर होगा। इसीलिए पुस्तकों को जीवन-यात्रा का सर्वश्रेष्ठ सहयात्री कहा गया है और उन्हें मनुष्य का सबसे निजी साथी भी माना गया है।

हेलेन कीलर ने लिखा है कि प्रत्येक नई पुस्तक उस जलयान की तरह है, जो हमें अपनी सीमाओं की निश्चिन्तता से बहुत दूर, जीवन के अनन्त समुद्र की हिलोरों में ले जाती है। अब यह पुस्तक की प्रकृति पर निर्भर है कि समुद्र की लहरों के बीच वह हमें उबरने का मार्ग दिखाये अथवा डूबने के लिए विवश कर दे। ऐसा पुस्तकों के चयन के कारण घटित होता है। अच्छी पुस्तकें हमेशा विश्वास के दर्पण में हमारे चिन्तन और विश्लेषण को सही दिशा देती हैं। ए० बी० अलकोट की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि अच्छी पुस्तक आशा के साथ खोली जाती है एवं हर्ष और लाभ के साथ बन्द हो जाती है। पुस्तक के अच्छेपन से तात्पर्य केवल उसमें विद्यमान विचारों से ही नहीं, अपितु उन चिंतन तरंगों से भी है, जिन्हें हमारी मनीषा खुले तौर पर स्वीकार करती है। निश्चय ही यह बात पूरी तरह हमारे ऊपर आश्रित है कि हम अपने आसपास उपलब्ध पुस्तकों, सांस्कृतिक अवशेषों और राजदूतों में से किसका चुनाव करते हैं। यदि हमारा चुनाव अच्छी

पुस्तकों के लिए है तो ये पुस्तकें हमें और हमारे परिवेश को नयेपन की ओर अग्रसर करेंगी, लेकिन यदि हमने बुरी पुस्तकें चुनीं तो इसका परिणाम भी सुनिश्चित तौर पर बुरा होगा। मनुष्य के इतिहास को करवट देने में पुस्तकों की अहम् भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। अच्छी पुस्तकें ही लोक-मंगल का ध्वज फहराती हैं और बुरी पुस्तकें शैतान के साम्राज्य को स्थापित करती हैं। पुस्तकों के बिना मकान की परिकल्पना खिड़की रहित कमरे जैसी की गई है; लेकिन अच्छी पुस्तकों का वातायन सुवासित फुलवारी की ओर खुलता है तो बुरी पुस्तक की खिड़की दुर्गन्ध भरी नालियों की दिशा में खुलती है। अच्छी और बुरी पुस्तकों की यह विभेदक रेखा ही पुस्तकों के इतिहास के समानान्तर मनुष्य के इतिहास में बदलाव लाती है।



अध्याय ३

पुस्तक-चयन की परिभाषा

पुस्तक-चयन की धारणा

लोकमान्य तिलक ने लिखा है—'मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा; क्योंकि जहाँ ये होंगी, वहाँ अपने आप स्वर्ग बन जायेगा।' वास्तव में पुस्तकें किसी भी राष्ट्र, समाज और परिवेश को सही दिशा एवं सजीवता प्रदान करती हैं। इसीलिए पुस्तकालय का महत्त्व भी सभ्यता के विकास के साथ-साथ बढ़ता गया है। यह कोई आश्चर्यकारी घटना नहीं है कि संसार में हर तीसरे मिनट कोई-न-कोई पुस्तक प्रकाशित होती है और हर दूसरे दिन कहीं-न-कहीं एक नया पुस्तकालय खुलता है। पुस्तकालय की परिकल्पना पुस्तक के बिना नहीं की जा सकती; क्योंकि पुस्तकालय का मूलाधार उसका भव्य भवन, आकर्षक फर्नीचर और सजे-संवरे कर्मचारी नहीं हैं। पुस्तकालय की आत्मा उसमें विद्यमान उपयोगी, रोचक और श्रेष्ठ पुस्तकों में बसती है। पुस्तकालय-विज्ञानी जब पुस्तकालय और उसमें मौजूद पुस्तकों का विश्लेषण करने बैठते हैं, तब इस नवीनशास्त्र की सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक दिशा पुस्तक-चयन पर उनका ध्यान जाता है। वास्तविकता तो यह है कि पुस्तक-चयन, पुस्तकालय और पुस्तकालय विज्ञान की आधारशिला है। जिस तरह पुस्तकों के बिना पुस्तकालय और धर्मशाला में भेद नहीं रह जायेगा, उसी तरह पुस्तक-चयन के बिना पुस्तकालय और पुस्तकालय विज्ञान को अपेक्षित गरिमा नहीं मिल सकती। पुस्तक-चयन वह आधारशिला है जिसकी नींव पर पुस्तकालय विज्ञान का प्रासाद खड़ा है, पुस्तकालयों का अस्तित्व टिका हुआ है।

पुस्तक-चयन से तात्पर्य पुस्तकालयों के लिए सही, उपयोगी, रोचक और पाठकीय माँग के अनुरूप पुस्तकों के चुनाव से है। संसार की समस्त भाषाओं में इतनी बड़ी संख्या में अच्छी और बुरी, उपयोगी और अनुपयोगी, रोचक और अरोचक, संग्रहणीय और त्याज्य सभी कोटियों की पुस्तकें लगातार प्रकाशित हो रही हैं कि किसी भी पुस्तकालय के लिए उन सबका संग्रहण न तो सम्भव है और न आवश्यक है। कुशल और जागरूक पुस्तकालयाध्यक्ष अपने पुस्तकालय में आने वाले पाठकों की अभिरुचि और आवश्यकता के अनुरूप उपयुक्त पुस्तकों का चुनाव करता है एवं अपने पुस्तकालय के संसाधनों के अनुरूप उनका एकत्रीकरण करता है। पुस्तक-चयन की इस प्रक्रिया के बिना न तो पुस्तकालय का लक्ष्य पूरा हो सकता है और न पुस्तकालयाध्यक्ष के कर्त्तव्य की इतिश्री हो सकती है। इसीलिए पुस्तक-चयन पुस्तकालय की एक अनिवार्य और सबसे महत्त्वपूर्ण तकनीक है। पुस्तक-चयन विज्ञान का प्रारम्भिक और अपरिहार्य अंग है, जिसकी चर्चा के बिना पुस्तकालय-सम्बन्धी अध्ययन और मूल्यांकन की शुरुआत ही नहीं हो सकती।

पुस्तक-चयन की विविध परिभाषाएं

पुस्तक-चयन की इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के बावजूद पुस्तक-चयन को परिभाषित करने की दिशा में चिन्तक अधिक सक्रिय नहीं हुए हैं। पुस्तक-चयन की उपलब्ध परिभाषाएँ पुस्तकालय विज्ञान की इस तकनीकी पद्धति के मूलभूत गुणों की ओर संकेत तो करती हैं; लेकिन इन परिभाषाओं से पुस्तक-चयन का अन्तिम और सर्वमान्य चरित नहीं सूचित होता। पुस्तक-चयन की कतिपय परिभाषाएँ इस प्रकार हैं—

डॉ० प्रभुनारायण गौड़—पुस्तक-चयन पुस्तकालय में क्रय किये जाने के लिए पुस्तकों के विवेकपूर्ण ढंग से चुनने की क्रिया है।[१]

द्वारकाप्रसाद शास्त्री—पुस्तक-चयन सामान्य रूप में पुस्तकालय के संग्रह में वृद्धि करने के लिए पुस्तकों के चयन को कहते हैं।[२]

चन्द्रकान्त शर्मा—पुस्तक-चयन एक ऐसी प्रणाली है जिसके सफलतापूर्वक प्रतिपादन से उपयुक्त पुस्तकों का संग्रह किया जा सकता है, सफल ग्रन्थालय-सेवा प्रदान की जा सकती है एवं ग्रन्थालय का उद्देश्य पूरा होता है।[३]

डॉ० एस० आर० रंगनाथन—किसी भी पुस्तकालय में पुस्तक-चयन पाठकों की सम्भावना पर होना चाहिये और कभी भी किसी प्रभाव या आकर्षण से नहीं जुड़ना चाहिये।[४]

ड्र्री पुस्तक-चयन से तात्पर्य है उपयोगी पुस्तक उसके उपयुक्त पाठक को उचित समय पर उपलब्ध कराना।[५]

मेलविल ड्यूवी—पुस्तक-चयन वह प्रणाली है जिसके द्वारा न्यूनतम धनराशि में उत्तम पुस्तकें अत्यधिक पाठकों को प्रदान की जा सकें।[६]

सेयर्स—पुस्तक-चयन एक गम्भीर और अधिक उत्तरदायित्व का कार्य है, जिसका भार ग्रन्थालयी के कन्धों पर है। पुस्तक-चयन एक विवेकशील क्रिया है।[७]

इनसाइक्लोपीडिया आफ लाइब्रेरियनशिप—पुस्तक-चयन पुस्तकालय की तकनीकी विधियों में से एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है, जिससे पुस्तकालय विज्ञान का निकट का सम्बन्ध है; क्योंकि यह पुस्तक भण्डार ही ग्रन्थालय के कर्मचारियों या भवन से अधिक ग्रन्थालय को स्वरूप प्रदान करता है।[८]

दि न्यू इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—प्रत्येक पुस्तकालय के लिए कतिपय पुस्तक-चयन-पद्धतियों का अनुपालन आवश्यक है; क्योंकि सुविधा और बजट सभी प्रकाशित सामग्रियों को प्राप्त करने की अनुमति नहीं देता है।[९]

एल० एम० हैरोड—पुस्तक-चयन पुस्तकालय के लिए पुस्तकें चुनने की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो भण्डार में सन्तुलित वृद्धि को सहारा दे सके।[१०]

डेविड स्पिलर—पुस्तक-चयन एक गतिशील प्रक्रिया है। पाठक आलमारियों में अपनी उपयुक्त पुस्तकें बिना विलम्ब प्राप्त कर सकें और एक नियोजित आकर्षक भण्डार

उपस्थित कर सके, इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तक-चयन पर विशेष ध्यान दिया जाय और पाठकों को केन्द्र में रखकर सही पुस्तकों को उपलब्ध साधनों के अन्तर्गत चुनने की तकनीक अपनायी जाय।[११]

कालिन हैरिसन, रोज मेरी ओट्स—पुस्तकालय के भण्डार में कुछ और जोड़ने के लिए सामग्री का चयन उपभोक्ताओं की माँग पर ही आधारित होना चाहिये।[१२]

परिभाषाओं की अपर्याप्तता

इन सारी परिभाषाओं में पुस्तक-चयन को ठीक-ठीक रेखांकित करने की क्षमता नहीं है; क्योंकि ये सभी परिभाषाएं अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव जैसे दोषों से ग्रस्त हैं। वास्तव में परिभाषा इतनी स्पष्ट और निश्चयात्मक होनी चाहिये कि उसके माध्यम से परिभाष्येय वस्तु या पद का सम्पूर्ण वैशिष्ट्य उजागर हो उठता है। परिभाषा संक्षिप्त और कसी होनी चाहिये और उसके माध्यम से कथित वस्तु का दोषरहित, सुनिश्चित और सुस्पष्ट संकेतन होना चाहिये। परिभाषा के इन प्रतिमानों के सन्दर्भ में पुस्तक-चयन की उपलब्ध परिभाषाओं का मूल्यांकन किया जाय तो अब तक उपलब्ध परिभाषाओं की सीमाएँ उजागर होती हैं। सेयर्स ने यह तो बता दिया कि पुस्तक-चयन एक गम्भीर, विवेकशील और जिम्मेदारी भरा कार्य है; लेकिन उनकी परिभाषा में यह सूचना नहीं मिलती है कि मूलत: पुस्तक-चयन क्या है? ड्यूवी ने अपनी परिभाषा में कम धनराशि द्वारा अधिक-से-अधिक पाठकों के लिए पुस्तकें उपलब्ध कराने वाली प्रणाली के रूप में पुस्तक-चयन को इंगित किया है। इस परिभाषा से भी यह ध्वनि नहीं निकलती कि पुस्तक-चयन की प्रक्रिया कैसे सम्पादित होती है? ड्यूवी के ही विचारों के अनुरूप ही ड्रूरी की परिभाषा भी है, जिससे पुस्तक-चयन की प्रक्रिया और तकनीक का बोध नहीं होता। चन्द्रकान्त शर्मा द्वारा दी गई पुस्तक-चयन की परिभाषा में यह तो बतलाया गया है कि इस प्रणाली के सफल प्रतिपादन से पुस्तकालय में उपयुक्त पुस्तकों का संग्रह किया जाता है, लेकिन इस परिभाषा में पुस्तक-चयन को तकनीक का वास्तविक संकेत नहीं मिलता। परिभाषाओं की अपर्याप्तता की स्थिति यह है कि इनसाइक्लोपीडिया ऑफ लाइब्रेरियनशिप द्वारा प्रदत्त परिभाषा में भी पुस्तक-चयन और पुस्तकालय का सम्बन्ध ही बताया गया है, पुस्तक-चयन की तकनीक की ओर कोई इशारा नहीं है। पुस्तक-चयन की अब तक उपलब्ध परिभाषाओं के समर्थ और सर्वाङ्गपूर्ण न होने का केन्द्रीय कारण यही है कि पुस्तकालय विज्ञानियों ने इन परिभाषाओं की सर्जना करते समय पुस्तक-चयन की प्रकृति, प्रविधि और उद्देश्य पर एक साथ ध्यान नहीं दिया है। वास्तव में पुस्तकों की अपार संख्या के बीच किसी पुस्तकालय के लिए उपयुक्त पुस्तकों का चयन जितना कठिन है, पुस्तक-चयन की तकनीक को परिभाषित करना उससे भी कठिन है।

पुस्तक चयन की परिभाषा के प्रतिमान

पुस्तक-चयन को परिभाषित करते समय हमें अधोलिखित तथ्यों पर ध्यान देना होगा—

(क) पुस्तक-चयन एक तकनीक है।
(ख) पुस्तक-चयन, असंख्य पुस्तकों के बीच सही पुस्तकों के चयन की एक तकनीक है।
(ग) पुस्तक-चयन, पाठकीय माँग और रुचि के अनुरूप पुस्तकें चुनने की तकनीक है।
(घ) पुस्तक-चयन, पुस्तकालय के संसाधनों की सीमाओं के बीच पुस्तकों के चुनाव की तकनीक है।
(ङ) पुस्तक-चयन, उपलब्ध स्रोतों की सहायता से सम्पन्न चयन तकनीक है।

मानक परिभाषा

इन विशेषताओं के आधार पर पुस्तक-चयन की एक आदर्श एवं सर्वाङ्गपूर्ण परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

पुस्तक-चयन पुस्तकालय के संसाधनों की सीमाओं के बीच पाठकीय माँग और रुचि के अनुरूप उपलब्ध स्रोतों की सहायता से असंख्य पुस्तकों के बीच सही पुस्तकों के चुनाव की तकनीक है।

इस परिभाषा से पुस्तक-चयन की प्रविधि, उपकरणों, उद्देश्यों और सीमाओं का संकेतन मिलता है। पुस्तक-चयन की यह परिभाषा पुस्तकालय विज्ञान के इस विशिष्ट प्रभाग को यथासम्भव पूरी तरह आवृत करती है। इस परिभाषा से ज्ञापित होता है कि पुस्तक-चयन महज पुस्तकों को चुनने की प्रणाली नहीं, अपितु एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके साकार होने में कई तत्त्वों की सक्रिय हिस्सेदारी होती है।

सन्दर्भ संकेत

१. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय विज्ञान : पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ ४१।
२. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तक-चयन और सन्दर्भ सेवा, पृष्ठ ६।
३. डॉ० चन्द्रकान्त शर्मा : पुस्तक-चयन एवं रचना, पृष्ठ २।
4. Dr. S. R. Ranganathan : Library Book Selection, p. 225.
‘Book selection in any library should be based on the probability for readers and should never be related by considerations of patronage.”
५. डॉ० चन्द्रकान्त शर्मा : पुस्तक-चयन एवं रचना, पृष्ठ १ पर उद्धृत।
६. उपरिवत्।
७. उपरिवत्।
8. Encyclopaedia of Librarianship, Vol. I, p. 47.
"Book selection is one of the most important techniques with which librarianship is concerned, for it is the book stock which gives a library its character more so than either staff or building."

9. The New Encyclopaedia Britanica, Vol. 10, p. 867.

"Because facilities and budget do not permit aquisition of all materials published, each library must follow some selection policy."

10. L. M. Harrod : The Librarian's Glossary and Reference Book, p. 129.

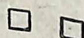
"The process of selecting books for inclusion in a library with a view to providing a balanced increase to the stock."

11. David Spiller : Book Selection—An Introduction to Principles and Practices, p. 12.

"Book selection is an active process. Readers will find books on the shelves, not by default, the tried remanents of years of mismiged selection, but by design, a planned dynamic stock, which at all points has been specifically selected to attract readers and which has enough coverage in depth to maintain its seductive appearance."

12. Colin Harrison; Rose Mary Oates : The Basic of Librarianship, p. 98.

"The selection of material for addition to the stock of a library should reflect the needs of its user."



अध्याय ४

पुस्तक-चयन : कला या विज्ञान

कला या विज्ञान के रूप में पुस्तक चयन की धारणा

पुस्तकालय में पुस्तक और उनके चयन की तकनीक के महत्त्व को पुस्तक-विज्ञानियों ने व्यापक स्तर पर स्वीकार किया है। यही कारण है कि पुस्तक-चयन के विभिन्न सिद्धान्तों, पुस्तक-चयन की विविध प्रविधियों और पुस्तक-चयन की अनेक समस्याओं के बीच पुस्तकालय विज्ञान के एक केन्द्रीय अविभाज्य अंग के रूप में पुस्तक-चयन का विश्लेषण होता आया है। पुस्तक-चयन पुस्तकालय और पुस्तकालय विज्ञान की स्थापना का मेरुदण्ड है। न तो पुस्तकों के बिना पुस्तकालय की परिकल्पना की जा सकती है और न पुस्तकालय के बिना पुस्तकालय के लिए सही पाठ्य-सामग्री का संयोजन हो सकता है। न तो पुस्तक-चयन के बिना पुस्तकालय का स्वरूप आकार ग्रहण कर सकता है और न पुस्तक-चयन के बिना पुस्तकालय विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो सकता है। इसीलिए किसी भी पुस्तकालय की श्री वृद्धि में, अन्य आवश्यक शर्तों की अपेक्षा, पुस्तक-चयन की तकनीक का अधिक महत्त्व कहा जा सकता है। इस तकनीक के कारण ही पुस्तक-चयन की समस्या जटिल से जटिलतर होती गई है और पुस्तक-चयन का महत्त्व बढ़ता गया है और पुस्तकालयों में पुस्तक-चयन की अस्मिता सुनिश्चित होती गई। ऊपरी तौर पर सरल और स्वाभाविक प्रक्रिया दिखने पर भी पुस्तक-चयन कोई सरल कार्य नहीं है। यह तो एक कला है और अपने आप में एक सम्पूर्ण विज्ञान भी। इसीलिए पुस्तक-चयन को कला या विज्ञान में से किसी एक के रूप में स्वीकार करना हमेशा विवादग्रस्त ही रहा है।

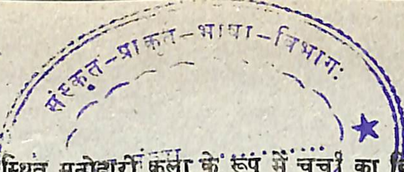
विज्ञान के मूलभूत लक्षण और पुस्तक-चयन

विज्ञान अथवा कला के रूप में किसी की कार्य-पद्धति अथवा शास्त्र को रेखांकित करना अपने आप में दुष्कर प्रक्रिया है। विज्ञान का मूल अर्थ विशिष्ट ज्ञान कहा जाता है, जबकि कलाएँ मनुष्य की सर्जनात्मक प्रतिभा को सूचित करती हैं। पुस्तकालय विज्ञान जैसे नये उभरे हुए विज्ञान को न तो भौतिकी और रसायन की कोटि का विज्ञान कहा जा सकता है और न उसे ललित कलाओं की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है। पुस्तक-चयन के सन्दर्भ में यह समस्या और भी सघन है, क्योंकि पुस्तक-चयन अपने आप में कोई शास्त्र नहीं, अपितु मूलतः कार्य-पद्धति है। इसीलिए पुस्तक-चयन को कला अथवा विज्ञान की परिसीमा में रखते समय पुस्तक-चयन की प्रक्रिया के वैज्ञानिक अथवा कलात्मक पहलुओं पर हमारा ध्यान अधिक केन्द्रित होता है। विज्ञान की प्राथमिक शर्त यह होती है कि उसमें प्रयोग के आधार पर निष्कर्षों का निष्पादन होता है। विज्ञान के नियम

कार्य-कारण भाव पर आश्रित होते हैं और उनमें अपवादों की भी भरमार होती है। इसके विपरीत कला किसी नियम का पालन नहीं करती, अपितु कलाकार के अनुभवों के अनुरूप कलाएँ अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं। विज्ञान और कला की इन प्राथमिक शर्तों के सन्दर्भ में यदि पुस्तक-चयन-प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाये तो यह सत्य सामने आता है कि पुस्तक-चयन में कला और विज्ञान दोनों की विशेषताएँ एक साथ विद्यमान हैं। पुस्तक-चयन में किसी भी श्रेष्ठ विज्ञान की तरह कई सिद्धान्तों और नियमों की परिकल्पना की गई है, जिनके आधार पर पुस्तक-चयन की प्रक्रिया आदर्श रूप ग्रहण करती है। पुस्तक-चयन इसलिए भी विज्ञान है कि उसके नियम कार्य-कारण भाव पर आश्रित हैं। प्रयोग द्वारा निष्कर्ष तक पहुँचने की कोशिश जिस तरह भौतिकी और रसायन शास्त्र में होती है, ठीक उसी तरह पुस्तक-चयन में भी पुस्तकालयाध्यक्ष अपने प्रयोगों के माध्यम से पुस्तक-चयन की वास्तविकता का स्पर्श करता है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक-चयन ज्यामिति या चिकित्सा विज्ञान की तरह विशुद्ध विज्ञान नहीं है, लेकिन वह साहित्य और मूर्तिकला की तरह ललित कलाओं की कोटि में भी परिगणित नहीं किया जा सकता। पुस्तक-चयन के लिए पुस्तकालय विज्ञान के नियमों और पुस्तकालयाध्यक्ष के अनुभव का योग एक साथ अपेक्षित होता है। न तो नियमों की लीक से सर्वथा स्वतन्त्र होकर पुस्तक-चयन किया जा सकता है और न अपने अनुभवों से विलग रहकर ही पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन में सफल हो सकता है। जिस तरह भाषा विज्ञान के लिए भाषा साध्य और साधन दोनों रूपों में व्यवहृत होती है, ठीक उसी तरह पुस्तकालय विज्ञान एवं पुस्तक-चयन प्रक्रिया के लिए भी पुस्तकें ही साधन और साध्य दोनों रूपों में इस्तेमाल की जाती हैं। इस दुहरी भूमिका में पुस्तकों के महत्त्व को पुस्तक-चयन के बिना मूर्त नहीं किया जा सकता है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने स्वीकार किया है कि पुस्तकालय के लिए पुस्तकों की केवल दो ही गतियाँ होती हैं—चयन और अस्वीकार। पुस्तक-चयन में निष्पक्ष और विवेकपूर्ण स्वीकार की भावना छिपी हुई है। पुस्तकालयाध्यक्ष को एक वैज्ञानिक की तरह अपने प्रयोग के प्रति निर्मम और समर्पित होना पड़ता है। जब तक प्रयोग पूरा नहीं हो जाता वैज्ञानिक अपने उपकरणों को विनष्ट करने में संकोच का अनुभव नहीं करता और अनवरत प्रयोग के आधार पर अन्ततः लक्ष्य की प्राप्ति करता है। ठीक इसी तरह पुस्तकालयाध्यक्ष भी विपुल मात्रा में उपलब्ध प्रकाशित साहित्य के बीच स्वीकार अथवा अस्वीकार के प्रयोग-चक्र से गुजरता है और अन्ततः पुस्तक-चयन की तार्किक प्रक्रिया द्वारा अपने संस्थान एवं उसमें आने वाले पाठकों को संतोष प्रदान करता है। समय के साथ पुस्तक-चयन-प्रक्रिया अधिकाधिक वैज्ञानिक और तकनीकी गरिमा से सम्पन्न होती गई है। आज पुस्तक-चयन के लिए नये पुस्तकालयों में तकनीकी सन्दर्भ स्रोतों और अधुनातन साधनों का उपयोग हो रहा है। इसीलिए पुस्तकालय विज्ञानियों का बहुत बड़ा समुदाय पुस्तक-चयन को विज्ञान मानने में संकोच नहीं करता।

कला की विशेषतायें और पुस्तक-चयन

ऊपर जो कहा गया है उसके विपरीत कई चिन्तकों ने पुस्तक-चयन को एक



सुव्यवस्थित मनोहारी कला के रूप में चर्चा का विषय बनाया है। इस धारणा का आधार यही है कि पुस्तक-चयन के माध्यम से पुस्तकालयाध्यक्ष की बौद्धिक सुरुचि, मानसिक सजगता, अनुभवों से पुष्ट जानकारी और व्यवस्थित संयोजन-प्रतिभा का ही परिचय मिलता है। किसी भी पुस्तकालय में एकत्र पुस्तकें केवल पुस्तकालय की शोभा का कारण नहीं बनतीं, अपितु इनके माध्यम से पुस्तकालयाध्यक्ष के चयन-कौशल का संकेतन भी होता है। इसीलिए पुस्तक-चयन को एक बौद्धिक और मानसिक प्रक्रिया कहा गया है, एवं उसे एक सुव्यवस्थित कला के रूप में मूल्यांकित किया गया है। वास्तव में किसी के लिए यह सम्भव नहीं कि वह पुस्तक-जगत् में उपलब्ध तमाम पुस्तकों के गुण-दोष का विवेचन कर सके, लेकिन समर्थ पुस्तकालयाध्यक्ष अपनी बौद्धिक क्षमता और कलात्मक सूझ-बूझ के कारण अपने पुस्तकालय के पाठकों की अभिरुचियों के अनुरूप उपयोगी और सही पुस्तकों का चयन करता है। यह अपने आप में एक कला ही है। पुस्तकालयाध्यक्ष की रचनात्मक प्रक्रिया का उदाहरण किसी भी पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों से कलात्मक सुरुचि और संयोजनात्मक कला का परिचय मिलता है। इसीलिए पुस्तक-चयन को कला के रूप में चर्चित किया गया है।

पुस्तक-चयन में विज्ञान और कला का समीकरण

कला या विज्ञान के रूप में पुस्तक-चयन को स्थापित करने के लिए अलग-अलग तर्क दिये जा सकते हैं, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि पुस्तक-चयन प्रक्रिया में विज्ञान और कला की सीमित विशेषतायें एक साथ विद्यमान हैं। यद्यपि पुस्तक-चयन के लिए प्रस्तावित तकनीकी-प्रणाली के अवसर संसार भर के पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हैं और न पुस्तक-चयन की अन्तिम सर्वमान्य वैज्ञानिक प्रणाली ही अभी तक सुनिश्चित हो सकी है, इसके बावजूद पुस्तक-चयन में विज्ञानोचित विशेषतायें हैं। विज्ञान की तरह पुस्तक-चयन एक व्यवस्थित तकनीक है, जो सिद्धान्तों, प्रयोगों और अपवादों से विकसित होती है। दूसरी ओर, पुस्तक-चयन एक सुरुचिपूर्ण कला भी है जिसके माध्यम से पुस्तकालयाध्यक्ष की बौद्धिक प्रतिभा और संयोजन कला का परिचय मिलता है। संगीत-कला और चित्रकला की तरह सूक्ष्म न होते हुए भी पुस्तक-चयन में सुरुचि सम्पन्नता और सुव्यवस्था के कलागत अवयव हैं। इसीलिए पुस्तक-चयन को केवल कला अथवा केवल विज्ञान की परिसीमा में बाँधना समीचीन न होगा। पुस्तक-चयन तो एक ऐसी कलात्मक तकनीक है जिसके द्वारा पुस्तकालय में उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप प्राप्त स्रोतों के आधार पर पाठकीय माँग की पूर्ति के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष सही पुस्तकों का सही समय में चयन करता है।



अध्याय ५

पुस्तक-चयन का स्वरूप

'चयन' शब्द की व्याख्या

पुस्तकें न केवल ज्ञान की इकाई हैं, अपितु पुस्तकालय-सेवा की आधार-शिला भी हैं। पुस्तकों के अभाव में हम किसी पुस्तकालय की परिकल्पना नहीं कर सकते किन्तु इस आधार पर पुस्तकालय के लिए हम अपने आसपास उपलब्ध सारी की सारी पुस्तकें नहीं स्वीकार कर सकते। इसी धारणा ने पुस्तक-चयन की परिकल्पना को साकार किया है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि पुस्तक-चयन ही पुस्तकालय विज्ञान रूपी भवन की पहली ईंट है। डॉ० रंगनाथन ने अपने पंचसूत्रों में बताया है कि पुस्तकें अध्ययन के लिए होती हैं, प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले, प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले, पाठक के समय की बचत हो और पुस्तकालय एक सम्वर्धनशील संस्था है। इन पंचसूत्रों का विकास मुख्यतया पुस्तक-चयन की मूलभूत प्रक्रिया पर आधारित है। इसीलिए पुस्तक-चयन पुस्तकालय एवं पुस्तकालय विज्ञान की सबसे प्रारम्भिक और केन्द्रीय अनिवार्यता है।

चयन शब्द अंग्रेजी के 'सेलेक्शन' शब्द का पर्याय है, जिसका अर्थ अनेक सामान्य वस्तुओं के बीच कुछ विशिष्ट वस्तुओं को उनकी विशेषता और आवश्यकता के अनुसार चुनना है। यह प्रक्रिया हमारे जीवन के हर कदम पर दिखाई पड़ती है। बाजार से लेकर पर्यटन तक में चयन की उपादेयता से हम सुपरिचित हैं। वास्तव में मनुष्य की यह प्रकृति है कि हम ऐसी ही वस्तुओं का चयन करते हैं, जिनसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो सके और जिनसे अधिकतम आवश्यकता की पूर्ति होती हो। चयन की आवश्यकता जिस तरह जीवन के अन्य क्षेत्रों में अनिवार्य है, उसी तरह पुस्तकालय में भी चयन का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुस्तक-चयन : एक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य

प्राचीन पुस्तकालयों में पुस्तक-चयन की परम्परा विकसित नहीं थी, क्योंकि उस युग में पुस्तकों और हस्तलिखित पोथियों, ज्ञान-विज्ञान की प्रशाखाओं की संख्या अत्यन्त सीमित थी। लेकिन आज मुद्रण-कला के विस्तार तथा जन-सम्पर्क माध्यमों के प्रसार के कारण न केवल मनुष्य के ज्ञान क्षेत्रों का सीमित विस्तार हुआ है, अपितु असंख्य विषयों पर अनन्त पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकायें छपकर आ गई हैं। इसीलिए किसी भी पुस्तकालय के सामने पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के चयन की समस्या अत्यन्त जीवंत हो गई है।

इस क्रम में पुस्तकालयों के ऊपर दोहरी जिम्मेदारी आ गई है—एक ओर तो उन्हें अपने पुस्तकालय की सीमित धनराशि के अन्तर्गत ही पुस्तकों की खरीद करनी है और दूसरी ओर उन्हें पाठकों की माँग एवं रुचि के अनुरूप, अधिकाधिक पाठकों को लाभ पहुँचाने योग्य पुस्तकें खरीदनी हैं। पुस्तक-चयन की प्रक्रिया इसी दोहरी जिम्मेदारी को साकार करने का तकनीकी और व्यावहारिक स्वरूप है।

पहले जमाने के पुस्तकालयाध्यक्षों का काम केवल पाठकों को पुस्तकें देना और लेना था, जबकि आज के विकसित आधुनिक परिवेश में पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका स्टोर-कीपर से बहुत ऊपर उठकर एक उत्तरदायी और नई गतिशीलता से सम्पन्न व्यक्ति की हो गई है। इसी कारण पुस्तक-चयन अब एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। जैसे-जैसे पुस्तकालय का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है, उसके संगठन में तकनीकी संसाधनों का समावेश होता जा रहा है, पुस्तक-चयन अधिकाधिक पारिभाषिक और तकनीकी रूप में उभर कर सामने आया है। पुस्तक-चयन को इस नये अर्थ में एक ऐसी पद्धति के रूप में पहचाना जा रहा है, जिसके माध्यम से पुस्तकालय के लिए और पुस्तकालय में सही पुस्तकों का चुनाव किया जाता है। ड्यूवी के अनुसार पुस्तक चयन वह प्रणाली है, जिसके द्वारा न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों को उत्तम पुस्तकें प्रदान की जाती हैं। इस धारणा से ज्ञात होता है कि पुस्तक-चयन अपने-आप में एक विवेक-पूर्ण क्रिया है, क्योंकि पुस्तक-चयन की प्रक्रिया से गुजरते समय पुस्तकालयाध्यक्ष को एक साथ पाठकों की माँग, पुस्तकालय के बजट और पुस्तकों की गुणवत्ता पर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। इसीलिए सेयर्स ने स्वीकार किया है कि पुस्तक-चयन एक ऐसा गम्भीर और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है, जिसका सारा भार ग्रन्थालयी के कन्धों पर रहता है।

पुस्तक-चयन पुस्तकालय का प्रथम सोपान

पुस्तक-चयन वास्तव में पुस्तक-संग्रह का पहला सोपान है। ऐसे पुस्तकालय अनाकर्षक और अनुपयोगी सिद्ध होते हैं, जिसमें पुस्तकों का संग्रह और संचयन किसी सुव्यवस्थित चयन-प्रणाली के बिना होता है। यह तो प्रत्येक संस्था का दायित्व है कि वह अपने पुस्तकालय के लिए पुस्तक-चयन की एक नीति-निर्धारित करे, जिसके अभाव में पुस्तकालय बेकार की पुस्तकों से भर सकता है अथवा आर्थिक दबावों से जूझता रहता है। पुस्तक-चयन की इस महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी का भार ऐसे व्यक्ति पर होना चाहिए जो इस कार्य को पूरी सावधानी एवं कर्त्तव्यपरायणता से पूरा करे। ऊपरी तौर पर पुस्तक-चयन जितना सरल समझा जाता है, उतना सरल नहीं होता। इसका कारण यही है कि पुस्तकालयों में पुस्तक-चयन की तकनीकी बारीकियों से तनिक भी अपरिचित होने पर चूक हो जाती है। पुस्तक-चयन का लक्ष्य सही समय पर सही पाठक को सही पुस्तक उपलब्ध कराना है। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी सम्भव है, जब पुस्तकालय में पुस्तकों का चयन सही ढंग से किया जाय। डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रवर्तित पुस्तकालय

विज्ञान के पंचसूत्रों में से दूसरा सूत्र इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि प्रत्येक पाठक को उस की वांछित पुस्तक मिलनी चाहिए। यह सूत्र इस धारणा का निषेध करता है कि पुस्तकें कुछ चुने हुए लोगों के लिए हैं अथवा कुछ चुने हुए लोग ही पुस्तकों से लाभ उठा सकते हैं। इस सूत्र के अनुसार पुस्तकालय एक ऐसी जगह है, जहाँ प्रत्येक पाठक को अपनी आकांक्षा के अनुरूप पुस्तकें प्राप्त होती हैं। पुस्तक-चयन की धारणा भी इसी सूत्र का समर्थन करती है। वास्तविकता तो यह है कि पुस्तक-चयन का सीधा सम्बन्ध पाठकों की माँग और आकांक्षा से है। इसीलिए पुस्तक-चयन ने धीरे-धीरे एक तकनीकी विज्ञान, एक व्यावहारिक सामाजिक शास्त्र और सूक्ष्म कला का रूप धारण कर लिया है।

पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका

पुस्तक की माँग ही वह पीठिका है जिस पर पुस्तक-चयन का प्रासाद खड़ा होता है। केवल भारी भरकम पुस्तकों के संग्रह से ही पुस्तकालय को सार्थक संज्ञा नहीं मिल पाती। अनुपयोगी, अश्लील और अवांछित पुस्तकों के संग्रहण से भी पुस्तकालय को वैशिष्ट्य नहीं प्राप्त होता। वास्तविक अर्थों में पुस्तकालय तभी सार्थक होता है, जब उसमें पाठकों की माँग और उनकी आवश्यकता क अनुरूप पुस्तकें एकत्र हों। मुद्रण के विस्तार और सम्पर्क माध्यमों के फैलाव ने पाठ्य सामग्री का अभूतपूर्व जाल फैला दिया है। विभिन्न विषयों पर उपलब्ध अनेकानेक पुस्तकों के बीच अपने लिए उपयोगी और पठनीय पुस्तकों को चुन पाना पाठक के लिए सहज सम्भव नहीं है। पुस्तकालयाध्यक्ष इसी कार्य में पाठक की सहायता करते हैं। कभी-कभी पाठक अश्लील साहित्य की माँग कर बैठते हैं, तो पुस्तकालयाध्यक्ष समझदार अभिभावक तथा परामर्शदाता मित्र की तरह ऐसे पाठकों का मार्ग-दर्शन करता है, उनमें अच्छी और बुरी पुस्तकों की पहचान की तमीज पैदा करता है। अपने पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन करते समय पुस्तकालयाध्यक्ष को लगातार पाठकों की माँग का ध्यान रखना चाहिए। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के अनुरूप पाठकों की माँग के अनुसार पुस्तकालय पुस्तकों की पूर्ति करता है। इस क्रम में कई बाधायें भी आती हैं। पाठकों की अनन्त इच्छाओं, वित्तीय साधनों की कमी, भण्डारन उपस्करों के अभाव और कर्मचारियों की सीमित संख्या के कारण कई बार पुस्तकालयाध्यक्ष पाठकों की माँग के अनुरूप पुस्तकों की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होता। फिर भी वह अपने इस दायित्व का पालन तो अवश्य ही करता है कि पाठकों की व्यापक माँग के अनुरूप पुस्तकों का चयन करे। पुस्तकालय के स्रोत और साधनों के अन्तर्गत पाठकों की माँग की पूर्ति की जाय, यही पुस्तक-चयन का सबसे वैज्ञानिक और व्यावहारिक स्वरूप हो सकता है।

पुस्तक-चयन की अनिवार्यता

पुस्तक-चयन की अवधारणा पाठकों की माँग और पुस्तकालय के संसाधनों की

सीमाओं से जुड़ी हुई है। समर्थ पुस्तकालय अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सही पुस्तक-चयन के सहारे ही समर्थ हुये हैं। कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष तो पाठकों की माँग का पूर्वानुमान भी लगा लेते हैं और तदनुरूप पुस्तकों का चयन करते हैं। पाठकों की विशेष माँग और विशिष्ट उपादेयता को ध्यान में रखकर भी पुस्तकों का चयन किया जाता है। यह अपनी समस्त तकनीकी प्रक्रिया और विशेषताओं के बीच पुस्तकालय की एक ऐसी वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक प्रक्रिया है, जिसके बिना न तो पुस्तकालय अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है और न पुस्तकालय में आकर पाठक ही संतुष्ट हो सकते हैं। पुस्तक-चयन के माध्यम से ही किसी पुस्तकालय के चरित्र और पाठकों की रुचि का विश्लेषण किया जा सकता है। इसीलिए पुस्तक-चयन हर पुस्तकालय की अनिवार्यतम प्रविधि है, सबसे पहली आवश्यकता है।

□ □

अध्याय ६

पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्र और पुस्तक-चयन

डॉ० रंगनाथन के पंचसूत्र

ग्रंथालयी सदासेवी पंचसूत्री परायणः ।
ग्रंथानध्येतुमेते च सर्वेभ्यः स्वयमाप्नुयः ।।
अध्येतुस्समयं शेवेदालयो नित्यमेव च ।
वर्धिष्णुरेष चिन्मूर्तिः पंचसूत्री सदा जयेत् ।।

डॉ० शियाली रामामृत रंगनाथन ने पुस्तकालय विज्ञान के आधारभूत पंचसूत्रों की प्रस्तावना करके स्थापित किया है कि प्रत्येक पुस्तकालय एक विशिष्ट कल्याणकारी संकल्प के साथ संगठित होता है। पुस्तकालय एक ऐसी जगह है जहाँ पहुँचकर ज्ञान-पिपासुओं की भूख शांत होती है, पाठकों की जिज्ञासाओं का समाधान होता है। इसीलिए पुस्तकालय विज्ञान में पुस्तकालय के लिए ऐसी पुस्तकों के चयन की वकालत की गई है, जो अधिकाधिक पाठक-समुदाय का हित-साधन कर सके। स्वभावतः पुस्तक-चयन का अविभाज्य सम्बन्ध पुस्तकालय विज्ञान के आधारभूत पंचसूत्रों के साथ है। वास्तव में पुस्तकालय विज्ञान का प्रासाद इन्हीं पाँचसूत्रों की नींव पर टिका हुआ है। इनमें से किसी भी एक सूत्र के कमजोर पड़ने पर पुस्तकालय विज्ञान का प्रासाद धराशायी हो सकता है। दूसरे शब्दों में पुस्तकालय विज्ञान उस द्रौपदी की तरह है, जिसके लिए पंचपाण्डवों की समान गरिमा और उपादेयता है। डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रस्तावित इन पंचसूत्रों में सूचित किया गया है कि पुस्तकें उपयोग में आने वाली चीजें हैं, वे सबके लिए हैं; प्रत्येक पाठक को उसकी वांछित पुस्तक मिलनी चाहिये; प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिलना चाहिये; पाठक का समय बचना चाहिये; और पुस्तकालय अपने आपमें एक विकासशील संस्था है। इन पचसूत्रों का सम्बन्ध पुस्तकालय की अवधारणा और पुस्तकालय विज्ञान के इतर उपांगों के साथ जितना है, उतना ही पुस्तक-चयन के सन्दर्भ में प्रासंगिक है। इसका कारण यही है कि पुस्तक-चयन पाठकों की माँग, पुस्तकों की उपलब्धता और पुस्तकालयों से संसाधनों पर समान रूप से आश्रित एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके बिना हम पुस्तकालय की कल्पना ही नहीं कर सकते।

पुस्तकें उपयोग में आने वाली वस्तु है

पुस्तकालय विज्ञान के प्रथम सूत्र के अनुसार पुस्तकें अध्ययन के लिए ही लिखी और मुद्रित की जाती हैं। इस धारणा के आधार पर पुस्तक की बाह्य और आन्तरिक सामग्री ऐसी होनी चाहिये जो अधिक समय तक अधिकाधिक पाठकों के

उपयोग में आ सके। पुस्तक का आकार सुविधाजनक हो, उसका मुद्रण अच्छे कागज पर अच्छे टाईप में हो, उसकी प्रस्तुति नयनाभिराम हो, उसका रूपाकार सुविधाजनक हो, उसकी जिल्द-बन्दी टिकाऊ हो और उसके आदान-प्रदान में असुविधा न हो। इन सारी विशेषताओं से सम्पन्न होने पर ही कोई पुस्तक पुस्तकालय में अधिकाधिक उपयोगार्थ रखी जानी चाहिये। पुस्तक चाहे किसी भी विषय पर लिखी गई हो, इन आधारभूत विशेषताओं से सम्पृक्त रहने पर ही उन्हें आदर्श पुस्तक की संज्ञा दी जा सकती है। पुस्तकालय में पुस्तकों का व्यापक उपयोग होता है, इस नाते असुविधाजनक आकार, कमजोर कागज, ढीली जिल्द और अस्पष्ट मुद्रण वाली पुस्तकें पुस्तकालय में जल्द ही विनष्ट हो जाती हैं। ऐसी पुस्तकों से न केवल पुस्तकालय की गरिमा घटती है, अपितु पुस्तकों की उपयोग-क्षमता में भी कमी आती है। इसीलिए पुस्तक-चयन का भी यह प्राथमिक सिद्धान्त है कि पुस्तकालय के लिए ऐसी ही पुस्तकों का चयन किया जाय, जो आकर्षक और मजबूत हो, तथा अधिकाधिक पाठकों के उपयोग में आ सकें। पुस्तकों की उपयोग-क्षमता और पुस्तकालयों की उपयोगार्थ उपादेयता के सन्दर्भ में किया गया पुस्तक-चयन भाषा और पुस्तकीय आकर्षण के अन्य पहलुओं पर भी आश्रित होता है। हिन्दी भाषी क्षेत्र के किसी पुस्तक रूप में यदि मलयालम की पुस्तकें अधिसंख्य मात्रा में एकत्र कर दी जाय तो अपनी तमाम विशेषताओं के बावजूद उन पुस्तकों का सही उपयोग नहीं हो सकेगा। पुस्तक-चयन करते समय पुस्तकों की उपादेयता के इस पहलू पर भी विचार करना होगा कि पुस्तकालय के लिए किस भाषा की पुस्तकें चुनी जा रही हैं। वास्तव में पुस्तक-चयन पुस्तकालय की संरचना और उसमें आने वाले पाठकों के बौद्धिक स्तर के आनुपातिक अन्तर से क्रियान्वित होने वाली प्रक्रिया है, लेकिन पुस्तक-चयन में पुस्तकालय विज्ञान के इस प्रारम्भिक सूत्र को दृष्टिपथ से कभी विलग नहीं किया जा सकता कि पुस्तकें उपयोग के लिए ही होती हैं।

प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले

अपने दूसरे सूत्र में डॉ० रंगनाथन ने घोषणा की है कि प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले। इस सूत्र के अनुसार पुस्तकालय में उपलब्ध समस्त पठन-सामग्री न तो पुस्तकालयाध्यक्ष की व्यक्तिगत रुचि के आधार पर एकत्र होनी चाहिये और न किसी पाठक विशेष की माँग को सन्तुष्ट करने में ही सहायक हो। वस्तुतः पुस्तकालय में उपलब्ध सारी पुस्तकें वहाँ आने वाले सभी पाठकों के लिए समान भाव से उपलब्ध होनी चाहिये। पुस्तकालय विज्ञान का यह सिद्धान्त समाजवाद की इस केन्द्रीय धारणा का सबसे जीवन्त उदाहरण है कि सामाजिक सम्पदा पर व्यक्ति या समुदाय विशेष का एकाधिकार नहीं होता, सामाजिक सम्पदा का द्वार सबके लिए समान भाव से खुला रहता है। पुस्तकालय विज्ञान भी इसी धारणा का पालन करता है और मानता है कि पुस्तकालय की सारी पुस्तकें सबके लिए होती हैं। इसीलिए पुस्तक-चयन की सबसे वैज्ञानिक और तार्किक प्रक्रिया यही कही जा सकती है कि पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय

में आने वाले हर पाठक की अभिरुचि और आवश्यकता के अनुरूप चयन करे, ताकि पाठक को अपनी मनचाही पुस्तक मिल सकें। पुस्तकालय में पाठकीय माँग और रुचि की जानकारी प्राप्त करने के लिए अभिमत पुस्तिका रखी जा सकती है अथवा पाठकों से पर्चियों पर उनकी पसन्द माँगी जा सकती है। इससे सबकी आवश्यकता और पसन्द के अनुरूप पुस्तक-चयन करने में सुविधा होगी और पुस्तकालय में चयन की गई पुस्तकें सबके लिए समान रूप से उपयोगी हो सकेंगी। समाज की बदलती हुई परिस्थितियों, बौद्धिक सम्भावनाओं और नवीनतम अनुसंधानों के सन्दर्भ में यह सर्वथा आवश्यक है कि पुस्तक-चयन पुस्तक के वृहत्तर उपयोग और सार्वजनिक उपभोग को केन्द्र में रखकर हो।

प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले

पुस्तकालय विज्ञान का तीसरा सूत्र है कि प्रत्येक पुस्तक को उसका उपयुक्त पाठक मिले। इस सूत्र से पुस्तकों की उपयोगिता और उनकी व्यापक भूमिका का संकेतन मिलता है, साथ ही ध्वनि भी निकलती है कि पुस्तकालय के लिए चुनी गई पुस्तकों में से प्रत्येक को अपने लिए सही पाठक की तलाश बनी रहती है। किसी भी पुस्तकालय में पहुँचकर हम स्तंभित हो जाते हैं कि वहाँ उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर हजारों पुस्तकें, पता नहीं, कौन पढ़ता होगा। यदि किसी पाठक को बाल-मनोविज्ञान पर पुस्तकों की तलाश है तो वह अभियांत्रिकी और साहित्य, रसायन और चित्रकला, राजनीति और जीव-विज्ञान जैसे कई विषयों के प्रकोष्ठकों को लाँघ कर सीधे बाल-मनोविज्ञान की पुस्तकों के पास पहुँचना पसन्द करेगा। पुस्तकालय में जिस समय कोई पाठक डॉ० राधाकृष्णन के दार्शनिक विचारों का अध्ययन करता है, वहीं कोई पाठक फिल्मी पत्रिकाओं में नये कलाकारों के पते उतारने में मशगूल हो सकता है। जिस समय कोई पाठक मुजतबा हुसैन की हास्य रचना को पढ़कर मन ही मन हँसता रहता है, ठीक उसी समय कोई पाठक गणित की किसी समस्या से जूझता रहता है। तात्पर्य यह कि पुस्तकालय में असंख्य विषयों की असंख्य पुस्तकें होती हैं और इन सारी पुस्तकों के लिए उपयुक्त पाठक पुस्तकालय में आते हैं। पुस्तकालयाध्यक्ष का यह लक्ष्य होना चाहिये कि वह अपने संस्थान के लिए ऐसी पुस्तकों का चयन करे जो अधिकाधिक पाठकों को सन्तुष्ट कर सकें। जिस तरह पुस्तकें पाठक का इंतजार करती हैं, ठीक उसी तरह पाठक भी पुस्तकों की प्रतीक्षा करते हैं। इस नाते पुस्तक-चयन ऐसा होना चाहिये कि पाठक और पुस्तकों के बीच की दूरी अधिकाधिक कम हो।

पाठकों का समय बचे

पुस्तकालय विज्ञान का चतुर्थ सूत्र स्थापित करता है कि पुस्तकालय में पाठकों का अधिकाधिक समय बचना चाहिये। कई पुस्तकालयों में कुव्यवस्था और असहयोग के कारण पाठकों को वांछित पुस्तक खोजने में बड़ी परेशानी होती है और उनका पर्याप्त समय नष्ट होता है, जबकि डॉ० रंगनाथन की परिकल्पना यह थी कि पुस्तकालय में पाठकों के समय को बचाने का अधिकतम यत्न किया जाना चाहिये। इस यत्न का एक

महत्त्वपूर्ण आयाम यह भी है कि सही पुस्तक-चयन के माध्यम से पाठकों के समय की बचत की जाय। वास्तव में पुस्तक-चयन की वैज्ञानिक प्रक्रिया न केवल पुस्तकालय की दक्षता का परिचायक है, अपितु इसके माध्यम से पुस्तकालय अपने पाठकों के समय की रक्षा भी करता है। विशेषज्ञों की राय, प्रकाशन-सूचियों, ग्रन्थ-सूचियों और पुस्तक समीक्षाओं के आधार पर चयनित पुस्तकें पुस्तकालय में पाठकों की सहायता करती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन पाठकीय रुचि और आवश्यकता को दृष्टिपथ में रखकर किया जाय, तभी पाठकों का समय बचेगा।

पुस्तकालय एक विकासशील संस्था है

पुस्तकालय विज्ञान के अन्तिम सूत्र के अनुसार पुस्तकालय एक विकासशील संस्था है। वह तालाब का ठहरा हुआ पानी नहीं, अपितु नदी की गतिशील धारा है। जितनी तीव्रता के साथ मनुष्य नव्यतम अनुसंधानों और बौद्धिक चमत्कारों के साथ विकासशील हो रहा है, उतनी ही तेजी से पुस्तकालय की संकल्पना में भी बदलाव आ रहा है। इतिहास में उल्लिखित प्राचीन पुस्तकालयों से आज के पुस्तकालय सर्वथा भिन्न हो गये हैं। इसी तरह पुस्तकालय के लिए पुस्तकों की चयन-प्रक्रिया में भी अभूतपूर्व बदलाव आता गया है। समय के साथ पुस्तक-चयन के उपकरणों का विस्तार हुआ है और पुस्तक-चयन की प्रविधि में अन्तर आया है। गतिशील विकासात्मकता के इस दौर में पुस्तक-चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि अतिशय शीघ्रता के कारण कोई महत्त्वपूर्ण पुस्तक-चयन से वंचित न रह जाय और असावधानी के कारण अनर्गल पुस्तकों का चयन न हो जाय, लगातार गतिशील पुस्तकालय संस्था अपनी पुस्तक-चयन-पद्धति के कारण ही अधिकाधिक विकासशील बनी रह पाती है।

निश्चय ही पुस्तक-चयन पुस्तकालय और पुस्तकालय विज्ञान की सारभूत स्थापनाओं का मूलाधार है। पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों के निर्वाह और परिचालन में पुस्तक-चयन की अनिवार्य भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। पुस्तक-चयन पुस्तकालय विज्ञान रूपी महाभारत में सुदर्शनधारी श्रीकृष्ण जैसा महत्त्वपूर्ण है, जिसके अभाव में डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पंचसूत्रों की सिद्धि नहीं हो सकती—ठीक वैसे ही जैसे श्रीकृष्ण के बिना पाण्डवों की जय की कल्पना असम्भव थी।

□ □

अध्याय ७

पुस्तक-चयन : आवश्यकता और उद्देश्य

पुस्तक-चयन का महत्व

पुस्तकों के माध्यम से ही पुस्तकालय संगठित होता है और पुस्तकालय के द्वारा पुस्तकें व्यापक रूप से पाठक-संसार तक पहुँचती हैं। इसीलिए पुस्तकालय से आशा की जाती है कि उसमें हर पाठक की आवश्यकता और अभिरुचि के अनुरूप पुस्तकें रहेंगी। पाठकों की इस आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकालय में पुस्तकों का संग्रहण होता है, लेकिन पुस्तकालय में पुस्तकें न तो अपने आप चली आती हैं और न बरसाती बाढ़ की तरह पुस्तकों के रूप में कूड़ा-कचरा पुस्तकालय के महासागर में समाहित होता है। पुस्तकालय विज्ञान ने पुस्तक-चयन को इसी कारण विशिष्ट स्थान दिया है, ताकि प्रत्येक पुस्तकालय अपने प्रत्येक पाठक की माँग और रुचि के अनुरूप पुस्तकें जुटा सकें। किसी भी पुस्तकालय के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह हर साल छपने वाली सारी पुस्तकों को खरीद कर एकत्र करे। स्थिति तो यह है कि हिन्दी में हर साल कुल कितनी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, इसका अन्तिम प्रामाणिक ब्यौरा कोई नहीं दे सकता और न किसी पुस्तकालय में इन सारी की सारी पुस्तकों की खरीद सम्भव है। इसके बावजूद हर पुस्तकालय में सभी आस्वादों की विभिन्न पुस्तकों की उपस्थिति आवश्यक समझी गई है। इसीलिए पुस्तकालय में वित्तीय साधनों और संरक्षण के साधनों को देखते हुये पाठकों की माँग के अनुरूप अच्छी और अनिवार्य पुस्तकों का चयन किया जाता है। इस क्रम में अवांछित पुस्तकों का चयन नहीं हो पाता और उपयोगी तथा अनिवार्य पुस्तकों का चयन सम्भव हो पाता है।

पाठकों की माँग और रुचि की रक्षा

पुस्तक-चयन का औचित्य मुख्य रूप से पाठकों की माँग एवं अभिरुचि पर केन्द्रित है। पुस्तकालयाध्यक्ष का यह प्राथमिक दायित्व है कि वह अपने ग्रन्थागार के पाठकों को सन्तुष्टि प्रदान करे। इसीलिए पुस्तक-चयन उसकी अपनी प्रतिभा, क्षमता और दूर-दृष्टि का परिचायक भी है। हर सफल पुस्तकालयाध्यक्ष को मालूम है कि पुस्तकालय का महत्व उसमें उपलब्ध पठनीय सामग्री के संग्रह पर ही निर्भर है। यदि सही एवं उपयोगी पठनीय सामग्री का संकलन न हो तो पुस्तकालय किसी को आकृष्ट नहीं कर सकेगा, वह लोकप्रिय नहीं हो पायेगा। इसीलिए पुस्तकालय भवन की भव्यता और कर्मचारियों की कार्यदक्षता से भी अधिक अनिवार्य है कि पुस्तकालय में आने वाले पाठकों को सन्तुष्ट करने में पुस्तकें समर्थ हों। इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक व्यवसाय में फैली बहुतेरी पुस्तकों के बीच उपयुक्त और अनिवार्य पुस्तकों का

चयन अपनी संस्था के लिए करें। लगातार बढ़ती हुई प्रकाशन दर के कारण पुस्तक-चयन की समस्या जितनी जटिल होती जा रही है, पुस्तक-चयन को आवश्यकता भी उतनी ही सघन होती जा रही है। यही कारण है कि पुस्तक-चयन करते समय पुस्तकालयाध्यक्ष के सामने एक ओर पाठकों की माँग और अभिरुचि रहती है तो दूसरी ओर पुस्तकालय के संसाधनों की सीमायें होती हैं। एक ओर पुस्तकों की विशाल संख्या होती है तो दूसरी ओर वैज्ञानिक पुस्तक-चयन का संकल्प होता है। पुस्तक-चयन के माध्यम से ही पुस्तकालय में वास्तविक पाठ्य-सामग्री आती है, इस नाते पुस्तक-चयन की उपादेयता से इनकार नहीं किया जा सकता।

पुस्तक-चयन ही वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से पुस्तकालय उपयोगी और वास्तविक पाठ्य-सामग्री का संग्रह करने में सफल होता है। इसीलिए पुस्तक-चयन की आवश्यकता पुस्तकालय विज्ञान की ही अनिवार्यता नहीं है, अपितु हमारे दैनिक जीवन की भी एक महत्त्वपूर्ण माँग है। जिस तरह रेल की पटरी से तनिक भी विचलित होने पर दुर्घटना की सम्भावना रहती है, ठीक उसी तरह पुस्तकालयाध्यक्ष की थोड़ी-सी असावधानी से समूचे पाठक-समाज पर बुरा असर पड़ सकता है। संसार भर की भाषाओं में अच्छी और बुरी, शिष्ट और अश्लील, उपयोगी और निरर्थक साहित्य का ऐसा विशाल अम्बार लगा हुआ है कि उनके बीच विभाजक रेखा खींचना बहुत ही श्रम साध्य कार्य बन गया है। हम जितनी पुस्तकों को मुद्रणालय से बाहर निकलते देखते हैं, वे सबकी सब न तो व्यावहारिक हैं और न पाठकोपयोगी। बहुत सारी कुत्सित और अश्लील, बेकार और निरुद्देश्य पुस्तकें भी प्रकाशित होकर प्रकाशन-जगत की भीड़ में शामिल हैं। इस विषम स्थिति में पुस्तक-चयन ही वह लैक्टोमीटर है, जो दूध और पानी का पार्थक्य बतलाता है, अच्छी और बुरी पुस्तकों के बीच पार्थक्य स्थापित करता है। इस तरह पुस्तक-चयन का महत्त्व और औचित्य विशाल सामाजिक जीवन के बीच अच्छे मूल्यों के प्रसार की दृष्टि से अनुपम है! सजग अभिभावक और हितैषी मित्र की तरह पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन करता है तो वह केवल अपने पुस्तकालय को ही संग्रहणीय पुस्तकों से नहीं भरता, अपितु इसी बहाने पुस्तकालय में आने वाले तमाम लोगों की सुरुचि भी निर्धारित करता है। अगर पुस्तकालय में पुस्तकों का आकलन पाठकों की माँग और पुस्तकों के स्तर को ध्यान में रखे बिना किया जाता है, तो ऐसा पुस्तकालय छत और दीवारों से बने भवन के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। पुस्तकालय की ग्रन्थ-सूची चाहे कितनी ही सुन्दर हो, पुस्तकों का संयोजन कितना ही व्यवस्थित हो, पुस्तकालय के कर्मचारी कितने ही कुशल और चुस्त हों, पुस्तकालय परिसर में कितनी ही सफाई हो—ये सारी विशिष्टतायें पुस्तक-चयन की मूलभूत प्रक्रिया बिना अधूरी लगेंगी। अगर सही पुस्तकों का चयन नहीं हो तो सारा पुस्तकालय व्यर्थ सिद्ध होगा। इसीलिए पुस्तकालय को अधिक उपयोगी और अधिक जीवन्त बनाने के लिए आवश्यक है कि पुस्तक-चयन की वैज्ञानिक एवं तार्किक पद्धति का उपयोग किया जाय।

पुस्तक-चयन में पुस्तकालयाध्यक्ष का दायित्व

पुस्तक-चयन में असावधानी की गुंजाइश बहुत कम है। जिस तरह सुई में धागा डालने वाले को पूरी एकाग्रता के साथ सुई की आँख का संधान करना होता है, ठीक उसी तरह पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तक-चयन में पर्याप्त सावधानी, चिन्तन और बौद्धिक तीक्ष्णता का सहारा लेना चाहिये। ऐसा इसलिए आवश्यक है कि पुस्तक-चयन एक साथ पाठकों की माँग, पुस्तकालय के संसाधनों और पाठकीय रुचि के बीच सन्तुलन स्थापित करता है। इसीलिए पुस्तकालय के समृद्ध भण्डारन के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तक-चयन के मूलभूत तत्त्वों और उद्देश्यों से भलीभाँति परिचित होना चाहिये। पुस्तक-चयन का उद्देश्य एक पुस्तकालय की वित्तीय सीमाओं के अन्तर्गत पाठकीय माँग की सन्तुष्टि करना है तो दूसरी ओर पुस्तक-चयन के माध्यम से अच्छी एवं उपयोगी पुस्तकों के प्रति जनरुचि जाग्रत की जाती है। बहुत सारे पाठक किसी विशिष्ट विषय पर अच्छी पुस्तकों से अनभिज्ञ रहते हैं। बहुत सारे लोग पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री के प्रति उदासीन रहते हैं। इन समस्याओं का निराकरण पुस्तकालयाध्यक्ष को करना चाहिये। पुस्तक-चयन के माध्यम से उपयुक्त पुस्तक की आपूर्ति, उपयुक्त समय पर उपयुक्त पाठक को की जाती है। पूर्वमुद्रित और नवमुद्रित तमाम पुस्तकों के बीच विशिष्टता और उपयोगिता की कसौटी पर पुस्तक-चयन करना ही पुस्तकालय विज्ञान की सबसे पहली सीख है। इसके अभाव में न तो पुस्तक की कोई उपादेयता है, न पुस्तकालय का कोई औचित्य है और न पाठक-समाज को ही कोई लाभ पहुँचा सकता है। इसीलिए पुस्तकालय में पुस्तक-चयन एक अनिवार्य एवं सोद्देश्य कार्य-प्रक्रिया है, जिसकी उपादेयता निःसंदिग्ध है।

□ □

अध्याय ८

पुस्तक-चयन के उपकरण

पुस्तक-चयन के उपकरणों का संकेतन

पुस्तक-चयन की सम्पूर्ण अवधारणा और प्रक्रिया उन साधनों पर आधारित है, जिनके माध्यम से पुस्तक-चयन साकार होता है। किसी भी पुस्तकालय की श्रीवृद्धि के लिए पुस्तक-चयन इतनी सावधानी से होना चाहिये कि उपलब्ध संसाधनों के आधार पर पुस्तकालय अधिकाधिक पाठकों के लिए उपयोगी हो सके। यदि पुस्तक-चयन में अर्थलोभ और पदगरिमा की गन्ध आ गई तो पुस्तकालय केवल पुस्तकों का भण्डार ही रह जायेगा। पुस्तकों के वास्तविक और सुविचारित चयन के माध्यम से पुस्तकालय में अनिवार्य और उपयोगी पठन-सामग्री का एकत्रीकरण हो। पुस्तक-चयन की प्रक्रिया में उन उपकरणों के योगदान से इन्कार नहीं किया जा सकता, जिनके बिना पुस्तक-चयन का ईमानदार चरित्र सामने नहीं आ सकता। पुस्तक-चयन के उपकरण स्वयं पुस्तकालय के साधनों और पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रयासों से सम्बद्ध हैं। पुस्तकों का भण्डारन ही पुस्तकालय का लक्ष्य नहीं है, अपितु अपने चारों ओर फैले उपकरणों के सहारे जागरूक पुस्तकालयाध्यक्ष अपने संस्थान को अधिक जीवन्त, गतिशील और उपयोगी बनाता है।

विविध उपकरण

पुस्तकालय के आर्थिक साधन ही पुस्तक-चयन की रीढ़ नहीं हैं। कई पुस्तकालयों में पुस्तक-चयन की जहमत से बचने के लिए पुस्तकालय के अधिकारी आर्थिक सीमाओं का बहाना करते हैं। कुछ पुस्तकालय पुस्तक-चयन के मूलभूत उपकरणों से विरत रहकर मनचाही और अनावश्यक पुस्तकों का भण्डारन करते हैं। दान स्वरूप प्राप्त पुस्तकों को भी पुस्तक-चयन के उपकरणों की कसौटी पर परखने के बाद ही समाहित करना चाहिये। महत्त्व पुस्तकों के मूल्य अथवा उनको प्राप्त करने में होने वाली कठिनाइयों का नहीं, महत्त्व इस बात का है कि पुस्तकों का भण्डारन पुस्तक-चयन के किन उपकरणों के सहारे किया गया है। आप किसी भी पुस्तकालय की विषय-सूची देखकर यह अनुमान लगा सकते हैं कि इस संस्थान में पुस्तक-चयन में किन उपकरणों का सहारा लिया गया है। इसीलिए पुस्तक-चयन के पूर्व उन सारे अधिकारिक साधन-सूत्रों की जानकारी अपेक्षित है, जिनके अभाव में पुस्तक-चयन पूर्ण नहीं हो सकता। किसी भी पुस्तकालया-ध्यक्ष के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह बाजार में उपलब्ध सारी पुस्तकों को मंगाकर देखे और उनमें से अपने पुस्तकालय के लिए उपयुक्त पठन-सामग्री का चयन करे। यह भी सम्भव नहीं है कि पुस्तकालय में सभी विषयों और ज्ञान-क्षेत्रों के विशेषज्ञ हमेशा उपलब्ध हों, जिनकी सहायता से पुस्तक-चयन किया जा सके। स्वयं पुस्तकालयाध्यक्ष भी ऐसा बृहस्पति नहीं होता कि वह साहित्य और चिकित्सा, जीव-विज्ञान और स्थापत्य,

गणित और संगीत जैसे विविध विषयों की विविध पुस्तकों के बीच सही चुनाव करने में समर्थ हो। वास्तव में पुस्तक-चयन किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं, अपितु इसमें पुस्तकालय के समूचे पाठक समुदाय, विशेषज्ञ-समूह और अन्य उपकरणों की समान हिस्सेदारी होती है। विश्वविद्यालयों और तकनीकी संस्थानों के पुस्तकालयों में विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों को पुस्तक-चयन समिति में रखा जाता है, लेकिन ऐसी समितियाँ न तो हर पुस्तकालय में होती हैं और न पुस्तकालयाध्यक्ष को ऐसी समिति पर ही आश्रित रहना चाहिये। इसीलिए पुस्तक-चयन के उपकरणों के रूप में विशेषज्ञों और पुस्तकालय के कर्मचारियों के स्थान पर पाठकों, पुस्तक-समीक्षाओं, ग्रन्थ-सूचियों आदि का उल्लेख किया जाता है।

पाठक की माँग

पाठक पुस्तकालय का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। उसकी माँग न केवल पुस्तक-चयन को निर्धारित करती है, अपितु उसकी सलाहें पुस्तक-चयन में केन्द्रीय भूमिका निभाती हैं। पाठक के बिना हम न पुस्तकालय की कल्पना कर सकते हैं और न पाठकीय सलाह के बिना पुस्तक-चयन पूर्ण हो सकता है। प्रकाशन-संस्थाओं, पुस्तक मेलों और ग्रन्थ-सूचियों में किसी नयी और उपयोगी पुस्तक की जानकारी प्राप्त होते ही सजग पाठक के मन में उसे पढ़ने की इच्छा जगती है। ऐसे जागरूक पाठकों की सूचना और सलाह पर पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन होना चाहिये। पुस्तकालय का एकमेव लक्ष्य पाठकों की पठन जिज्ञासा की पूर्ति करना है और इस क्रम में पाठकों की सलाह पुस्तक-चयन में सहायक होती है। कई पुस्तकालयों में पाठकों के सुझाव-पत्र स्वीकार करने की स्वस्थ परम्परा है। पाठक अपनी जानकारी और आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकों की खरीद के बारे में सुझाव देते हैं और पुस्तकालयाध्यक्ष इन सुझाव-पत्रों के सम्यक् निरीक्षण के आधार पर पुस्तक-चयन करता है। कई बार पाठक द्वारा दी गई सूचना अपर्याप्त होती है, तो ऐसी स्थिति में अन्य उपकरणों के द्वारा भी पाठकीय सलाह को पूर्णता देकर उसका सम्मान करना चाहिये। पाठकों की सलाह पुस्तक-चयन-प्रक्रिया का सबसे जीवन्त और उपयोगी साधन है, इसमें सन्देह नहीं।

पुस्तक-समीक्षाओं और पुस्तक सूचियों की भूमिका

पुस्तकालय के वाचनालय में आने वाली पत्र-पत्रिकायें भी अपने ढंग से पुस्तक-चयन में सहायक होती हैं। वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक, द्वैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक स्तरों पर प्रकाशित होने वाली लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक-समीक्षा का एक स्तम्भ होता है। इस स्तम्भ में प्रकाशित पुस्तक-समीक्षाओं के आधार पर जागरूक पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन में सुविधा प्राप्त करता है। कई पत्रिकायें तो केवल पुस्तक-समीक्षायें ही प्रकाशित करती हैं—जैसे—समीक्षा (मासिक, पटना) और प्रकर (मासिक, दिल्ली) में हिन्दी की ताजी पुस्तकों की समीक्षायें ही छपती हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समीक्षाओं के आधार पर पुस्तक-चयन अपने

आप में कोई सरल कार्य नहीं है, फिर भी पुस्तकों के विशाल संसार में नीर-क्षीर विवेक के सहारे सही पुस्तक-चयन तक पहुँचने में पुस्तक-समीक्षा का उपकरण सहायक होता है।

संसार भर की भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के बारे में प्राथमिक सूचनायें स्वयं प्रकाशक ही देते हैं। इसीलिए पुस्तक-चयन में विभिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रदत्त पुस्तक-सूचियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कई प्रकाशक तो अपने संस्थान की ग्रन्थ-सूची और अन्य पुस्तकीय जानकारियों के लिए स्वतन्त्र पत्रिकायें भी प्रकाशित करते हैं। हिन्दी में नया साहित्य (राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली), प्रकाशन समाचार (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली), पुस्तक परिचय (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली), साहित्य दिशा (श्री हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली), साहित्य परिचय (विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा), आज का अदब (हिन्दी बुक सेन्टर, दिल्ली), हिन्दी प्रचारक (हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी) जैसी मासिक पत्रिकायें विशुद्ध प्रकाशकीय सूचना पर केन्द्रित हैं। ग्रन्थ-सूचियों और ऐसी प्रकाशकीय जानकारियों के अतिरिक्त पुस्तक-चयन में कई ग्रन्थ-पुटियाँ भी सहायक होती हैं, जिनका निर्माण मूलतः सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में होता है। विभिन्न विषयों के अलग-अलग सन्दर्भ-ग्रन्थों और ग्रन्थ-सूचियों के सहारे पुस्तक-चयन को सुगमतर बनाया जा सकता है। निश्चय ही पुस्तक-चयन के उपकरणों के बीच ऐसी पुस्तक-सूचियों की विशिष्ट भूमिका है। बड़े पुस्तकालयों की सूचियाँ भी छोटे पुस्तकालयों के लिए पुस्तक-चयन में उपयोगी सिद्ध होती हैं।

पुस्तक-चयन के उपकरणों के बीच अपेक्षित तालमेल के आधार पर जागरूक पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन में समर्थ होते हैं। पुस्तक-चयन अपने आप में एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, इसलिए पुस्तक-चयन के उपकरण भी एकदम ताज़े और प्रासंगिक होने चाहिये। इन उपकरणों की सहायता के आधार पर ही पुस्तकालय में पुस्तकों का सही भण्डारन हो पाता है, पुनरावृत्तियाँ नहीं होती हैं और निरर्थक पुस्तकों का समावेश नहीं होने पाता है। पुस्तक-चयन की कला इन उपकरणों की बैशाखी के बिना अन्तिम रूप नहीं ग्रहण कर पाती।

□ □

अध्याय ६

पुस्तक-चयन की समस्याएँ

पुस्तक-चयन की समस्या

पुस्तक-चयन का कार्य जितना सरल समझा जाता है, वास्तव में उतना सरल नहीं होता। केवल पुस्तकालय विज्ञान का ज्ञाता होना ही पुस्तक-चयन में भी सक्षम होने का प्रमाण नहीं है और न समझदारी। वास्तव में पुस्तक में पुस्तक-चयन की प्रक्रिया एक लम्बी व्यावहारिक और तकनीकी प्रक्रिया है, जो पुस्तकों, पाठकों और पुस्तकालय के संसाधनों से जुड़ी विविध समस्याओं से जूझती है। जिस तरह पाठकों की माँग और अभिरुचि की समस्या को पुस्तक-चयन द्वारा सुलझाया जाता है, उसी तरह पुस्तक-चयन की समस्या भी प्रधानतया पाठक से ही जुड़ी होती है। पुस्तक-चयन की समस्याएँ पुस्तकालयाध्यक्ष के सामने एक अनूठे चिन्तन को उपस्थित करती हैं। किसी भी पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह पुस्तकालय के सभी पाठकों की व्यक्तिगत रुचियों और माँगों के अनुरूप पुस्तकों का संग्रह कर सके। यह भी सम्भव नहीं है कि पुस्तकालय प्रकाशित ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध सारी सामग्री को खरीद ले, क्योंकि प्रत्येक पुस्तकालय की आर्थिक सीमाएँ होती हैं। पुस्तकों के रख-रखाव के साधन भी पुस्तकालय में सीमित ही होते हैं। इसीलिए पुस्तक-चयन एक अनिवार्य प्रकिया होने के बावजूद कई समस्याओं से जुड़ी होती हैं। डॉ० रंगनाथन ने भी स्वीकार किया है कि पुस्तकालय में संग्रह करने के लिए पुस्तकों का चयन करना एक कठिन न्याय करने जैसा है। समर्थ और विवेकी न्यायाधीश की तरह पुस्तकालयाध्यक्ष अपनी बुद्धिमत्ता और क्षमता के माध्यम से पुस्तक-चयन की समस्याओं को पार करता है।

पाठकों की माँग की समस्या

पुस्तक-चयन की सबसे पहली समस्या पाठकों से जुड़ी है। मेलविल ड्यूवी का मत है कि प्रत्येक पाठक को उचित समय पर उचित पुस्तक उपलब्ध कराना ही पुस्तकालयाध्यक्ष का कर्त्तव्य है। पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों में भी इस धारणा को विस्तार मिला है। वास्तव में पुस्तकालय एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसमें समाज के सभी वर्गों के लोग पाठक के रूप में पधारते हैं। आयु और लिंग, आर्थिक स्तर और सामाजिक जीवन के विभेदों को तोड़कर समूचे सामाजिक परिवेश से पाठक पुस्तकालय में आ सकते हैं। इन सारे पाठकों की अभिरुचि और माँग के सन्दर्भ में पुस्तक-चयन पुस्तकालयाध्यक्ष का लक्ष्य होता है। इस नाते पुस्तक-चयन की केन्द्रीय समस्या पाठकों से सम्बद्ध है, क्योंकि किसी भी पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए यह आसान नहीं है कि वह सभी पाठकों की रुचियों से सुपरिचित हो और सबकी पाठकीय माँग की पूर्ति कर

सके। इसके बावजूद कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष यत्न करते हैं कि पाठकों की रुचि और आवश्यकता का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाय और तदनुरूप पुस्तक का चयन हो। पुस्तक-चयन का सीधा उद्देश्य यह है कि पुस्तकालय में चुनी गई कम-से-कम पुस्तकों द्वारा अधिक-से-अधिक पाठकों की जिज्ञासा और माँग की पूर्ति हो। कभी-कभी पाठकों द्वारा ऐसी भी पुस्तकों की माँग की जाती है, जिनकी आपूर्ति वांछनीय नहीं। अश्लील और निम्नस्तरीय पुस्तकों से पाठकों को बचाते हुए पुस्तकालयाध्यक्ष अपने पाठकों की पाठ्य-रुचि का परिष्कार करता है।

ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जहाँ पाठक अपनी माँग की आपूर्ति में विलम्ब अथवा अस्वीकृति पाकर भावावेश में क्रोधित हो जाते हैं। ऐसे अवसर पर भी संयमी पुस्तक-चयन करने वाले अपना संयम नहीं खोते। पाठकों की अभिरुचि और आवश्यकता के अनुरूप किया गया पुस्तक-चयन ही सबसे अधिक प्रासंगिक होता है। इसी के आधार पर पुस्तक-चयन के मार्ग में आने वाली पाठक सम्बन्धी समस्यायें समाप्त हो सकती हैं।

पाठ्य सामग्री के विस्तार की समस्या

पुस्तक-चयन के मार्ग में आने वाली दूसरी बाधा पाठ्य-सामग्री से सम्बद्ध है। वास्तव में अध्ययन सामग्री की समस्या पाठकों की समस्या से ही जुड़ी हुई है। संसार भर की भाषाओं में जितनी तेजी से प्रकाशन व्यवसाय फैल रहा है और जितनी विपुल मात्रा में पुस्तकें प्रकाशित होती जा रही हैं, उन्हें देखते हुए वास्तविक अध्ययन-सामग्री के चयन की समस्या अत्यन्त विकट है। बाजार में उपलब्ध ढेर सारी पुस्तकों के अम्बार में से पुस्तकालयाध्यक्ष को अपने पाठकों की माँग के अनुरूप वास्तविक पठन-सामग्री का चयन करना पड़ता है। यह कोई सरल कार्य नहीं है। यदि कोई पाठक बौद्ध दर्शन पर पुस्तक की माँग करता है, तो पुस्तकालयाध्यक्ष इस विषय पर उपलब्ध सैकड़ों पुस्तकों में से कुछ का ही चुनाव कर पाता है। इसका एक कारण तो यही है कि प्रत्येक विषय पर उपलब्ध सारी पुस्तकें अच्छे स्तर की नहीं होतीं। कई पुस्तकें तो नोटिस मात्र रह जाती हैं। जिन पुस्तकों का प्रकाशन वर्षों पहले हुआ है, उनके नये संस्करण के अभाव में उनकी संप्राप्ति नितान्त दुर्लभ भी हो जाती है। कई पुस्तकें छपते-छपते अप्रासंगिक हो जाती हैं और कई पुस्तकें प्रकाशन की घोषणा के बावजूद छप नहीं पातीं। पाठक के लिए इन सारी समस्याओं से जूझते हुए पुस्तकों का चयन करना एक टेढ़ी खीर है। पुस्तकों की संख्या में हुई अभिवृद्धि प्रकाशन व्यवसाय के षड्यन्त्रों और पुस्तकों के बारे में अप्रामाणिक जानकारी के कारण भी अध्ययन-सामग्री की समस्यायें पुस्तक-चयन को बाधित करती हैं। इस समस्या के निराकरण के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष को ताजी-से-ताजी प्रकाशन-सूचियों से परिचित रहना चाहिए। यह अपेक्षा भी की जाती है कि पुस्तकालयाध्यक्ष पाठकों की माँग के अनुरूप पुरानी पुस्तकों के नये संस्करण प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों को प्रेरित करें। पुस्तकालयाध्यक्ष अध्ययन-सामग्री सम्बन्धी

समस्याओं को दूर करने के लिए विशेषज्ञ-सलाहकारों और अपने विवेक का भरपूर उपयोग भी करता है। भारत जैसे देश में संसार के शेष भागों की नवीनतम पुस्तकें विलम्ब से आती हैं। इस कारण भी पुस्तकालय में अध्ययन-सामग्री विषयक समस्या एक नये रूप में उभरती है। संसार के पुस्तक-व्यवसाय के साथ अभी भी भारत पूरी तरह नहीं जुड़ा है, फिर भी उपलब्ध जानकारियों के आधार पर पुस्तकालय में अन्तर्राष्ट्रीय पठन-सामग्री का संग्रह किया जा सकता है।

आर्थिक सीमायें

पाठक और पठन-सामग्री की समस्याओं से भी अधिक विचारणीय समस्या है आर्थिक समस्यायें। किसी भी पुस्तकालय को सुव्यवस्था प्रदान करने में पर्याप्त धनराशि की आवश्यकता होती है, जबकि भारत के अधिकांश पुस्तकालय आर्थिक संकट से जूझते रहते हैं। स्थिति यह है कि विश्वविद्यालय हो अथवा कोई तकनीकी संगठन, सरकारी उपक्रम हो अथवा निजी संस्थान—जब आर्थिक संकट के बादल मँडराते हैं तो बिजली सबसे पहले पुस्तकालय पर ही गिरती है। सभी पुस्तकालयों की अपनी आर्थिक सीमायें हैं, जिसके अधीन पुस्तकों का चयन पुस्तकालयाध्यक्ष करता है। सच तो यह है कि पुस्तकों के लिए क्रय-राशि अत्यन्त सीमित होती है और पाठकों की माँगें असीमित होती हैं। पुस्तक-चयन की प्रासंगिकता इसी तथ्य पर टिकी हुई है कि इस प्रक्रिया के माध्यम से सीमित धनराशि के अन्तर्गत पाठकों की माँग की अधिकाधिक आपूर्ति की जाय। इसी कारण प्रत्येक पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तक-चयन करते समय इस आर्थिक समस्या से जूझना पड़ता है और अर्थ-संकट की तलवार पर चलते हुए पुस्तक-चयन का रास्ता तय करना उसका धर्म हो जाता है। कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष अपनी बुद्धिमत्ता और मितव्ययिता के सहारे सीमित आर्थिक अनुदान के भीतर पाठकों को अधिकाधिक संतुष्टि देने में समर्थ पुस्तकों का चयन करते हैं।

आर्थिक समस्या के साथ पुस्तकालय में संसाधनों और उपकरणों की समस्या भी जुड़ी हुई है। हमारे देश के असंख्य पुस्तकालयों में अभी तक सूचीकरण और प्रलेखन की वैज्ञानिक तकनीक के अनुरूप साधनों की पहुँच नहीं हो सकी है। कई ग्रामीण पुस्तकालयों में तो पुस्तकों के सामान्य रख-रखाव के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं। ऐसा आर्थिक समस्या के कारण ही होता है। और इसका सीधा असर पुस्तक-चयन पर भी पड़ता है। इन संसाधनों के अभाव में पुस्तकालयाध्यक्ष चाहते हुए भी पाठकीय माँग के अनुरूप पुस्तक-चयन नहीं कर पाते, क्योंकि वे अपनी चुनी हुई पुस्तकों को नष्ट होते नहीं देखना चाहते। इसीलिए पुस्तक-चयन आर्थिक सीमाओं और संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता है।

पुस्तक के स्वरूप से जुड़ी समस्या

पुस्तक-चयन की एक अन्य उल्लेखनीय समस्या पुस्तक के स्वरूप और उसके अध्ययन में होने वाली असुविधाओं के कारण उत्पन्न होती है। पाठक ऐसी पुस्तकें

देखना भी नहीं पसन्द करेंगे जिनका रूपाकार चित्ताकर्षक और नेत्रसुखद न हो। कई पुस्तकें महत्वपूर्ण और उपयोगी होती हुई भी इतने छोटे टाईप में मुद्रित होती हैं कि उन्हें पढ़ने में आँखों को कष्ट होता है। बहुत सारी पुस्तकों का आवरण चित्ताकर्षक नहीं होता है जिससे उन्हें हाथ में लेने की इच्छा नहीं होती। कई पुस्तकों को हाथ में लेते ही उसकी जिल्द बिखर जाती है। पुस्तक-चयन करते समय पुस्तकालयाध्यक्ष को इन सारी विसंगतियों पर ध्यान देना चाहिये, ताकि पुस्तकालय में चुनी गई पुस्तकें न केवल पाठकों की माँग के अनुरूप हों, अपितु चित्ताकर्षक और नयनाभिराम भी हों। इसीलिए पुस्तक-चयन करते समय पुस्तक की बाह्य विशेषताओं पर ध्यान देना भी पुस्तकालयाध्यक्ष का कर्तव्य है। पुस्तक के लिए अच्छी किस्म का कागज प्रयुक्त होना चाहिये तथा पुस्तक की जिल्दसाजी अच्छी होनी चाहिये। पुस्तक की लिपि सुस्पष्ट और सुपाठ्य होनी चाहिये। पुस्तक में चित्र, मानचित्र, सूचीपत्र, ग्रन्थसूची और अन्य सामग्रियाँ आवश्यकतानुसार होनी चाहिये। इन विशेषताओं से सम्पन्न पुस्तकों का चयन ही पुस्तकालय को वास्तविक गरिमा प्रदान कर सकता है। इसीलिए पुस्तक-चयन के प्रसंग में पुस्तकों का पुनरीक्षण एक अत्यावश्यक कार्य समझा गया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, ग्रन्थसूचियों, पुस्तक-समीक्षाओं, पुस्तक मेलों और अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर किये गये समालोचनात्मक पुनरीक्षण के सहारे पुस्तक-चयन पूर्णता प्राप्त करता है।

□ □

अध्याय १०

पुस्तक-चयन के सिद्धान्त

पुस्तक-चयन की सैद्धान्तिक धारणा

जिस तरह बच्चे अनिच्छापूर्वक अध्याय की शुरुआत करते हैं, उसी तरह हर पाठक भी अनिच्छापूर्वक पुस्तकों के संसार में प्रवेश करते हैं। पुस्तकालय में पहुँचकर पुस्तकों के मेले में खो जाना पाठक का अभीष्ट नहीं होता, इसीलिए अगर पुस्तकालयाध्यक्ष सही पाठकों के सामने सही समय पर सही पुस्तकें उपलब्ध कराने में सक्षम होता है, तो पाठकों के मन में फैली अनिच्छा आकर्षण में बदल सकती है। पुस्तकों की उपयोगिता और उनके प्रति आकर्षण जगाने की तीव्र भावना के साथ ही पुस्तक-चयन की तकनीक पल्लवित हुई। पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन उतना आसान नहीं है जितना वह समझा जाता है। वास्तव में पुस्तक-चयन न तो लिपिकीय कार्य है और न शौकिया आचरण। पुस्तक-चयन तो एक विवेकपूर्ण तकनीकी प्रक्रिया है, जिसके बिना हम किसी भी अच्छे पुस्तकालय की परिकल्पना नहीं कर सकते। पुस्तकालय का विशाल सजा-संवरा परिसर, प्रशासन की सुव्यवस्था और भण्डारण की सुरुचि के बावजूद सही पुस्तक-चयन के बिना प्रभावहीन और अनुपयोगी सिद्ध हो सकता है। वास्तव में पुस्तक-चयन का महत्व पुस्तक, पुस्तकालय और पाठक को सही स्वरूप प्रदान करने में है। यह पुस्तकालयाध्यक्ष का महत्वपूर्ण दायित्व होता है कि वह अपने पाठकों की आवश्यकताओं और रुचि के अनुरूप अपने संस्थागत संसाधनों की सीमा में उपयुक्त पुस्तकों का चयन करे। पुस्तक-चयन की प्रक्रिया के दौरान पुस्तकालयाध्यक्ष की स्थिति उस कुशल दुकानदार जैसी होती है, जो अपने इलाके के ग्राहकों की माँग के अनुरूप सामग्रियों से दुकान को अधिक से अधिक सजाकर रखता है, ताकि कभी किसी ग्राहक को कोई असुविधा न हो। इसीलिए पुस्तक-चयन के सिद्धान्तों की मीमांसा करने वाले पुस्तकालय विज्ञानियों ने पुस्तक, पाठक, पुस्तकालय और पुस्तकालयाध्यक्ष पर एक साथ बल दिया है।

पुस्तकों का भण्डारण और खरीद

पुस्तक-चयन में पुस्तकें ही आधार तत्व होती हैं। ज्ञान के हर क्षेत्र में पुस्तकों के मूल्यांकन की क्षमता चयनकर्ता का दायित्व है। किसी भी भाषा में प्रकाशित प्रेरणात्मक, सूचनात्मक और मनोरंजनात्मक सभी कोटियों की पुस्तकों के बीच अपने पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चुनाव ही पुस्तक-चयन का मूलाधार है। इस क्रम में पुस्तकालयाध्यक्ष जिस तरह पुस्तकों को विस्मृत नहीं कर सकता, उसी तरह पाठक भी उसके दृष्टिपथ से ओझल नहीं होता। पाठक से तात्पर्य उस जन-समुदाय से है जो पुस्तकालय में जाता है और जिसकी अभिरुचि एवं माँग के अनुरूप पुस्तक-चयन की तकनीक सक्रिय होती है।

कई चिन्तकों ने अपेक्षा की है कि पुस्तकालयाध्यक्ष अपने संस्थान में आने वाले पाठकों की रुचि और सम्पूर्ण सामुदायिक जीवन की गहरी जानकारी रखेगा। इस धारणा का आधार यही है कि पाठकीय रुचि और उनके बौद्धिक स्तर के आधार पर ही सही पुस्तक-चयन सम्भव हो पाता है। लेकिन यह एक कठिन समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। पुस्तक-चयन के लिए पाठकीय रुचि का अध्ययन किसी भी पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए एक पेशागत अनिवार्य कार्य है। पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तकों और पाठकों के समानान्तर अपने संस्थान के संसाधनों की जानकारी भी रखनी चाहिये, ताकि पुस्तक-चयन की प्रक्रिया को साकार किया जा सके। पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए यह सम्भव नहीं कि आर्थिक साधनों की कमी के बावजूद वह पाठकों की माँग की पूर्ति करे अथवा अच्छी से अच्छी पुस्तकों के भण्डारण की सुविधा होनी चाहिये। उनके समुचित रख-रखाव के उपस्कर होने चाहिये और नयी पुस्तकों की खरीद के लिए पर्याप्त धनराशि होनी चाहिये, जिनके अभाव में पुस्तक-चयन सोद्देश्य नहीं हो सकता। पुस्तक, पाठक, संस्थान के संसाधनों और पुस्तकालयाध्यक्ष की गहरी जागरूकता के समवाय से पुस्तक-चयन की तकनीक साकार होती है। पुस्तक-चयन प्रक्रिया में पुस्तक-चयन के इस सैद्धान्तिक पक्ष को कई स्तरों पर उपयोग में लाया जाता है। विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने पुस्तक-चयन के आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में कई नियमों का संकेतन किया है।

ड्रूरी के सिद्धान्त

ड्रूरी के अनुसार पुस्तक-चयन के क्रम में पुस्तकालयाध्यक्ष को अधोलिखित सिद्धान्तों पर ध्यान देना चाहिये—

(१) सभी पुस्तकों की सावधानीपूर्वक जाँच करें।

(२) जाँच स्तर को विवेक सहित लागू करें और मौलिक मूल्यांकन करें।

(३) किसी भी विषय की सर्वोत्तम पुस्तक को ग्रहण करने का ध्येय रखें। ऐसी किसी मध्यम श्रेणी की पुस्तक का चयन न करें, जो सर्वोत्कृष्ट का विकल्प बनती हो।

(४) अनेक पुस्तकों को रखने की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट उपयोगी पुस्तक की कई प्रतियाँ रखना बेहतर है।

(५) सर्वथा उच्चकोटि के ग्रन्थों को एकत्र किया जाय।

(६) स्थानीय इतिहास-संग्रह पर अधिक ध्यान दिया जाय और इसे समुन्नत बनाने की दिशा में प्रयत्न किया जाय।

(७) धैर्य एवं उदारता के साथ बिना किसी के प्रभाव में आये हुये पुस्तकों का चयन करें।

(८) कथा-साहित्य के प्रति अनुदार न बनें।

(९) अपने पुस्तकालय के लिए आकार और विषय की दृष्टि से उपयोगी पुस्तकों की खरीदें।

(१०) प्रकाशन और उनके प्रकाशन की विशेषताओं को जान लें।

(११) पाठकों की इच्छाओं और उपयोगिताओं का खुला अध्ययन करें।

(१२) पुस्तक-चयन का एक नियमित कार्यक्रम प्रस्तुत करें जो पाठकों की माँग की पूर्ति में सहायक हो सके।

(१३) जागरूक और जिज्ञासु पाठकों के लिए पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराने का पूरा यत्न करें।

(१४) पाठकों के सभी वर्गों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें ताकि व्यापार और मनोरंजन आदि के श्रेणी के पाठकों को रुचि के अनुसार पुस्तक-संग्रह विकसित हो सके।

(१५) किसी वर्ग विशेष या विषय पर कभी पूर्णता के लिए प्रयत्न न करें, जब तक यह निश्चित न हो जाय कि वह वास्तव में उपयोगिता की दृष्टि से आवश्यक है।

(१६) स्थानीय, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय सभी साधनों को सहकारिता के आधार पर उपलब्ध करने की कोशिश की जाय।

(१७) व्यय के लिए उपलब्ध धनराशि को ध्यान में रखते हुये बजट तैयार करें।

हेन्स के सिद्धान्त

ड्रुरी के इन सत्तरह सिद्धान्तों के समानान्तर हेन्स ने भी पुस्तक-चयन के अधोलिखित सिद्धान्तों की प्रस्तावना (सार्वजनिक पुस्तकालय के सन्दर्भ में) की है—

(१) अपने समाज या पाठक वर्ग के स्वभाव और संस्कृति की विशेषताओं का अध्ययन करें।

(२) सामान्यतः स्थानीय और राष्ट्रीय गतिविधियों एवं रुचियों से परिचय करें।

(३) सामूहिक अवस्था को प्रभावित करने वाले विषयों को पुस्तक-चयन में प्रस्तुत करें।

(४) स्थानीय इतिहास-संग्रह को अधिक से अधिक व्यापक और उपयोगी बनाने का यत्न करें।

(५) उन सभी संगठित समुदायों के लिए पाठ्य-सामग्री उपलब्ध करावें, जिनका कार्य पुस्तकों से सम्बद्ध हो।

(६) जितना अधिक सम्भव हो सके, उपयुक्त पाठकों की उपस्थित सम्भाव्य माँगों की पूर्ति के लिए पाठ्य-सामग्री उपलब्ध करावें।

(७) उन पुस्तकों का भी चयन करें जिनकी माँग प्रत्यक्ष रूप से न हो।

(८) पुस्तक-चयन में न पक्षपात करें और न किसी के शौक या अभिमत का ही समर्थन करें।

(९) निकृष्ट पुस्तकों की अपेक्षा उन पुस्तकों को अधिक प्राथमिकता दें जिन्हें लोग पढ़ेंगे।

(१०) वैज्ञानिक, सामाजिक और बौद्धिक तत्त्वों द्वारा आधुनिक जीवन को नया आयाम देने वाली पुस्तकों का चयन करें।

(११) नयी पुस्तकों को उपलब्ध कराने के लिए यथासम्भव तत्परता और नियमानुवर्तिता का पालन करें।

पुस्तक-चयन के मूलभूत सिद्धान्त

पुस्तक-चयन के इन सभी सिद्धान्तों का सीधा सम्बन्ध पुस्तकालय, पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तकालय के कर्मचारियों से है। इसका कारण यही है कि सभी पुस्तकालयों का लक्ष्य विभिन्न प्रकार की पठन-सामग्री का संग्रह, उनकी सुरक्षा और अधिक से अधिक ज्ञानपिपासु पाठकों की जिज्ञासा की पूर्ति सरलता तथा समय का अपव्यय किये बिना करना होता है। इस क्रम में पुस्तक-चयन की प्रक्रिया वह आधारभूत तकनीक है जो प्राथमिक तौर पर पुस्तक और पाठक से पुस्तकालय को जोड़ती है। पाठकों की माँग से ही पुस्तक-चयन का कार्य आरम्भ होता है और उनके सन्तोष से ही पुस्तकालय के लक्ष्य और पुस्तक-चयन के उद्देश्य की सिद्धि होती है। इसीलिए पुस्तक-चयन के उन मूलभूत सिद्धान्तों की गवेषणा करनी होगी जिनके बिना किसी भी पुस्तकालय में पुस्तक-चयन की तकनीक साकार नहीं हो सकती। पुस्तक-चयन की प्रक्रिया, डॉ० एस० आर० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों का निष्ठापूर्वक पालन करती है, जिसके आधार पर पुस्तकें उपयोगार्थ और सर्वार्थ रहकर पाठकीय उपयोगिता और समय के अनुरूप पुस्तकालय को विकास प्रदान करती है। इसीलिए पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तकालय के कर्मचारियों को पुस्तक-चयन के अधोलिखित सिद्धान्तों पर ध्यान देना होगा—

(१) पुस्तक-चयन इस प्रकार किया जाय कि पुस्तकें अधिक से अधिक पाठकों के उपयोग में आ सकें।

(२) उपलब्ध स्रोतों से नयी पुस्तकों की जानकारी प्राप्त की जाय और यथासम्भव तत्परतापूर्वक नियमानुसार पुस्तक-चयन किया जाय।

(३) सबसे पहले पुस्तकों के स्तर का एक मानक निर्धारित हो और तदनुरूप पुस्तक-चयन किया जाय।

(४) किसी भी विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तकों का ही चयन किया जाय, लेकिन आवश्यकतानुसार मध्यम स्तर की पुस्तकें भी चुनी जा सकती हैं।

(५) पुस्तकालय के संसाधनों और पुस्तक के विषय तथा आकार के अनुरूप उपयुक्त पुस्तक-चयन किया जाय ।

(६) उदारता सहित, धैर्यपूर्वक, स्वेच्छा से पक्षपातरहित और बिना किसी दबाव के पुस्तक-चयन किया जाय ।

(७) स्थानीय इतिहास और संस्कृति पर ध्यान अधिक केन्द्रित रखते हुये पुस्तक-चयन किया जाय ।

(८) पाठक और उसके परिवेश की विशेषताओं को ध्यान में रखकर पुस्तक-चयन किया जाय ।

(९) पुस्तकालय के बजट के अनुरूप पाठकों की वर्तमान और भावी माँगों के सन्दर्भ में पुस्तक-चयन किया जाय ।

(१०) पुस्तक-चयन के समय पुस्तक, लेखक और प्रकाशक की विषशेताओं का निष्पक्ष मूल्यांकन किया जाय ।

पुस्तक-चयन के इन दस सिद्धान्तों का पालन करने पर न केवल पुस्तक-चयन की तकनीक अधिकाधिक वैज्ञानिक और सार्थक होगी, अपितु पुस्तकालय भी अपने समाज की अभिरुचियों और आवश्यकताओं के अनुरूप स्थापित हो सकेगा । इन सिद्धान्तों के परिपालन से न तो पुस्तकालय में अनर्गल ग्रन्थों की भीड़ एकत्र होगी और न पाठकों को असंतोष होगा । पुस्तक पुस्तक-चयन की प्रक्रिया इन सिद्धान्तों के सहारे पुस्तकालय को पूरी तरह मूर्त्त कर सकेगी ।

□ □

अध्याय ११

नकारात्मक पुस्तक-चयन

डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने पुस्तकालय के पंचसूत्रों का समापन करते हुए अन्तिम सूत्र में संकेत दिया है कि पुस्तकालय एक संवर्धनशील संस्था है। स्पष्ट है कि संवर्धनशील होने से पुस्तकों का संग्रह संस्था में सदा बढ़ता रहेगा और उन्हें रखने के लिए स्थान की आवश्यकता बराबर बनी रहेगी। पुस्तकालय में स्थान सीमित रहता है। अतः पुस्तकालयाध्यक्ष का ध्यान इस ओर रहना चाहिये कि नई पुस्तकों को रखने के लिए स्थान की कमी न हो और उन्हें अपना उचित स्थान मिलता रहे। इसके लिए स्वभावतः पुस्तकालय की संगृहीत सामग्री में समय-समय पर परिष्कार और संशोधन की गुंजाइश लगातार बनी रहती है। जिस तरह किसी आदर्श पुस्तकालय में नई पुस्तकों और अन्य पाठ्य-सामग्रियों का चयन पुस्तकालय को नवीनता और गतिशीलता प्रदान करता है, उसी तरह पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री का अनुपयुक्तता के आधार पर किया गया बहिष्करण भी पुस्तकालय के लिए हितकारी होता है। पुस्तकों के बहिष्करण की यह प्रक्रिया पुस्तकालय को संवर्धनशील बनाने में सहायक होती है।

पुस्तक चयन के सिद्धान्तों का निरूपण करने वाले पुस्तकालय-विज्ञानियों ने इसी आधार पर स्वीकारात्मक पुस्तक-चयन के समानान्तर नकारात्मक पुस्तक-चयन के महत्व को रेखांकित किया है। पुस्तकालय की उपयोगिता का एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध ऐसे नकारात्मक पुस्तक-चयन से है। पाठक और पुस्तकालय के अन्य उपभोक्ता पुस्तकालय में नवीनतम और उपयोगी पाठ्य-सामग्री का उपयोग करने आते हैं। यदि उनके हाथों में कोई कटी-फटी, दीमक खायी, टूटी जिल्द वाली और निम्न स्तरीय या अश्लील पुस्तक आ जाती है तो इससे, उनकी दृष्टि में, पुस्तकालय की छवि बिगड़ती है। पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों का ही यह दायित्व होता है कि वे अपनी संस्था में पठनीय सामग्री का एकत्रीकरण करें और ऐसी पुस्तकों को संग्रह से निकाल दें, जिनकी उपयोगिता समाप्त हो गई हो। पुस्तकालय अश्लील और सस्ते साहित्य का प्रचारक नहीं होता, उसमें गन्दी, अपठनीय, सड़ी-गली पाठ्य-सामग्रियों के लिए भी कोई स्थान नहीं होना चाहिये। इन्हीं तथ्यों के आधार पर पुस्तकों के बहिष्करण की प्रक्रिया अपनायी जाती है। जब पुस्तकालय में आने वाली अथवा पहले से आई हुई पाठ्य-सामग्री अनुपयोगी हो जाने की दृष्टि से उन्हें हटाने के लिए चुनाव किया जाता है, तब इस विशिष्ट प्रक्रिया को निषेधात्मक अथवा नकारात्मक पुस्तक-चयन कहते हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत पुस्तकालय में ऐसी पुस्तकों का बहिष्कार किया जाता है जो क्षतिग्रस्त होने अथवा विषयवस्तु के कालातीत होने के कारण पाठकों के लिए उपयोगी न रह गई हों। यह प्रक्रिया उन पुस्तकों का भी

प्रवेश निषेध करती है, जिसका प्रकाशन अवैध घोषित किया गया हो अथवा जिसके पठन-पाठन से पाठकीय रुचि के अधोपतन की सम्भावना हो।

निषेधात्मक पुस्तक-चयन की मूलभूत अवधारणा पुस्तकालय के लिए उपयुक्त पाठ्य-सामग्री का चुनाव करते समय अनुपयुक्त सामग्री के अस्वीकार से जुड़ी हुयी है। पुस्तक-चयन की प्रारम्भिक स्थिति में ही ऐसी कई पुस्तकें अस्वीकृत हो जाती हैं, जिनसे पुस्तक के स्वभाव और उसके पाठकों की रुचि का तादात्म्य नहीं होता। पुस्तकालयों का अपना एक विशिष्ट स्वभाव और चरित्र होता है, जैसे—बाल पुस्तकालय, चिकित्सा पुस्तकालय, तकनीकी पुस्तकालय, अन्ध पुस्तकालय आदि। विशिष्ट पुस्तकालयों में उनकी आवश्यकता और पाठकीय माँग के अनुरूप ही पाठ्य-सामग्री एकत्र होती है। बाल पुस्तकालय में बालोपयोगी पाठ्य-सामग्री का ही चयन होना चाहिये; जबकि स्वामी विवेकानन्द के विचारों और महर्षि अरविन्द के दार्शनिक चिन्तन आदि से सम्बन्धित गम्भीर विषयों की पुस्तकों का निषेध बाल पुस्तकालय में हो जाता है। अन्ध पुस्तकालय के लिए केवल ब्रेल लिपि की पुस्तकें ही स्वीकार्य होंगी, जबकि एक से एक नयनाभिराम चित्रों से सजी-सँवरी पुस्तकों का निषेध अन्ध पुस्तकालयों के लिए होगा। चिकित्सा पुस्तकालय में केवल चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकें ही रखी जाती हैं; जबकि साहित्य और इतिहास आदि अन्य विषयों की पुस्तकों का स्पष्ट निषेध इन पुस्तकालयों में होता है। इस तरह पुस्तकालय के चरित्र के अनुरूप न केवल पुस्तकों का चयन किया जाता है, अपितु उनका निषेधात्मक चयन भी अनिवार्य होता है। पुस्तकालयों के लिए सही पुस्तकों का चयन करते समय पुस्तकालय के अधिकारी और चयन-समिति के सदस्य न केवल अपनी संस्था के स्वभाव और संकल्प के अनुरूप पुस्तकों का चुनाव करते हैं, अपितु अपने पाठकों की रुचि बनाये रखने के लिए भी जागरूक रहते हैं।

पुस्तक-चयन का एक पक्ष यह भी है कि पुस्तकालय में अश्लील, नग्नतावादी और उत्तेजक साहित्य स्वीकार न किया जाय। इसी उद्देश्य से ऐसी तमाम पाठ्य-सामग्री का स्पष्ट निषेध किया जाता है जिनसे पाठकीय रुचि दूषित हो और पुस्तकालय की कीर्ति को धब्बा लगे। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी अधोस्तरीय पुस्तकों की माँग करने वाले पाठक भी पुस्तकालय में आते हैं, लेकिन इनकी संख्या अत्यल्प होती है और ऐसे पाठकों का मस्तिष्क परिष्कृत नहीं होता। इसीलिए समाज को दूषित करने वाली एवं ज्ञान के धवल क्षेत्र को दागदार बनाने वाली पुस्तकों का स्पष्ट निषेध पुस्तक-चयन की इस नकारात्मक प्रक्रिया में किया जाता है। निषेधात्मक पुस्तक-चयन की प्रक्रिया द्वारा पुस्तकालय को सार्थक और उपयोगी पुस्तकों द्वारा सम्वर्धित किया जाता है।

पुस्तकालय के संगठन के आरम्भिक दौर में बहुत सारी ऐसी पुस्तकें एकत्र हो जाती हैं, जिनका पाठकों के लिए महत्व नहीं होता और जिन्हें हम पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या बढ़ाने के लोभ में बनाये रखते हैं। कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष ऐसी सामग्री को बहिष्कार कर अपने पुस्तकालय को गति प्रदान करते हैं। ऐसी पुस्तकों को पुस्तकालय में

एकत्र करना, स्थान और सुरक्षा की दृष्टि से भी अवांछनीय है। कला और विज्ञान, धर्म और दर्शन, सामाजिक विज्ञान और सन्दर्भ ग्रन्थों के विशाल साहित्य में से पुस्तकालय के पाठकों के लिए अनुपयुक्त सामग्री का चयन, पाठकीय माँग और उपादेयता के आधार पर आसानी से किया जा सकता है। नकारात्मक पुस्तक-चयन पुस्तकालय के चरित्र और पाठकों की माँग के अनुरूप पुस्तकों के एकत्रीकरण में सहायक होता है।

पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, सन्दर्भ-प्रलेखों आदि का जितना ऐतिहासिक और व्यावहारिक महत्त्व होता है, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है पुस्तकालय में इन सबकी सुरक्षा। कई बार वर्षा और रोशनी, धुआँ और धूल, दीमक और कीड़ों आदि के कारण पुस्तकालय में संगृहीत पठन-सामग्री नष्ट होने लगती है। कभी पानी और सीलन के कारण पुस्तकें सड़ने लगती हैं तो कभी दीमकों या तिलचट्टों जैसे अन्य कीड़ों के कारण पुस्तकें नष्ट हो जाती हैं। इनसे बचाव के उपाय पुस्तकालय के अधिकारी करते रहते हैं, इसके बावजूद प्रत्येक पुस्तकालय में क्षतिग्रस्त पाठ्य-सामग्रियों का अम्बार लग जाता है। कई पुस्तकालयों में पाठकों की नष्टकारी आदतों के कारण भी पुस्तकें खराब होती हैं। ऐसे पाठक पुस्तकों पर लिखकर या तस्वीरें बनाकर पुस्तकों को गन्दा करते हैं अथवा आवश्यकतानुरूप पन्ने फाड़ देते हैं। ऐसी तमाम विसंगतियों के कारण पुस्तकों की सुरक्षा बाधित होती है। पुस्तक-चयन की प्रक्रिया में ऐसी सारी अनुपयोगी कटी-फटी, दीमक और सीलन से नष्ट हुई पाठ्य-सामग्रियों को पुस्तकालय से छाँटकर निकाल दिया जाता है। स्वभावतः ऐसी विनष्ट पुस्तकों का बहिष्कार कर देने से पुस्तकालय में नयी और उपयोगी पुस्तकों के समावेशन को स्थान मिलता है। इस तरह पुस्तकों का बहिष्करण पुस्तकालय में उपलब्ध सड़ी-फटी और नष्टप्राय पुस्तकों के निष्कासन में सहायक बनकर सर्वथा नयी और सार्थक पुस्तकों के संवर्धन में सक्रिय होता है। द्वारका प्रसाद शास्त्री ने इस प्रक्रिया को पुस्तकालय का परिमार्जन और विचयन कहा है। इस प्रविधि के द्वारा न केवल पुस्तकालय में अवांछनीय सामग्री की बाढ़ रुकती है, अपितु पुस्तकालय की ज्ञान-सरिता का अबाध विस्तार भी होता है। जिन पुस्तकालयों में स्थान की सीमा है, वे पुस्तक-बहिष्करण के महत्त्व को अधिक समझ सकते हैं।

□ □

अध्याय १२

पुस्तक चयन की प्रविधि

तकनीक के रूप में पुस्तक-चयन

पुस्तक-चयन पुस्तकालय और पुस्तकालय विज्ञान का पहला सोपान है। यही वह तकनीक है, जिसके माध्यम से अधिक से अधिक पाठकों को अधिकतम सन्तोष प्रदान करने वाली पाठ्य-सामग्री एकत्र की जाती है। स्वभावतः पुस्तक-चयन की प्रविधि पुस्तकालय की वह आरम्भिक गतिविधि है, जिसके आधार पर पुस्तकालय की योजना साकार होती है। इसीलिए पुस्तक-चयन-प्रविधि को कई स्तरों पर परखा जा सकता है— पुस्तकालय, पुस्तकालयाध्यक्ष, पुस्तकालय के कर्मचारी, पाठक, पुस्तकालय के संसाधन और पुस्तकों की उपलब्धता। इन सारे स्तरों पर पुस्तक-चयन-प्रविधि संचालित होती है। इनमें से किसी भी स्तर पर होने वाली चूक, पुस्तक-चयन में स्खलन उपस्थित करती है और पुस्तक-चयन की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।

पुस्तक-चयन समिति का गठन और कार्य

पुस्तकालय ही पुस्तक-चयन-प्रविधि का कार्य-स्थल है। वास्तव में पुस्तक-चयन और पुस्तक-संग्रह से ही पुस्तकालयों का विकास हुआ। इसीलिए पुस्तकालय किसी भी स्तर और श्रेणी का क्यों न हो उसमें पुस्तक-चयन की अनिवार्य योजना होती है। पुस्तकालय का लक्ष्य मनोरंजन, शिक्षा और प्रचार के क्षेत्र में नये-नये मानकों की स्थापना करना होता है, जिसके लिए पुस्तकों की खरीद वैज्ञानिक चयन-प्रविधि के अनन्तर की जाती है। पुस्तक-चयन के लिए पुस्तकालय की प्राथमिक आवश्यकता यह होती है कि उसमें एक पुस्तक-चयन समिति का गठन किया जाय, जो समय देकर निष्ठापूर्वक पुस्तक-चयन कर सके। इस समिति के सदस्यों में पर्याप्त बौद्धिक कुशलता, विषय की विशेषज्ञता, पाठकीय रुचि की जानकारी और निष्पक्षता का होना जरूरी है। इन्हीं गुणों के आधार पर पुस्तक-चयन समिति के सदस्य पुस्तकालय के लिए सही पुस्तकें सही समय पर चुन सकते हैं। पुस्तक-चयन समिति का कर्तव्य पुस्तकालय की मूलभूत चयन प्रविधि का मूलाधार होता है, क्योंकि पुस्तकालय में आयी पुस्तकों के बहाने इस समिति के सदस्य समूचे समाज और परिवेश को दिशा देते हैं। वास्तव में किसी भी पुस्तकालय में गठित की गई पुस्तक-चयन समिति ही पुस्तकालय में एकत्र पुस्तकों के लिए उत्तरदायी होती है।

पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों का योगदान

अमेरिकी कांग्रेस पुस्तकालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार वहाँ पुस्तक-चयन की सफलता एक ओर चयन समिति के कारण मूर्त हुई है तो दूसरी ओर इसका श्रेय पुस्तकालय के अधिकारियों को प्राप्त है। पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन समिति का सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्य होता है। अपने पुस्तकालय के पाठकों के लिए पुस्तकों के चुनाव से लेकर उनके बीच अच्छे ढंग से पाठ्य-सामग्री की प्रस्तुति करने में पुस्तकालयाध्यक्ष की उल्लेखनीय भूमिका होती है। अपनी जागरूकता, सुरुचि और प्रबन्ध-कुशलता के सहारे पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन का वैज्ञानिक विन्यास करता है। सच तो यह है कि किसी भी पुस्तकालयाध्यक्ष के सामने पुस्तक-चयन पहली चुनौती होती है। जितनी तेजी के साथ पुस्तक उत्पादन में वृद्धि हुई है, उतनी ही तीक्ष्णता के साथ पुस्तकालयाध्यक्ष को भी अपने दायित्व का पालन करना चाहिये। अकेला पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक-चयन-प्रविधि में तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक पुस्तकालय के अन्य कर्मचारियों का उचित सहयोग प्राप्त न हो। पुस्तक-चयन की तकनीक एक सामूहिक कार्य-प्रणाली की अपेक्षा रखती है। यही कारण है कि पुस्तक-चयन-प्रविधि को पुस्तकालय के कर्मचारियों से कई स्तरों पर उपकृत होना पड़ता है। पुस्तक-चयन समिति और पुस्तकालय के अधिकारियों-कर्मचारियों को पुस्तक-चयन-प्रविधि की दो भुजाओं के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। जिनमें से दोनों का ही समान महत्त्व इस तकनीक में है।

पाठकों की माँग

पुस्तक-चयन-प्रविधि का समारम्भ वास्तव में पाठकों की माँग से होता है। अगर पुस्तकालय के पाठक जागरूक हैं और उनमें ज्ञान तथा मनोरंजन के नये-नये क्षेत्रों में प्रयाण करने का उत्साह है तो पुस्तक-चयन पुस्तकालय की अनिवार्यता बन जाती है। उन पुस्तकालयों में शायद पुस्तक-चयन की किसी वैज्ञानिक प्रविधि की आवश्यकता ही न पड़ेगी, जिसमें आने वाले पाठक अनुत्साही और सुप्त हों। ज्ञान के नये क्षितिज के विकास और मनोरंजन की नयी भंगिमा की तलाश की दिशा में सचेष्ट पाठकों की माँग के आधार पर ही पुस्तक-चयन की धारणा जन्म लेती है। पाठकों की जागरूकता से ही पुस्तक-चयन समिति के सदस्य और पुस्तकालय के कर्मचारी पुस्तक-चयन में संलग्न होते हैं। पुस्तक-चयन की प्रविधि लगातार पुस्तकालय के संसाधनों को दृष्टिपथ में रखती है। इसीलिए पुस्तक-चयन न तो पुस्तकालय के बजट के प्रतिकूल होता है और न उसमें पुस्तकालय के विविध उपस्करों तथा पुस्तकालय भवन की सीमाओं की उपेक्षा होती है।

पुस्तकों की उपलब्धता

पुस्तक-चयन की प्रविधि में पुस्तकों की उपलब्धि का भी महत्त्व है। पाठकीय माँग और पुस्तक-चयन समिति की सिफारिशों के अनुरूप बहुत बार पुस्तकें उपलब्ध नहीं

हो पातीं। इनके विकल्प स्वरूप जो पुस्तकें मिलती हैं, सम्भव है उनका स्तर बहुत अनुरूप न हो, इसलिए पुस्तक-चयन करते समय पुस्तकों की उपलब्धता पर भी ध्यान देना पड़ता है। इन सारे अवयवों के समन्वित प्रयास से पुस्तक-चयन की जो तकनीक साकार होती है उसकी कार्यविधि पुस्तकालय की आरम्भिक कार्य-प्रविधि है।

पुस्तक-चयन के लिए अनेक कार्यों का संकेतन पुस्तकालय विज्ञानियों ने किया है। चयन का कार्य आरम्भ करने के पूर्व संसाधनों की सुनिश्चितता प्राथमिक शर्त होती है। पुस्तकालय की वित्तीय स्थिति के अनुरूप ही पुस्तकों, सन्दर्भिकाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि की खरीद होनी चाहिये। पुस्तक-चयन पर उन स्रोतों का भी प्रभाव पड़ता है, जिनसे पुस्तकालयाध्यक्ष अथवा पुस्तक-चयन समिति के सदस्य पुस्तकों के बारे में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करते हैं। पुस्तक-चयन के उपकरण हमेशा उपलब्ध होते रहते हैं, जिनके आधार पर चयन को अन्तिम रूप दिया जाता है। इस क्रम में पुस्तक-चयन-प्रविधि के अधोलिखित सोपान निर्दिष्ट होते हैं—

(१) पुस्तक-चयन के स्रोतों का अध्ययन
(२) पुस्तक-चयन पत्रक का निर्माण
(३) चयन-समिति अथवा पुस्तकालयाध्यक्ष की सूझबूझ का उपयोग
(४) पुस्तक की खरीद के लिए आदेश

पुस्तक-चयन-पत्रक

पुस्तक-चयन की पहली सीढ़ी प्रकाशित पुस्तकों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्रोत उपकरणों की गहरी छानबीन है। प्रत्येक भाषा में विभिन्न विषयों के लिए प्रकाशित होने वाली सन्दर्भिकाओं, पुस्तक-समीक्षाओं, ग्रन्थ-सूचियों, प्रकाशकीय विज्ञप्तियों और पाठकों द्वारा दिये गये सुझाओं की व्यापक छानबीन के बाद ही पुस्तकालय के लिए सही पुस्तकों का चयन सम्भव है। इसीलिए पुस्तक-चयन-प्रविधि में सबसे पहले पुस्तकों की जानकारी के विभिन्न स्रोतों का व्यापक अध्ययन आवश्यक समझा गया है। इन सारे स्रोतों से उपलब्ध सूचना के आधार पर पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तकालय के कर्मचारी पुस्तक-चयन-पत्रक का निर्माण करते हैं। इस पत्रक में पुस्तक के बारे में सम्पूर्ण जानकारी दी जाती है, और पत्रकों को विषय क्रम से वर्गीकृत करने के बाद उनकी विस्तृत जाँच कर ली जाती है। यह ध्यान रखा जाता है कि कोई पत्रक दुबारा न तैयार हो गया हो और किसी पत्रक में कोई जानकारी अधूरी न हो। पुस्तक-चयन पत्रक को अधिक से अधिक नया और प्रामाणिक होना चाहिये। पुस्तक-चयन पत्रक निम्नवत् तैयार किया जाता है—और पुस्तक खरीदने अथवा न खरीदने के विषय में समिति का निर्णय, भी इस पर लिख दिया जाता है।

क्रमांक—
लेखक—डॉ० बालेन्दु शेखर तिवारी पुस्तक—बिना यात्रा की यात्रा विषय—व्यंग्य प्रकाशक—पारिजात प्रकाशन, डाक बंगला रोड, पटना प्रकाशन वर्ष—१९८५, प्रथम आकार—डिमाई पृष्ठ-संख्या—७६ मूल्य—२०-०० रुपये
सन्दर्भ-स्रोत—प्रकाशन समाचार, मासिक, दिल्ली, नवम्बर १९८५ समिति का निर्णय

क्रयादेश

पुस्तक-चयन-पत्रक ही पुस्तकालयाध्यक्ष, पुस्तकालय के कर्मचारियों और पुस्तक-चयन समिति के सदस्यों के बीच विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है, जिसके आधार पर पुस्तकालय के लिए क्रय योग्य पुस्तकों का अन्तिम तौर पर चयन सामने आता है। पुस्तक-चयन समिति के सदस्य, पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तकालय के अधिकारी तथा कर्मचारी अपनी सूझबूझ और क्षमता के आधार पर पुस्तक-चयन-प्रविधि को अन्तिम रूप प्रदान करते हैं। पुस्तक-चयन-पत्रक की बारीक छानबीन करते हुए ये सभी लोग मिलकर अन्त में पुस्तकालय के योग्य पुस्तकों की अन्तिम सूची तैयार करते हैं। पुस्तक-चयन-प्रविधि का अन्तिम फलागम पुस्तक के लिए दिये गये आदेश के रूप में सामने आता है। जिस तरह एक पुस्तक-चयन-पत्रक-प्रणाली अपनायी जाती है उसी तरह पुस्तकों के लिए एक क्रयादेश-पत्र तैयार किया जाता है। लेकिन पुस्तक-चयन-पत्रक की तरह आदेश-पत्र हमेशा एक ही पुस्तक या विषय से सम्बन्धित नहीं होता। पुस्तक-चयन के बाद पुस्तकों को खरीद के लिए भेजे जाने वाले आदेश-पत्र का एक नमूना नीचे दिया जा रहा है जिसमें आवश्यकतानुसार पुस्तकों को भेजने के माध्यम, छूट, भुगतान आदि की बातें भी सम्मिलित की जा सकती हैं।

पत्रांक............ दिनांक............

सेवा में,

....

....

विषय : पुस्तकों की खरीद के लिए आदेश

महोदय,

कृपया हमारे संस्थान के लिए अधोलिखित पुस्तकों की आपूर्ति करें।

क्रम संख्या	पुस्तक	लेखक	मूल्य
....	....	....	....
....	....	....	....
....	....	....	....

शीघ्र आपूर्ति की प्रतीक्षा में।

भवदीय

स्रोतों के अध्ययन, पुस्तक-चयन-पत्रक के निर्माण, पुस्तक-चयन-समिति के सदस्यों और अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सूझबूझ से पुस्तक-चयन की यात्रा चयनित पुस्तकों की खरीद के लिए दिये गये आदेश पर जाकर समाप्त होती है। इस पूरी प्रविधि में पुस्तकालय के लक्ष्यों की सिद्धि का संकल्प सबके सामने रहता है। यही कारण है कि पुस्तक-चयन-प्रविधि ने पुस्तकालय की एक अविभाज्य प्राथमिक तकनीक के रूप में अपनी पहचान बनायी है।

□ □

अध्याय १३

पाठकीय माँग और रुचि

पाठकीय माँग का महत्व

जिस तरह पुस्तकें पाठकों के लिए निर्मित होती हैं, उसी तरह पुस्तकालय भी पाठकों को ध्यान में रखकर संगठित होता है। पाठकों की माँग और उनकी रुचि को नजरअन्दाज करके न तो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और न पुस्तकों का पुस्तकालय में संचयन ही होता है। वस्तुतः पुस्तक-चयन में भी पाठकों की माँग और उनकी अभिरुचि की विशिष्ट भूमिका है। ऐसी पुस्तक के चयन को कोई प्रासंगिकता नहीं, जिसकी माँग बृहत्तर पाठक समुदाय न करता हो। इसी तरह ऐसी पुस्तकों के चयन का कोई औचित्य नहीं होता जिसमें अधिकाधिक पाठकीय रुचि को आकर्षित करने की क्षमता न हो। इसी कसौटी पर पुस्तकालय में नयी पुस्तकों का चयन किया जाना वैज्ञानिक समझा गया है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन द्वारा इंगित पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों में घोषणा की गई है कि पुस्तकें सबके उपयोग के लिए होती हैं और पुस्तकालय पाठकों का समय बचाते हुये प्रत्येक पाठक को पुस्तक तथा प्रत्येक पुस्तक को पाठक उपलब्ध कराता है। इस स्थापना की रक्षा के लिए पुस्तक-चयन की ऐसी तकनीक का विकास हुआ है जो एक साथ पाठक, पुस्तक और पुस्तकालय के उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। इसी कारण पुस्तक-चयन की प्रक्रिया अब केवल किसी संस्थान के लिए पुस्तकों को चुन देने की औपचारिकता नहीं रह गई है, अपितु इसका घनिष्ठ सम्बन्ध पाठकों की माँग और पुस्तकीय रुचि के साथ स्थापित हो गया है।

मनुष्य की माँगें अनन्त हैं। एक माँग की पूर्ति होते-होते दूसरी माँग सामने आ जाती है। हमारा जीवन माँगों की असमाप्त श्रृंखला है। लेकिन पुस्तक-चयन के सन्दर्भ में माँग से तात्पर्य पाठकों की उन इच्छाओं और आवश्यकताओं से है जिनकी पूर्ति करना पुस्तकालय का केन्द्रीय लक्ष्य होता है। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी पुस्तक का सारा अस्तित्व पाठकों की माँग पर ही केन्द्रित रहता है। पुस्तक-चयन में पाठकीय माँग के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने का श्रेय एल० आर० मेकालविन को प्राप्त है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि पुस्तक अपने आपमें कुछ नहीं है, यदि माँग के अनुसार उनसे पाठकों की सेवा न होती हो। सफेद कागजों पर छपे हुये काले अक्षरों का कोई मूल्य नहीं होता, यदि उनसे बृहत्तर पाठक समुदाय को सन्तोष न मिलता हो और पुस्तक के रूप में उनकी माँग न होती हो। पुस्तक-चयन करते समय पाठकों की माँग का सूक्ष्म अध्ययन सम्भवतः पुस्तक-चयन का सबसे सही साधन है। पाठकीय माँग के इस सिद्धान्त में मेकालविन ने पुस्तक के आकार, मूल्य और वैविध्य को आधार बनाया है। पाठकों की माँग के अनुरूप पुस्तक के रूपाकार, मूल्य और विषय-वैविध्य में बदलाव आता रहता है। माँग की बहुलता अथवा अल्पता के कारण ही पुस्तकों के प्रकाशन और पुस्तकालयों में

उनके संरक्षण पर भी असर पड़ता है। पुस्तक के महत्व का वास्तविक मूल्यांकन पाठकों की माँग के आधार पर ही किया जा सकता है। कम-से-कम पुस्तक के स्तर और विषय वैविध्य के बारे में पाठकों से बेहतर थर्मामीटर का आविष्कार नहीं हुआ है।

माँग और पूर्ति का सन्तुलन

पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन कभी भी संस्था की वित्तीय सीमाओं को लाँघकर नहीं किया जा सकता, लेकिन पुस्तकालय अपने बहुजन हिताय उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठकों की माँग को सबसे अधिक महत्व देता है। अर्थशास्त्र में माँग और पूर्ति का जो सिद्धान्त अत्यन्त लोकप्रिय और सुस्थापित है, वही सिद्धान्त पुस्तकालय विज्ञान में भी पुस्तक-चयन का मूलाधार है। पाठकों की वांछित पुस्तक को उपलब्ध कराना ही पुस्तकालय का लक्ष्य होता है और इसी लक्ष्य की पूर्ति करने के लिए पुस्तक-चयन की तकनीक विकसित की गई है। लेकिन पाठकीय माँग के आधार पर पुस्तक-चयन करते समय देखा गया है कि पाठकों की माँगें एक जैसी नहीं होतीं, अपितु माँग की विविधता के कारण ही माँगों को कई उप-वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे—आवश्यक माँग, सामान्य माँग। अनावश्यक माँग के मूल्य को भी वर्गीकृत किया जा सकता है। पुस्तक-चयन इस प्रकार किया जाना चाहिये जिससे अधिकतम आवश्यक माँगों की पूर्ति हो और इससे पुस्तकालय की वित्तीय सीमा बाधित न हो। स्वभावतः पाठकीय माँग का सिद्धान्त मेलविल ड्यूवी द्वारा प्रतिपादित न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों की सन्तुष्टि के सिद्धान्त का पूरक है। पुस्तक-चयन में पाठकों की वर्तमान आवश्यक अथवा सामान्य माँगों का महत्व तो है ही, कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष विगत माँग को भी स्मरण रखता है और भावी माँग की पूर्व कल्पना भी अपने मन में करता है। विगत माँग के आधार पर किसी पुस्तक की उपयोगिता और लोकप्रियता की जानकारी होती है एवं इससे पुस्तक-चयन में सुविधा मिलती है। इसी तरह भावी माँग को ध्यान में रखकर पुस्तक-चयन करना भी पुस्तकालयाध्यक्ष की दूरदर्शिता का एक परिणाम होता है। पाठकीय माँगों की एक कोटि यह भी है कि कई पुस्तकें विशेष माँग को ध्यान में रखकर पुस्तकालय के लिए चुनी जाती हैं। जैसे पुस्तकालय में आने वाले नवसाक्षरों, अन्धों और किसी विशेष कार्य में संलग्न लोगों की माँग की पूर्ति करना भी पुस्तकालय का कर्तव्य होता है।

माँग की जानकारी की प्रविधियाँ

पाठकीय माँग की इन सारी कोटियों की जानकारी के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष कई तरीके अपनाते हैं। विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने पाठकों की माँग को जानने की कई प्रविधियों का संकेतन किया है—

(क) फेरी वाला या अपनी चीजों को बेचने वाला मुहल्ले में द्वार-द्वार घूमता है, उसी तरह पुस्तकालयाध्यक्ष भी पाठकों की माँग को प्राप्त करने के लिए पुस्तक-सूचियों तथा पुस्तकों के साथ स्वयं दरवाजे-दरवाजे जाकर पाठकों से सम्पर्क करता है। इस

तरीके को पेडलर विधि अथवा फेरी वाले की पद्धति कहा गया है। निश्चय ही यह वैज्ञानिक और व्यावहारिक विधि नहीं है, क्योंकि किसी भी पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह पाठकों की माँग से परिचित होने के लिए उनके दरवाजे पर दस्तक देता फिरे।

(ख) जिस तरह दुकानदार अपने ग्राहकों की आवश्यकता को देखकर अपनी दुकान में बिक्री योग्य चीजों का संग्रह करता है, उसी तरह पुस्तकालयाध्यक्ष अपने पुस्तकालय क्षेत्र के पाठकों की माँग के आधार पर अपने पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन करता है। इस विधि को दुकानदार-विधि कहा गया गया है। इस विधि में अपेक्षाकृत तार्किकता है, लेकिन यह संकेत नहीं मिलता कि पुस्तकालयाध्यक्ष पाठकों की आवश्यकता की जानकारी कैसे प्राप्त करें ?

पाठकों की माँग को सुनिश्चित करने का कार्य अपने आपमें एक विस्तृत कार्यक्रम है। इसका कारण यही है कि प्रत्येक पुस्तकालय के पाठकों का एक वैविध्यपूर्ण समुदाय रहता है जो अपनी भिन्न-भिन्न रुचियों के अनुरूप पुस्तकों की अपेक्षा पुस्तकालय से करता है। स्वभावतः पाठकीय माँग का अनिवार्य घनिष्ठ सम्बन्ध पाठकीय रुचि और उसकी आवश्यकताओं से है।

संसार भर के पुस्तकालयों में इधर पाठकीय रुचि का व्यापक सर्वेक्षण किया गया है और इसी सर्वेक्षण के आधार पर पुस्तकालयों के लिए पुस्तक-चयन की प्रक्रिया अपनायी गई है। अन्य रुचियों की तरह पठन-सम्बन्धी रुचियाँ भी वैविध्यपूर्ण और अस्थिर होती हैं। हर मनुष्य अपनी नैसर्गिक प्रेरणाओं, अनुभवों, शिक्षा और आयुगत विशेषताओं के आधार पर अपनी रुचि पल्लवित करता है। शहर और गाँव के पुस्तकालयों में अलग-अलग रुचियों वाले पाठक आते हैं। पाठकों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी उनकी रुचि को प्रभावित करती है। पुस्तकालयों के आँकड़ों से प्रगट होता है कि जिस क्षेत्र में पुस्तकालयों की प्रचुरता होती है, वहाँ लोग अधिक मात्रा में पढ़ते हैं। दिल्ली स्थित सार्वजनिक पुस्तकालय की ओर से किये गये सर्वेक्षण में लगभग दस हजार पाठकों से पूछा गया कि पुस्तकालय का सदस्य बनने के पूर्व आप कहाँ से पुस्तकें प्राप्त करते थे तो लगभग १९ प्रतिशत ने यही बताया कि वे इसके पूर्व पढ़ते ही नहीं थे। लोगों की पठन-मात्रा और पठन-प्रकार पर पुस्तकालयों की सुविधा का भरपूर असर पड़ता है। समूचे विश्व में पुस्तकालयों और उनसे जुड़े पाठकों का सर्वेक्षण करने से विदित हुआ कि भारत में बीस व्यक्ति वर्ष में एक पुस्तक पुस्तकालयों से लेकर पढ़ते हैं, जबकि अमेरिका के सार्वजनिक पुस्तकालयों में प्रत्येक व्यक्ति वर्ष में ३.२७ पुस्तकें पढ़ता है और इंग्लैण्ड के पुस्तकालयों में प्रत्येक व्यक्ति वर्ष में ७.७ पुस्तकें पढ़ता है। पठन-रुचि के इस अन्तराल के पीछे पुस्तकालयों की सुविधा का अभाव और आर्थिक विसंगतियाँ हैं। लेकिन यह एक वास्तविकता है कि पुस्तकालय में आने वाले पाठकों की रुचि के अनुरूप ही पुस्तकों का चयन पुस्तकालय को सही विस्तार दे सकता है। पाठकीय रुचि पर पाठक की उम्र, लिंग, शैक्षणिक तथा बौद्धिक स्तर, आर्थिक स्थिति, सामाजिक वातावरण,

सांस्कृतिक परिवेश, व्यवसाय और पुस्तकोपलब्धि की सुविधा आदि अनेक कारणों का प्रभाव पड़ता है। इसीलिए पाठकों की रुचि में बदलाव लक्षित होता है। पुस्तक-चयन करते समय कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष पाठकीय रुचि जैसे निर्धारक अवयवों को नजरअन्दाज नहीं कर देता। पाठकीय रुचि की महत्ता को स्वीकार करके ही पुस्तकालय विज्ञानियों ने पाठकीय माँग के आधार पर पुस्तक-चयन को सिफारिश की है। इसका कारण यही है कि पाठकों की रुचि ही पुस्तकों की माँग की जननी होती है। इसलिए पुस्तक-चयन-प्रक्रिया का प्राथमिक आधार तो यही है कि पाठकों की अध्ययन-रुचि और उनकी आवश्यक माँगों के आधार पर ही पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन हो।

पाठकों के सुझाव-पत्र

पाठकों की रुचि और माँग की जानकारी प्राप्त करने एवं पुस्तकों की उपादेयता के बारे में सुनिश्चित होने के लिए इससे बेहतर कोई विधि नहीं है कि पुस्तकालय में पाठकों के सुझाव आमन्त्रित किये जायें। इस उद्देश्य के लिए पुस्तकालय में एक सुझाव-पेटी रखी जा सकती है, जिसमें पाठक अपनी रुचि की पुस्तकों को खरीदने का सुझाव दे सकते हैं। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए इस प्रकार के सुझाव-पत्र का प्रयोग होना चाहिये—

सुझाव-पत्र

पुस्तक...

विषय...

लेखक...

प्रकाशक...

पाठक का नाम...

शिक्षा...

व्यवसाय...

तिथि.................. हस्ताक्षर

ऐसे सुझाव-पत्र के आधार पर पुस्तकालय में पाठकों की रुचि के अनुसार पुस्तक-चयन करने में सुविधा होगी। ऐसे सुझाव-पत्रों से यह सर्वेक्षण भी किया जा सकता है कि किन बौद्धिक अथवा सामाजिक स्तर के पाठकों के बीच किन विषयों पर, किन लेखकों की कौन-सी पुस्तकें लोकप्रिय हैं। पुस्तक-चयन का मूलाधार यह सुझाव-पत्र ही होना चाहिये, क्योंकि पुस्तकालय का लक्ष्य न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों को सन्तोष प्रदान करना है। पुस्तक-चयन इसी लक्ष्य की सिद्धि का तकनीकी उपक्रम है।

□ □

अध्याय १४

न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों की सन्तुष्टि

मेलविल ड्यूवी का सिद्धान्त

प्रख्यात पुस्तकालय विज्ञानी मेलविल ड्यूवी ने पुस्तकालय के लिए पुस्तक-चयन का यह एक सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि पुस्तकालय में न्यूनतम धनराशि का उपयोग करते हुये उतम पाठ्य-सामग्री से अधिकतम पाठकों की सन्तुष्टि की भावना विकसित होनी चाहिये। पुस्तक-चयन करते समय लगातार यह बात दृष्टि-पथ में आती है कि पुस्तकों की संख्या असीमित होती है, जबकि पुस्तकालय के लिए उपलब्ध धनराशि सोमित होती है। इसीलिए पुस्तक-चयन करते समय पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तक-चयन समिति को ध्यान रखना होगा कि न्यूनतम धनराशि में पाठकों को सन्तुष्टि कैसे प्रदान की जा सकती है? जिस समय ड्यूवी ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उस समय यूरोप में विश्वयुद्ध के कारण व्यापक आर्थिक संकट था और सभी पुस्तकालयों के सामने सोमित बजट में अधिकतम पाठकों को सन्तुष्ट करने की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी थी। ऐसे समय ड्यूवी ने न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों के लिए उत्तम पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के तोन महत्वपूर्ण तत्त्व हैं—

(१) श्रेष्ठ पाठ्य-सामग्री,
(२) पाठकों की अधिकतम संख्या,
(३) न्यूनतम धनराशि।

श्रेष्ठ पाठ्य सामग्री

इन तीनों ही तथ्यों के सन्दर्भ में मेलविल ड्यूवी ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उपलब्ध पाठ्य-सामग्री हमेशा अच्छी अथवा बुरी दो श्रेणियों में विभाजित की जा सकती है। हर भाषा में प्रकाशित पुस्तकों की संख्या हर साल विपुलतर होती जाती है, लेकिन सारी की सारी पुस्तकें पठनीय और उपयोगी नहीं होतीं। लोगों की रुचि और आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकालय के लिए श्रेष्ठ पाठ्य-सामग्री का चयन होना चाहिये, ताकि अधिक से अधिक पाठकों की मानसिक भूख शान्त हो सके। अच्छी पुस्तकों के लिए पुस्तक-चयन करने वालों के सामने अनिवार्यतः श्रेष्ठता के कुछ प्रतिमान निर्धारित होने चाहिये, जिनकी कसौटी पर पुस्तकों के विशाल समूह में से श्रेष्ठ पुस्तकों का चयन हो सके। पुस्तकें एक ओर जिज्ञासु पाठकों की बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं तो

दूसरी ओर पुस्तकों के द्वारा पाठक मनोरंजन और आनन्द का अनुभव भी करते हैं। पुस्तकें चाहे धार्मिक हों अथवा कथात्मक, तकनीकी हों अथवा कोषात्मक—हर कोटि की पुस्तकों का अन्तिम लक्ष्य पाठक को सन्तुष्टि प्रदान करना ही होता है। इसीलिए पुस्तक-चयन करते समय, इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पुस्तक अपने विषय की प्रभावशाली, प्रामाणिक, उपयोगी और विशिष्ट कृति हो। उसे अधिकाधिक पाठक पढ़ें और पसन्द करें, तभी पुस्तकालय की गरिमा सुरक्षित रह सकती है। ऐसी श्रेष्ठ पुस्तक का चुनाव करते समय उसके अन्तरंग गुणों के साथ उसकी बहिरंग सज्जा और प्रस्तुति पर भी ध्यान देना एक अनिवार्यता है। श्रेष्ठ पाठ्य-सामग्री के सम्बन्ध में फ्रांसिस ड्रूरी ने कुछ आवश्यक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। इस सन्दर्भ में परवर्ती पुस्तकालय विज्ञानियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। श्रेष्ठ पाठ्य-सामग्री के मानक अधोलिखित हो सकते हैं—

(१) पुस्तक अपने विषय की प्रामाणिक और यथातथ्य अद्यतन जानकारी देने में समर्थ हो।

(२) पुस्तक मनोरंजन, प्रेरणा अथवा सूचना की दृष्टि से रुचि को आकृष्ट करने में समर्थ हो।

(३) पुस्तक, पुस्तकालय के परिवेश के अनुरूप उपयोगी हो।

(४) पुस्तक की भाषा पाठकीय स्तर के अनुरूप हो और उसका प्रस्तुतिकरण आधुनिक हो।

(५) पुस्तक में अच्छे कागज, मुद्रण और सुरुचिपूर्ण सज्जा का उपयोग किया गया हो।

इन मानकों के आधार पर उत्तम पाठ्य-सामग्री का चयन किया जा सकता है जो पुस्तकालय के महत्त्व को द्विगुणित करता है और पाठकों को सन्तोष प्रदान करता है।

पाठकों की अधिकतम संख्या

पुस्तकालय-सेवा तभी सार्थक समझी जा सकती है जब संस्था में अधिक से अधिक पाठकों के लिए उत्तम पुस्तकों के साथ ही साथ अधिक से अधिक संख्या में उनका आगमन हो। मेलविल ड्यूवी ने प्रतिपादित किया है कि पुस्तकालय की परिकल्पना पाठकों की अधिकतम संख्या और पुस्तकों की अधिकतम संख्या पर आधारित है। यह एक स्वाभाविक सत्य है कि पुस्तकालय में जितनी अधिक मात्रा में पुस्तकें रहेंगी उसमें उतने ही अधिक संख्या में पाठक एकत्र होंगे। इसीलिए पुस्तक-चयन करने में एक सर्वमान्य धारणा यह होनी चाहिये कि अधिकाधिक संख्या में पुस्तकों का संचयन हो। पुस्तकालय विज्ञानियों ने यह भी लक्षित किया है कि केवल पुस्तकों का विशाल संग्रह हो जाने से पुस्तकालय अंतिम आकार नहीं ग्रहण कर लेता। वास्तव में पुस्तकों के समानान्तर पाठकों की भी समान महत्ता है। पुस्तक-चयन, इस धारणा के अनुरूप होना चाहिये कि पुस्तकालय में एकत्र

अधिकाधिक पुस्तकें बहुसंख्यक पाठक वर्ग को आकृष्ट करें और उन्हें सन्तोष प्रदान करें। लेकिन पाठकों की संख्या भी इतनी असीमित न हो जाय कि पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों को उनके लिए अध्ययन की व्यवस्था करने और पुस्तकालय की गरिमा बनाये रखने में असुविधा का सामना करना पड़े। फ्रांसिस ड्रूरी और उनके समकालीन विज्ञानियों ने इंगित किया है कि पुस्तक-चयन, पुस्तकों और पाठकों की अधिकतम संख्या पर केन्द्रित तकनीकी प्रक्रिया है। यह सही है कि पुस्तकालय के लिए अधिकतम पुस्तकें एकत्र की जायँ—चाहे वे दानस्वरूप प्राप्त हों अथवा उनकी खरीद की जाय, लेकिन ऐसी ही पुस्तकों का चयन होना चाहिये जिनसे अधिकाधिक पाठकों को लाभ और सन्तोष मिले। पुस्तकालयों के लिए पाठकों की कोई सीमा तो निर्धारित नहीं की जा सकती, फिर भी पुस्तक-चयन करते समय सामूहिक लाभ को ध्यान में रखना श्रेयष्कर होगा।

न्यूनतम धनराशि

अच्छी पाठ्य-सामग्री को अधिकतम पाठकों के बीच प्रस्तुत करने के लिए पुस्तक-चयन की जिस विशिष्ट तकनीक का अनुपालन पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तक-चयन समिति के सदस्यों को करना पड़ता है, उसमें पाठकीय माँग और पुस्तकीय श्रेष्ठता से भी अधिक पुस्तकालय के लिए उपलब्ध धनराशि की न्यूनता महत्वपूर्ण है। मानव जीवन में मितव्ययिता के सामान्य सिद्धान्त को ही मेलविल ड्यूवी ने न्यूनतम धनराशि में उत्तम पुस्तकें अधिकतम पाठकों की सन्तुष्टि के सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया है। पुस्तक-चयन में हमें ध्यान रखना होगा कि अधिकतम पाठकों के लिए अच्छी से अच्छी पुस्तकें न्यूनतम धनराशि में ही खरीदनी है। इसका कारण यही है कि प्रत्येक पुस्तकालय में पुस्तक-चयन धनराशि से प्रभावित रहता है। पुस्तकों की खरीद के लिए स्वीकृत धनराशि की सीमा, पाठकीय माँग और पुस्तकीय श्रेष्ठता पर आधारित न होकर, सरकार और व्यवस्था पर निर्भर करती है। इसीलिए पुस्तकालयों के सामने हमेशा आर्थिक सीमाएँ उजागर रहती हैं। अपने सीमित संसाधनों के भीतर ही पुस्तकालय को पुस्तकों की खरीद करनी पड़ती है। ड्यूवी ने न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों को सन्तोष देने के सिद्धान्त का प्रतिपादन इसी उद्देश्य से किया ताकि पुस्तक चयन अधिक वैज्ञानिक और प्रासंगिक हो सके, पुस्तकालय अपने लक्ष्य तक आसानी से पहुँच सके। इसके लिए ड्रूरी आदि पुस्तकालय विज्ञानियों ने कुछ महत्वपूर्ण निदेश दिये हैं और बताया है कि पुस्तक-चयन, सीमित धनराशि के आधार पर किया जाना चाहिये और पाठकों के बीच पुस्तकों की उपयोगिता को कभी भी दृष्टिपथ से अलग नहीं करना चाहिये। ऐसी स्थिति में अधिक माँग वाली पुस्तकों और कम माँग वाली पुस्तकों के बीच सारी पाठ्य-सामग्री का विभाजन कर सबसे पहले अधिक माँग वाली पुस्तकों का ही चयन होना चाहिये। इसका कारण यह है कि पुस्तकालय के आर्थिक एवं अन्य संसाधन सीमित तो होते हैं, लेकिन पुस्तकालय के पाठकों की माँग असीमित होती हैं। पुस्तक-चयन का औचित्य इसी विषमता पर आधारित है। पाठकीय माँग के अनुसार न्यूनतम धनराशि में

ऐसी पुस्तकों का चयन होना चाहिये, ताकि अधिकतम पाठकों को सन्तोष प्रदान किया जा सके ।

इस सिद्धान्त के अनुरूप श्रेष्ठ पुस्तकों के चयन के लिए सहकारिता-प्रणाली की प्रस्तावना कुछ पुस्तकालय विज्ञानियों ने की है । इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी शहर या स्थान के सारे पुस्तकालय आपस में मिलकर सहयोगपूर्वक पुस्तक चयन करें । इस प्रणाली में विभिन्न पुस्तकालयों को अपने-अपने विषयों का निर्धारण कर लेना होगा, ताकि एक पुस्तकालय में कुछ सीमित विषयों की अधिकाधिक श्रेष्ठ पुस्तकें न्यूनतम धनराशि में खरीदी जा सकें ।

सिद्धान्त रूप में पुस्तक-चयन की यह सहकारिता प्रणाली वैज्ञानिक दीखती है, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर सम्भवतः ऐसा सम्भव नहीं दीखता । किसी नगर के विभिन्न पुस्तकालय अपनी-अपनी व्यवस्था से इस तरह बँधे होते हैं कि ऐसी सहकारी चयन प्रणाली का पालन करना, उनके लिए सुविधाजनक होगा । पाठक के लिए भी यह एक दुष्कर कार्य होगा कि वह कथा-साहित्य पढ़ने के लिए शहर के एक छोर पर स्थित पुस्तकालय में जाय और मनोविज्ञान विषयक पुस्तकों के लिए दूसरे छोर पर स्थित पुस्तकालय की ओर दौड़े । इन्हीं असुविधाओं के कारण न्यूनतम धनराशि में अधिकतम पाठकों की सन्तुष्टि का सिद्धान्त अधिकाधिक वैज्ञानिक और समीचीन प्रतीत होता है ।

□ □

खण्ड : दो

अध्याय १५

पुस्तकालय प्रशासन और संगठन

पुस्तकालय का स्वरूप

ज्ञान के विस्तार ने जिन बहुत सारी संस्थाओं और मानवीय आवश्यकताओं को पल्लवित किया है, उनके बीच पुस्तकालय का स्थान सर्वोपरि न होते हुए भी महत्त्वपूर्ण अवश्य है। शब्दकोशों की स्थूल-अर्थ स्थापना के अनुसार पुस्तकालय एक ऐसी सार्वजनिक संस्था है, जिनका काम पुस्तकों एवं अन्य पाठ्य-सामग्रियों को एकत्र करना एवं जरूरत-मन्द लोगों के बीच उन सामग्रियों का ज्ञान को अभिवृद्धि हेतु वितरण करना है। किसी आम आदमी के लिए पुस्तकालय का अर्थ इतना ही है, लेकिन पुस्तकालय तो ऐसी वृहत्तर संस्था है, जिसका महत्त्व शिक्षा, अनुसन्धान, विकास और ज्ञान के सभी क्षेत्रों में एक जैसा है। समय के साथ पुस्तकालयों के स्वरूप और कार्य-क्षेत्र में लगातार विस्तार आता जा रहा है, यही कारण है कि पुस्तकालय का महत्त्व पुस्तकों के समानान्तर मौजूदा तकनीकी विकास-गति के बीच विस्तृत हुआ है। आज के पुस्तकालय केवल पुस्तकों के आलय नहीं रह गये हैं; अपितु पुस्तकालय में पत्र-पत्रिकाओं, अभिलेखों, प्रलेखों, माइक्रोफिल्मों, टेपों और कम्प्यूटर चिप्सों के संग्रहण ने पुस्तकालय की गरिमा को नये-नये आयाम दिये हैं। मनुष्य की विकास-यात्रा का सबसे प्रामाणिक और सही दस्तावेज पुस्तकालयों में ही उपलब्ध है। भोजपत्रों के ऊपर हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के अनुरूप नये ज्ञान संसाधनों के संग्रहण तक पुस्तकालय ने जो लम्बी यात्रा तय की है, उससे पुस्तकालय की बदलती हुई आकांक्षाओं और मान्यताओं का संकेत मिलता है। यही कारण है कि आज के पुस्तकालय बहुत सीमित और परम्परागत उद्देश्यों तक सिमटे हुए नहीं हैं, उनके कार्य और उद्देश्य, स्वरूप और संकल्प में लगातार परिवर्तन आया है।

इतिहास साक्षी है कि अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत में पुस्तकों के संग्रह की परम्परा रही है और नालन्दा, तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में तो अत्यन्त समृद्ध पुस्तकालयों के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। चीनी यात्री इत्सिंग ने बताया है कि नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में लगभग ८०० कमरों के अन्तर्गत धर्म और ज्ञान का विशाल भण्डार था। कहा जाता है कि १३वीं शताब्दी के आरम्भ में जब बख्तियारउद्दीन इब्न-बख्तियार ने जब इस विशाल ग्रन्थागार को आग लगायी तो यह पुस्तकालय छह मास तक जलता रहा। पुस्तकालयों की यह परम्परा मध्यकाल में भी लक्षित होती है; क्योंकि बाबर, हुमायूँ, अकबर और शाहजहाँ जैसे मुगल बादशाहों ने पूरी निष्ठा के साथ अपने समय में शाही पुस्तकालयों को समृद्ध किया। पुस्तकालय का आधुनिक स्वरूप भारत में यूरोपीय शक्तियों के आगमन के बाद सामने आया और एक नयी संकल्पना के अनुरूप पुस्तकालय नवीन दायित्व एवं सोद्देश्यता लेकर संगठित हुए। ब्रिटिश भारत में पुस्तकालय मामूली

लोगों के उपयोग से कुछ दूर थे, जबकि स्वाधीनता के अनन्तर पुस्तकालय का बहुमुखी विकास अधिकाधिक लोगों के हित में हुआ। पुस्तकालय के स्वरूप में परिवर्तन की यह प्रक्रिया केवल भारत में ही साकार नहीं हुई है; अपितु इतिहासकारों ने सूचित किया है कि ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ और इटली जैसे बौद्धिक-आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों में भी पुस्तकालयों का ऐसा ही विकासात्मक इतिहास पल्लवित हुआ है। संसार भर में पुस्तकालय उपलब्ध हैं और पुस्तकालयों के माध्यम से मनुष्य की अनेकमुखी अभिव्यक्ति वर्तमान और भविष्य को सँवारने के लिए संगृहीत है। पुस्तकालय का स्वरूप अपने मूलरूप में पहले जैसा नहीं रह गया है; लेकिन इसके कार्य और उद्देश्य की मूलभूत अवधारणा में कोई अन्तर नहीं आया है।

हर युग में पुस्तकालय का अर्थ बदलता रहा है और पुस्तकालय के कार्य-क्षेत्र का विस्तार होता रहा है; लेकिन यह मान्यता लक्ष्मण रेखा की भाँति एक जगह स्थिर है कि पुस्तकालय ज्ञान-सामग्री के भण्डारण का स्थान है। शब्द-कोशों की स्थूल मान्यता के अनुसार पुस्तकालय पुस्तकें रखने के काम आता है, जबकि आज के पुस्तकालय पुस्तकों के के साथ ही साथ ज्ञान के नये उपकरणों के भण्डारण में भी सक्षम हैं। ज्ञान-सामग्री को रखने का कार्य तो अन्यत्र भी हो सकता है; लेकिन पुस्तकालय उक्त सामग्री को संगृहीत करता है। पुस्तकालय के द्वारा किया गया यह संग्रहण मनुष्यों के व्यापक उपयोगार्थ होता है। वैदिक काल में मन्त्रों को केवल सुना और स्मरण किया जा सकता था, जबकि बाद के वर्षों में भोजपत्रों और अन्य लेखन-उपकरणों पर रचित ग्रन्थों को अपने निजी उपयोग के लिए एकत्र किया जाने लगा। पुस्तकालय के प्रादुर्भाव ने ज्ञान को निजी सीमित क्षेत्र से निकाल कर सामान्य जन का कण्ठहार बनाया। मुद्रण के आविष्कार ने पुस्तकालय के इस उपयोगी स्वरूप को व्यापकता प्रदान की है। इसीलिए आज पुस्तकालय एक सामाजिक संस्था के रूप में स्थापित है।

राजा भोज और मुगल सम्राट बाबर के निजी पुस्तकालय में समाज के अन्य लोगों के प्रवेश की मनाही थी, जबकि आज के पुस्तकालय पूरी तरह सामाजिक हितों की रक्षा करते हैं और इनका उपयोग समाज का कोई भी आदमी कर सकता है। सामाजिक संस्था होने के समानान्तर पुस्तकालय, मनुष्य के निजी विकास को प्रोत्साहन देने वाली संस्था भी है। हर आदमी अपनी अभिरुचि और आवश्यकता के अनुसार पुस्तकालय का उपयोग करता है और पुस्तकालय से प्राप्त सुविधा के आधार पर व्यक्तिगत विकास के शिखरों का स्पर्श करता है। बहुत सारे लोगों के लिए पुस्तकालय केवल गम्भीर ज्ञान और बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति का स्थान नहीं है, अपितु बहुत बड़ी संख्या में लोग मनोरंजन-स्थल के रूप में भी पुस्तकालय का उपयोग करते हैं। अनुसन्धान और विकास, अध्ययन और सूचना के नये-नये क्षेत्रों में सहायक होने के समानान्तर पुस्तकालय, उन सब लोगों का मनोरंजन भी करता है, जो यहाँ बौद्धिक मनोविनोद की कामना से आते हैं। वास्तव में पुस्तकालय की परिकल्पना एक ऐसे सिंहद्वार के रूप में की जाती है, जिसमें प्रवेश करने

के बाद ही ज्ञान और विकास, शोध और मनोरंजन के अनगिनत मार्गों के पथ-संकेत दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए पुस्तकालय का स्वरूप बहुआयामी है। स्वभावतः आज के पुस्तकालय का कार्य-क्षेत्र भी अनेकमुखी हुआ है, जितने बड़े पैमाने पर सामाजिक, वैयक्तिक, शैक्षणिक, मनोरंजनात्मक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, औद्योगिक और सृजनात्मक उद्देश्यों से पुस्तकालय जुड़ा हुआ है, उतने ही बड़े पैमाने पर पुस्तकालय का काम भी फैला हुआ है।

पुस्तकालय की कार्य-विधि का सीधा सम्बन्ध पुस्तकालय के स्वरूप से है। पुस्तकालय किन लोगों के लिए, किन उद्देश्यों से संगठित हुआ है, इसके अनुसार ही पुस्तकालय के कार्य का निर्धारण होता है; लेकिन आधारभूत रूप में पुस्तकालय का कार्य पुस्तकों और अन्य ज्ञान-सामग्रियों को संगृहीत करना और इस संग्रह को अधिकाधिक पाठकों के उपयोग के लिए उपलब्ध कराना है। इस क्रम में पुस्तकालय अपने साधनों और पाठकीय माँग के अनुरूप पुस्तकों एवं इतर ज्ञान-सामग्रियों का चयन, अधिग्रहण, वर्गीकरण, सूचीकरण और प्रस्तुतिकरण करता है। पुस्तकालय से अब यह अपेक्षा भी की जाने लगी है कि उसके माध्यम से पाठकों को अधिकतम सन्तोष मिले, सूचनाएँ प्राप्त हों और ज्ञान-पिपासा की शान्ति हो। इसी संकल्प की सिद्धि के लिए पुस्तकालय के स्वरूप में लगातार परिवर्तन होते रहे हैं। समय के साथ पुस्तकालय की परिकल्पना, संकल्प और कार्य-प्रणाली में जो परिवर्तन उपस्थित हुआ है, उससे पुस्तकालय का स्वरूप अधिकाधिक वैज्ञानिक और उपयोगी हुआ है।

पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्र और पुस्तकालय

पुस्तकालय की परिकल्पना और उसकी कार्य-प्रणाली के सन्दर्भ में डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने पाँच मूलभूत सिद्धान्तों की प्रस्तावना की है। इन पंचसूत्रों में सूचित किया गया है कि पुस्तकें उपयोग में आने वाली चीजें हैं, वे सबके लिए हैं; प्रत्येक पाठक को उसकी वांछित पुस्तक मिलनी चाहिये; प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिलना चाहिये; पाठक का समय बचना चाहिये और पुस्तकालय अपने आपमें एक विकासशील संस्था है—

ग्रंथालयी सदासेवी पंचसूत्री परायणः।
ग्रंथानध्येतुमेते च सर्वेभ्यः स्वयमाप्नुयः॥
अध्येतुस्समयं शेवेदालयो नित्यमेव च।
वर्धिष्णुरेष चिन्मूर्तिः पंचसूत्री सदा जयेत्॥

डॉ० रंगनाथन के इन पंचसूत्रों की परिधि में पुस्तकालय की सम्पूर्ण संरचना, और उपादेयता के तत्त्व इंगित होते हैं। इन्हीं पंचसूत्रों की कसौटी पर पुस्तकालय और पुस्तकालय की सारी प्राथमिक और मूलभूत आयोजना टिकी हुई है।

पंचसूत्रों की शृंखला का पहला सूत्र वास्तव में पुस्तकालय के बदलते हुए स्वरूप की ओर इंगित करता है। पुस्तकालय कोई गोदाम अथवा बिक्री केन्द्र नहीं है, बल्कि

उसका केन्द्रीय लक्ष्य अधिक से अधिक उपयोग में पाठकों को पुस्तकें प्रस्तुत करना है। अत्यन्त प्राचीन काल में जब मुद्रण का आविष्कार नहीं हुआ था, तब पुस्तकालय-की यह उपयोगार्थ शक्ति नाममात्र की थी। पुरातन पुस्तकालयों में पुस्तकें जंजीरों से बाँध कर रखी जाती थीं और उन्हें जंजीरों की लम्बाई से दूर ले जाना असम्भव था। १५वीं शताब्दी के मध्य तक पुस्तकें आलमारियों में रखी जाने लगीं। यूरोपीय पुस्तकालयों में पहले पुस्तक उधार दी जाती थीं और तब कर्ज के रूप में दी जाने लगीं। अधिक से अधिक पाठकों के उपयोग में पुस्तकें आ सकें, इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तकालय का एक सुनिश्चित भौतिक स्वरूप हो। उचित स्थान पर एक अच्छे भवन में उपलब्ध उपस्करों और सहयोगी कर्मचारियों के द्वारा, जो पुस्तकालय निर्मित होता है, उसकी भौतिक परि-कल्पना ही पुस्तकों को उपयोगार्थ बनाने में सहायक होती है। पुस्तकालय विज्ञान के इस प्रथम सूत्र की सफलता के लिए अपेक्षित है कि पुस्तकालय में पाठकों का मुक्त प्रवेश हो, ताकि पुस्तक-चयन की सतर्क प्रक्रिया से एकत्र हुई पुस्तकों का अधिक से अधिक उपयोग हो सके।

डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रस्तावित दूसरे सिद्धान्त में कहा गया है कि ज्ञान सीमित अधिकार की वस्तु नहीं, अपितु इसका उपयोग सबके लिए समान रूप से होना चाहिये। प्रत्येक पाठक को उसकी अभीष्ट पुस्तकें मिलें, इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तकालय में व्यवस्था और समन्वय की कुछ स्थापनाओं का पालन किया जाय। पुस्तकालय एक सुनिश्चित व्यवस्था के अधीन संचालित हो और निर्धारित वित्त के अधीन प्रत्येक पाठक को उसकी वांछित पुस्तकें उपलब्ध कराने की सुविधा विकसित हो, तभी पुस्तकालय विज्ञान का यह दूसरा सूत्र मूर्त्त हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि पुस्तकों को सर्वार्थ सिद्ध करने में पुस्तकालय के कर्मचारियों और पाठकों का समान योगदान मिले।

तीसरे सूत्र में यह स्थापित किया गया है कि प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिलना चाहिये। यह सिद्धान्त पुस्तकालय की आन्तरिक व्यवस्था पर आधारित है और बतलाता है कि पुस्तकों और सामग्रियों के रूप में बिखरे हुये ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने में पुस्तकालय को पाठक और व्यवस्था—दोनों का सहयोग मिलना चाहिये। बेजुबान पुस्तकें भी सही पाठकों तक पहुँच सकें, इसके लिए आवश्यक है कि पाठकों को पुस्तकालय में निःशुल्क प्रवेश की सुविधा मिले और उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकें प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो। इसके लिए आवश्यकता यह है कि पुस्तकालय में पुस्तक-चयन, अधिग्रहण, सूचीकरण, वर्गीकरण आदि दिशाओं में पर्याप्त नवीनता हो और पाठकीय सुविधा को ध्यान में रखकर सन्दर्भ सेवा, सूचना-सेवा, ग्रन्थ-सूची, जन-सम्पर्क आदि का सहारा लिया जाय। ऐसा करने पर ही पुस्तकालय की पुस्तकें अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँच सकती है।

अपने चौथे सूत्र में डॉ० रंगनाथन ने यह बतलाया है कि प्रत्येक पाठक का समय बचे ताकि पुस्तकालय की ओर आकृष्ट होकर पाठक उसका लाभ उठावे और

कर्मचारी पाठकों की सेवा पर अधिक समय दे सके। वास्तविकता तो यह है कि पाठक को उसकी वांछित पाठ्य-सामग्री जितनी जल्दी सम्भव हो, उपलब्ध कराने में ही पुस्तकालय की अन्यतम क्षमता साकार होती है। इसका कारण यही है कि समूचे संसार में फैली पाठ्य-सामग्री के विशाल भण्डार में से विशिष्ट पाठक की वांछित सामग्री की प्रस्तुति बहुत सहज नहीं है। पाठकों और कर्मचारियों दोनों का समय बचाने के लिए आवश्यक है कि पुस्तकालय में पाठकों के मुक्त प्रवेश की सुविधा हो, पुस्तकों एवं अन्य पाठ्य-सामग्रियों के संग्रहण की सुविधा व्यवस्थित हो, सुनियोजित आगम-निर्गम-पद्धति हो और पुस्तकालय में उपलब्ध पाठ्य-सामग्री की एक व्यवस्थित वैज्ञानिक सूची हो। इन सब के सहारे पाठकों के समय की बचत की जा सकती है और प्रत्येक पाठक की पुस्तकीय माँग को पूरा किया जा सकता है।

डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रस्तावित पुस्तकालय विज्ञान के अन्तिम सूत्र में कहा गया है कि पुस्तकालय एक विकासशील संस्था है। इसीलिए पुस्तकालय भवन, कर्मचारियों की संख्या, पुस्तकों की संख्या, वर्गीकरण और सूचीकरण की प्रविधि, पुस्तक प्राप्त के स्रोत और अन्य विकासात्मक क्षेत्रों में निरन्तर परिवर्द्धन की गुंजाइश बनी रहती है। समय के साथ पुस्तकालय के आकार में जो वृद्धि होती है, उसका सम्बन्ध पुस्तक, पाठक और कर्मचारी तीनों से है। पुस्तकालय विज्ञान के पंचम सूत्र के द्वारा ही स्थापित किया गया है कि विकासशील संस्था होने के नाते पुस्तकालय के स्वरूप और निष्पादन में लगातार परिष्कार होता रहता है, पुस्तकों की संख्या और पाठकों के समूह में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

आदर्श पुस्तकालय से अपेक्षा की जाती है कि वह पुस्तकालय विज्ञान के इन पंचसूत्रों का पूरी सावधानी से पालन करे, तभी पुस्तक, पुस्तकालय और पाठक तीनों को सन्तोष मिल सकता है। पुस्तकालयों के व्यवस्थापन और संचालन को केन्द्र में रखकर समय-समय पर कई अधिनियमों की परिकल्पना भी की गई है। १९३० में डॉ० रंगनाथन ने पुस्तकालय अधिनियम का पहला प्रारूप तैयार किया था, जो कालान्तर में भारत में पुस्तकालय सम्बन्धी नियमावली का आधार बना। कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम विचारार्थ प्रस्तुत हुये, लेकिन पराधीन भारत में न तो पुस्तकालयों के लिए कोई व्यवस्थित नियमावली बन सकी और न पुस्तकालय-विधि का कोई प्रामाणिक रूप सामने आया। १९४८ में स्वाधीन भारत की सरकार ने राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालयों की स्थापना की और इसी वर्ष मई में यूनियन पुस्तकालय अधिनियम प्रस्तुत किया गया। १९५५ में हैदराबाद सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम सामने आया, जिसका नया रूप १९६० में आन्ध्र प्रदेश पुस्तकालय अधिनियम बनकर उपस्थित हुआ। १९६५ में डॉ० रंगनाथन ने मैसूर सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम की प्रस्तावना की जिसे राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति भी मिली। १९६६ में योजना आयोग की एक उप-समिति द्वारा माडल सार्वजनिक पुस्तकालय का प्रारूप तैयार किया गया जिसे व्यापक लोकप्रियता

मिली । नवम्बर १९६७ में महाराष्ट्र विधान सभा ने महाराष्ट्र सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम को स्वीकृत किया । इन सारे अधिनियमों के कारण पुस्तकालय और सरकार के सम्बन्ध घनिष्ठ होते गये एवं पुस्तकालयों में अधिकाधिक सुविधाओं का आगमन हुआ, लेकिन पुस्तकालय विज्ञान स्वीकार करता है कि पुस्तक और पाठक को अधिकाधिक उपयोग और सन्तोष प्रदान करने में डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पंचसूत्र बेहतर भूमिका निभाते हैं । इन पंचसूत्रों से एक ओर पुस्तकालय की समूची उपादेयता मूर्त्त होती है तो दूसरी ओर पुस्तकालय विज्ञान का संकल्प भी साकार होता है ।

पुस्तकालय के प्रभेद

पुस्तकालय शब्द से पुस्तकों एवं अन्य पाठ्य-सामग्रियों से सम्पन्न एक ऐसे भवन की तस्वीर आँखों के सामने साकार हो जाती है, जहाँ पहुँचकर पाठक कम समय में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करते हैं । लेकिन सभी पुस्तकालय एक जैसे नहीं होते । उद्देश्य और कार्य-संगठन और संकल्प की दृष्टि से पुस्तकालय को कई प्रभेदों में विभक्त किया जा सकता है । पुस्तकालय के अनेकानेक भेदोपभेदों को तीन केन्द्रीय प्रभेदों में समेटा गया है—सार्वजनिक पुस्तकालय, शैक्षणिक पुस्तकालय और विशिष्ट पुस्तकालय । इन तीन रूपों में विभाजित पुस्तकालय श्रेणियाँ वस्तुतः अनेकानेक भेदोपभेदों में फैली हुई हैं, जिनके लक्ष्य और कर्म में कई मूलभूत अन्तर हैं ।

सार्वजनिक पुस्तकालय की परिसीमा में वे सारे पुस्तकालय परिगणित होते हैं, जो जनता के लिए, जनता द्वारा, जनता से चलाये जाते हैं । ऐसे पुस्तकालयों का सारा व्यवस्थापन सार्वजनिक कोश से होता है और इनका उपयोग समाज के किसी भी वर्ग का कोई भी आदमी कर सकता है । ऐसे सार्वजनिक पुस्तकालयों के माध्यम से आम और विशिष्ट सभी लोगों को अध्ययन और अनुसंधान के अपेक्षित अवसर प्राप्त होते हैं । वास्तव में सार्वजनिक पुस्तकालय एक जन-संस्था है, जिसका उद्देश्य जनतान्त्रिक व्यवस्था के बीच अधिक से अधिक लोगों को शिक्षा और विकास की दिशा में प्रोत्साहित करना है ।

प्राचीन राजाओं के जमाने में भी सार्वजनिक पुस्तकालय होते थे, लेकिन ऐसे पुस्तकालयों का उद्भव गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में अधिक तेजी से हुआ है । सार्वजनिक कोश से जनतन्त्रात्मक सरकार द्वारा संचालित होने वाले सार्वजनिक पुस्तकालय की उप-श्रेणियाँ प्रशासनिक क्रम के अनुरूप निर्धारित होती हैं । राष्ट्रीय पुस्तकालय इस शृंखला का वृहत्तर ग्रन्थागार है और किसी भी देश की राष्ट्रीय ज्ञान सम्पदा का भण्डारण राष्ट्रीय पुस्तकालय का लक्ष्य होता है । लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम, न्यूयार्क के लाइब्रेरी आफ कांग्रेस, मास्को के राष्ट्रीय पुस्तकालय और पेरिस के बिब्लियोथेक नेशनल की परम्परा में भारत के राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना १९४८ में कलकत्ते में हुई । राष्ट्रीय पुस्तकालय की क्षेत्रीय शाखायें दिल्ली, बम्बई और मद्रास में भी हैं । इस राष्ट्रीय पुस्तकालय की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार करती है, जबकि विभिन्न राज्यों में विद्यमान अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों का संचालन राज्य सरकार के जिम्मे है । राज्य

केन्द्रीय पुस्तकालय इसकी सबसे बड़ी कड़ी है, जिसके बाद क्रमशः जिला पुस्तकालय, अनुमण्डलीय पुस्तकालय, नगर पुस्तकालय, प्रखण्ड पुस्तकालय, पंचायत पुस्तकालय और ग्राम पुस्तकालय का संगठन होता है। ऐसे राज्य संपोषित सार्वजनिक पुस्तकालयों के समानान्तर विभिन्न स्थानों पर कई निजी संस्थायें भी सार्वजनिक पुस्तकालयों का संचालन करती हैं। जैसे—पाण्डिचेरी के अरविन्द आश्रम, बेलूर के रामकृष्ण मिशन, देवघर के सत्संग मठ और ऋृषिकेश के दिव्यजीव संघ जैसी अनेकानेक सांस्कृतिक, सामाजिक संस्थाओं ने निजी तौर पर सार्वजनिक पुस्तकालयों का जाल फैला रखा है।

पुस्तकालयों की दूसरी कोटि उन शैक्षणिक पुस्तकालयों की है, जिनका लक्ष्य और स्वरूप सार्वजनिक पुस्तकालयों से भिन्न होता है। ऐसे पुस्तकालयों में मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा, जानकारी की अपेक्षा अनुसंधान और लोक-संतोष की अपेक्षा विज्ञ-संतोष को अधिक महत्त्व दिया जाता है। वास्तव में शैक्षणिक पुस्तकालयों का उद्देश्य विविध शैक्षणिक कार्यक्रमों को अकादमी विकास की ओर अग्रसित करना होता है। इसीलिए शैक्षणिक पुस्तकालय का सम्बन्ध औपचारिक शिक्षा से जुड़े अध्यापकों और छात्रों, विद्वानों और अनुसंधाताओं के साथ होता है। जिस तरह शिक्षा व्यवस्था में क्रमिक ऊँचाइयाँ लक्षित होती हैं, उसी तरह शैक्षणिक पुस्तकालयों के स्तर में भी क्रमिक अन्तर लक्षित होता है। विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और विद्यालय स्तर पर पुस्तकालय की मूलभूत अकादमिक संकल्पना एक जैसी होती है और इन सभी स्तरों पर पुस्तकालय का व्यवस्थापन सम्बद्ध शैक्षणिक संस्था के जिम्मे होता है, लेकिन यह एक सच्चाई है कि शिक्षा के स्तर के साथ पुस्तकालय का स्तर ऊँचा होता जाता है। इसलिए शैक्षणिक पुस्तकालयों को संस्था के स्थूल प्रभेदों के अनुरूप विश्वविद्यालय पुस्तकालय, महाविद्यालय पुस्तकालय और विद्यालय पुस्तकालय तीन उपभेदों में विभक्त किया गया है। इन तीनों ही कोटियों के शैक्षणिक पुस्तकालयों की संगृहीत सामग्री, व्यवस्था, कार्य-पद्धति और उपयोग-प्रक्रिया में संस्थागत अन्तर है, लेकिन इन सबका लक्ष्य अन्ततः शैक्षणिक विकास को प्रोत्साहित करना ही है।

विशिष्ट पुस्तकालय की संकल्पना सार्वजनिक और शैक्षणिक पुस्तकालयों से भिन्न होती है। ऐसे पुस्तकालय अलग-अलग क्षेत्रों में सर्वथा विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर संगठित होते हैं। यदि कहीं केवल संगीत कला से सम्बन्धित ग्रन्थों और अन्य उपयोगी सामग्रियों का विशाल संकलन हो तो यह न तो सार्वजनिक पुस्तकालय कहा जायेगा और न इसे शैक्षणिक पुस्तकालय की सीमा में समेटा जा सकता है। ऐसे पुस्तकालय को विशिष्ट पुस्तकालय कहने के सिवा कोई दूसरा विकल्प नहीं। इसी तरह ज्ञान और अनुभव के किसी भी क्षेत्र की विशिष्ट सामग्री का विशेष उद्देश्य से एकत्रीकरण करने वाले संस्थानों को विशिष्ट पुस्तकालय कहा जा सकता है। स्वभावतः विशिष्ट पुस्तकालय का अन्य कोटि के पुस्तकालयों से बड़ा अन्तर होता है। सामान्य पुस्तकालयों में अधिकतर पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का भण्डार होता है, जबकि विशिष्ट पुस्तकालयों में ज्ञान-

संरक्षण के अधुनातन साधनों के संग्रह की प्रवृत्ति भी विद्यमान है। सामान्य पुस्तकालय में आम लोगों की सेवा के लिए एक साथ कई क्षेत्रों की सामग्री का एकत्रीकरण होता है, जबकि विशिष्ट पुस्तकालय अपने विशिष्ट पाठकों की सेवा किसी विशेष क्षेत्र में ही करता है। सामान्य पुस्तकालय का स्वरूप आत्म-निर्भर संस्था जैसा है, जबकि विशिष्ट पुस्तकालय हमेशा दूसरों की सहायता की अपेक्षा करता है। स्वभावत: विशिष्ट पुस्तकालय का उद्देश्य और कार्य-व्यापार अन्य पुस्तकालयों से भिन्न है, क्योंकि मौलिकता ही इसे सामान्य से विशिष्ट बनाती है। विशिष्ट पुस्तकालयों की श्रृंखला में कई कोटियों के पुस्तकालयों का उल्लेख किया जाता है। शोध-पुस्तकालय, विभागीय पुस्तकालय, व्यावसायिक पुस्तकालय, औद्योगिक पुस्तकालय, तकनीकी पुस्तकालय, चिकित्सकीय पुस्तकालय, नेत्रहीनार्थ पुस्तकालय, कारागार पुस्तकालय, श्रव्य-दृश्य पुस्तकालय, चल पुस्तकालय, समाचार-पत्र वाचनालय, बाल पुस्तकालय, सेना पुस्तकालय जैसे उपभेदों में विशिष्ट पुस्तकालय की विशिष्टतायें विद्यमान हैं। ऐसे पुस्तकालय सूचित करते हैं कि अलग-अलग दिशाओं में विशिष्ट किस्म के पुस्तकालयों की संकलपनायें समयानुसार साकार होती रही हैं।

पुस्तकालय के अनेकमुखी प्रभेदों की आयोजना अधिकतर पुस्तकालय विज्ञान की आधारभूत स्थापनाओं और पुस्तकालय की प्रयोगवत्ता पर केन्द्रित है। आने वाले दिनों में जैसे-जैसे ज्ञान-सामग्री का विस्तार होगा और मनुष्य की ज्ञान पिपासा तीव्रतर होगी, पुस्तकालय के प्रभेदों का अधिकाधिक विस्तार होगा। सम्भव है इक्कीसवीं शताब्दी में ऐसे नये तकनीकी पुस्तकालय विकसित होने लगें जिनमें नव्येतर वैज्ञानिक ज्ञान-सामग्रियों के अधिग्रहण की नयी प्रणालियों को स्वीकार किया जायेगा। आगामी कल के पुस्तकालयों में शायद पुस्तकें नहीं नजर आयेगीं। टेपों, माइक्रोफिल्मों, कम्प्यूटर चिप्सों जैसे नूतन उपकरणों का भण्डारन ही भविष्य के पुस्तकालयों के लिए काफी होगा। इस नयेपन के बावजूद पुस्तकालय की इस मूलभूत अवधारणा में कोई परिवर्तन नहीं आने वाला है कि बदलते हुये स्वरूप और फैलती हुई प्रशाखाओं के बीच पुस्तकालय मनुष्य की बौद्धिक भूख मिटाने का सबसे सुगम और वास्तविक संस्थान है।

पुस्तकालय के विविध प्रभाग और उनकी कार्यविधि

ज्ञान के बहुमुखी विकास को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक संस्था होने के नाते पुस्तकालय की तुलना एक ऐसे कोषागार के साथ की जा सकती है, जिसकी सम्पदा सबके लिए और सबकी सुविधानुसार उपलब्ध रहती है। वास्तव में पुस्तकालय का काम इतना जटिल और वैविध्यपूर्ण, सोद्देश्य और महत्त्वपूर्ण है कि पुस्तकालय की समूची कार्यविधि अपने आप में कई चरणों में विभक्त हो जाती है। यही कारण है कि पुस्तकालय चला पाना किसी अकेले आदमी के वश की बात नहीं और यदि किसी बहुत छोटे पुस्तकालय में भी कोई आदमी अकेले सब कुछ कर लेता है तो सुनिश्चित तौर पर एक साथ कई भूमिकायें निभानी पड़ती हैं। पुस्तकालय के लिए पुस्तकों के चयन से लेकर

पाठकों तक पुस्तकों के पहुँचने तक की समूची प्रक्रिया पुस्तकालय के कई प्रभागों से गुजरती है। पुस्तकालय के प्रभागों का संगठन पुस्तकालय के कार्यविधि के अनुरूप ही होता है। ऊपरी तौर पर केवल पुस्तकों का आदान-प्रदान ही पुस्तकालय का कार्य है, जबकि पुस्तकालय विज्ञान स्थापित करता है कि पुस्तकालय के अलग-अलग प्रभागों में एक साथ कई कार्य सम्पादित होते हैं। न तो इन प्रभागों के बिना पुस्तकालय की कार्य-विधि की परिकल्पना की जा सकती है और न पुस्तकालय की कार्य-प्रणाली के बिना पुस्तकालय के विविध प्रभागों को सम्पूर्णता मिलती है।

पुस्तकालय-संगठन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा प्रशासनिक व्यवस्था का है, क्योंकि प्रशासन की सुचारुता के बिना न तो पुस्तकालय का नियन्त्रण सम्भव है और न कार्य का विभाजन ही किया जा सकता है। पुस्तकालय का प्रशासन उत्तरदायी होता है कि पुस्तकालय कितनी पारस्परिक व्यवस्था के बीच कार्यरत है और उसके आय-व्यय की कितनी सुनिश्चित आयोजना है। नियन्त्रण, प्रबन्धन, कार्य-विभाजन, समन्वयन और वित्तीय साधनों की देख-रेख का सारा उत्तरदायित्व पुस्तकालय के प्रशासन पर होता है, लेकिन आम पाठक एवं अध्येता का सीधा सम्बन्ध पुस्तकालय की प्रशासनिक व्यवस्था से नहीं होता, इसीलिए पुस्तकालय-संगठन और उसकी कार्यविधि में प्रशासनेतर विभागों का महत्त्व अपने किस्म का होता है। पुस्तकालय के जिन प्रभागों का सीधा रिश्ता पुस्तकों और ज्ञान की अन्य सामग्रियों से चयन, अधिग्रहण, सूचीकरण, प्रस्तुतीकरण और संरक्षण से है, उन्हीं विभागों के बीच पुस्तकालय की मूलभूत कार्य-प्रणाली वितरित है। इस दृष्टि से पुस्तकालय के छह प्रमुख प्रभागों की आयोजना मूर्त होती है—पुस्तक-चयन प्रभाग, अधिग्रहण प्रभाग, सूचीकरण प्रभाग, वर्गीकरण प्रभाग, आदान-प्रदान प्रभाग और संरक्षण प्रभाग। इन मुख्य प्रभागों के अतिरिक्त अब पुस्तकालयों में सूचना-सेवा, सन्दर्भ-सेवा, प्रलेखन-सेवा जैसे कतिपय नये प्रभाग भी उभरे हैं। इन सारे प्रभागों के समन्वित कार्य व्यायार से ही पुस्तकालय की कार्यविधि साकार होती है।

पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और ज्ञान की इतर सामग्रियों का पाठकीय रुचि के अनुरूप-संग्रह और प्रस्तुतीकरण ही पुस्तकालय का केन्द्रीय कार्य है। इस कार्य में पुस्तकालय की प्रशासनेतर कार्यविधि का पहला सोपान है—पुस्तक-चयन। कम-से-कम धनराशि में अधिक से अधिक लोगों के उपयोगार्थ सही पुस्तकों के चुनाव की समस्या से जूझना ही पुस्तकालय के पुस्तक-चयन प्रभाग का कार्य है। इस प्रभाग के लोग सही पाठक को सही समय पर सही पुस्तकें उपलब्ध कराने के संकल्प के साथ ज्ञान के विशाल भण्डार में से अपने पुस्तकालय के अनुरूप पुस्तकों का सतर्कतापूर्वक-चयन करते हैं। पुस्तक-चयन की प्रक्रिया के समापन के बाद पुस्तकालय के दूसरे महत्वपूर्ण प्रभाग का कार्य आरम्भ होता है जो पुस्तकों का अधिग्रहण करता है। पुस्तक-अधिग्रहण प्रभाग की कार्यवाही चयनित पुस्तकों के पुस्तकालय में आ जाने के बाद शुरू होती है। इस प्रभाग के लोग सभी प्राप्त पुस्तकों पर पुस्तकालय की मुहर देने के बाद अधिग्रहण पंजिका में

प्राप्त पुस्तकों का ब्योरा दर्ज कर देते हैं और इसके बाद पुस्तकालय का वर्गीकरण प्रभाग अपने तकनीकी विशेषज्ञों के माध्यम से सभी उपलब्ध पुस्तकों का विविध कोटियों में वैज्ञानिक वर्गीकरण करता है। वर्गीकरण प्रभाग को पुस्तकालय के संगठन में सर्वाधिक तकनीकी प्रभाग होने का गौरव प्राप्त है। वर्गीकरण के बाद पुस्तकों का वर्गीकृत स्वरूप सूचीकरण विभाग में पहुँचता है, जहाँ उपलब्ध तकनीकी कर्मचारी पुस्तकालय की वर्गीकृत सम्पदा की इतनी उपयोगी सूचियाँ तैयार करते हैं कि उन सूचियों के सहारे पुस्तकालय के उपयोगकर्त्ता कम-से-कम समय में अपनी वांछित पाठ्य-सामग्री तक पहुँच सकें। सच तो यह है कि वर्गीकरण और सूचीकरण प्रभागों के श्रम के कारण ही पुस्तकालय की उपयोगिता अधिक तीव्र तथा बहुआयामी होती है। इन सब कार्यों के अनन्तर पुस्तकें आदान-प्रदान प्रभाग में पहुँचती हैं, जहाँ पुस्तक और पाठक का सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है। पुस्तकों की प्राप्ति शीघ्र और अनुकूल हो। समूचे संसार में पुस्तकालयों में आदान-प्रदान के लिए कम-से-कम दस प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनके बीच १६१६ से प्रचलित न्यूआर्क प्रणाली सर्वाधिक लोकप्रिय है। पुस्तकालय के नियमित सदस्यों और अनियमित आगन्तुकों के बीच पुस्तकालय की सम्पदा के आदान-प्रदान पर आधारित पुस्तकालय का यह प्रभाग पर्याप्त दक्ष और व्यावहारिक होना चाहिये। प्रत्येक पुस्तकालय में एक ऐसे विशिष्ट प्रभाग की आवश्यकता का भी अनुभव किया गया है, जो पुस्तकालय में उपलब्ध ज्ञान-सामग्री का उचित संरक्षण कर सके। इस प्रभाग के कर्मचारियों का दायित्व है कि पुस्तकें कीड़ों, चूहों, दीमकों, वर्षा और बाढ़ आदि से सुरक्षित रहें तथा पाठकों द्वारा किये जाने वाले कुप्रयोगों से भी उन्हें बचाया जा सके। पुस्तकालय के इसी संरक्षण प्रभाग का कार्य पुस्तकों की लगातार जाँच करना और समय-समय पर उनका प्रत्याहरण करना भी होता है। इन सब के समुचित समन्वय से ही पुस्तकालय-प्रक्रिया साकार होती है।

इधर के पुस्तकालयों में अब नये-नये प्रभाग उपस्थित होने लगे हैं, इसीलिए सूचना-सेवा, सन्दर्भ-सेवा, प्रलेखन विभाग जैसे प्रभागों के आगमन से पुस्तकालय के कार्यक्षेत्र का विस्तार हुआ है। आने वाले दिनों में जैसे-जैसे पुस्तकालय द्वारा संगृहीत और संरक्षित होने वाली सामग्री अधिकाधिक तकनीकी होती जायेगी, पुस्तकालय के नूतन प्रभागों की भूमिका अधिक भास्वर होगी। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकालय की समूची कार्यविधि इसके विविध प्रभागों पर आधारित है। किसी एक प्रभाग के असावधान अथवा अक्षम हो जाने पर पुस्तकालय की सारी कार्यविधि रोगग्रस्त हो सकती है।

पुस्तकालय के उपस्कर

पुस्तकालय के विभिन्न प्रभागों के माध्यम से जो बहुजन हिताय कार्यविधि मूर्त्त होती है, उसके सम्पन्न होने में कई भौतिक उपस्करों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस क्रम में सबसे पहले पुस्तकालय-भवन की चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी, जहाँ पुस्तकालय की सम्पूर्ण कार्य-प्रणाली सम्पन्न होती है। पुस्तकालय सेवा की सुचारुता और उपयोग-

कर्त्ताओं की सुविधा के लिए यह परमावश्यक है कि पुस्तकालय के पास एक निजी सर्वांगपूर्ण भवन हो, जहाँ पुस्तकालय के सारे प्रभाग समुचित विस्तार के साथ कार्यरत हो सकें और जहाँ पहुँच कर पाठकों एवं अनुसंधाताओं को संतोष प्राप्त हो सके। पुस्तकालय विज्ञानियों ने एक आदर्श पुस्तकालय की कई अर्हताओं का उल्लेख किया है। आशा की जाती है कि पुस्तकालय में पुस्तकों और अन्य सामग्रियों के संरक्षण के लिए उपयुक्त भीतरी प्रकोष्ठ होंगे और पुस्तकालय के विभिन्न प्रभागों के लिए भी अलग-अलग कक्षों की व्यवस्था होगी। आदर्श पुस्तकालय में सुविधापूर्ण वाचनालय, सुगम आगम-निर्गम पटल, शोध-कक्ष, सन्दर्भ-कक्ष और सूची-पत्र रखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। अच्छे पुस्तकालय में बच्चों के लिए अलग कक्ष हो और उसमें पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी अलग व्यवस्था हो, ऐसा सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया गया है। पुस्तकालय भवन पर विचार करते हुये चिन्ता व्यक्त की गई है कि बहुत सारे पुस्तकालयों के भवन दुर्गम स्थलों पर निर्मित हैं अथवा उनमें प्रकाश को समुचित व्यवस्था नहीं है। वास्तव में पुस्तकालय भवन के निर्माण के लिए सुगम स्थान का चुनाव होना चाहिये, जहाँ अधिक से अधिक पाठक पहुँच सकें और जहाँ आने के लिए अधिकारियों-कर्मचारियों को भी असुविधा का सामना नहीं करना पड़े। पुस्तकालय में अच्छी प्रकाश-व्यवस्था और समुचित शान्ति का होना अनिवार्य है। अत्याधुनिक पुस्तकालयों को अब वातानुकूलित रखा जा रहा है, ताकि दुर्लभ पाठ्य-सामग्रियों को सुरक्षित रखा जाय और पाठकों को भी आराम मिले। पुस्तकालय भवन की इन सुविधाओं के समानान्तर पुस्तकालय के लिए विभिन्न उपयोगी उपस्करों की अपेक्षा भी होती है।

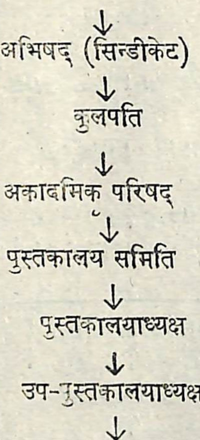
पुस्तकालय के आधारभूत उपस्करों में लकड़ी और लोहे के बने उन सारे उपकरणों की गणना की जा सकती है, जिसके माध्यम से पुस्तकालय के विभिन्न प्रभाग अपने पाठकों को अधिकाधिक सुविधायें प्रदान करते हैं। पुस्तकालय के लिए आलमारियों की खरीद पुस्तकों और अन्य पाठ्य-सामग्रियों के संग्रहण के लिए की जाती है। कुर्सियों और मेजों की आवश्यकता पाठकों और कर्मचारियों के उपयोगार्थ होती है। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को प्रदर्शन हेतु रखने के लिए लकड़ी अथवा लोहे के विशिष्ट पटों की आवश्यकता होती है। पुस्तकालय की पुस्तक सूचियों को रखने तथा पाठकों के सुझाव एवं माँग पत्रों को एकत्र करने के लिए विशिष्ट मन्जूषायें होनी चाहिये। पुस्तकालय में एक सूचना पट्ट भी अनिवार्य है, ताकि समय-समय पर निकलने वाली विज्ञप्तियाँ सूचित की जा सकें। आदर्श पुस्तकालयों में कर्मचारियों द्वारा पुस्तकालय भवन के भीतर इधर से उधर पुस्तकें ले जाने के लिए पुस्तक वाहन का प्रावधान होता है। इन सारे उपस्करों के माध्यम से पुस्तकालय की उपयोगार्थ क्षमता में वृद्धि होती है। इसीलिए अपेक्षा की जाती है कि पुस्तकालय के लिए कम-से-कम धन राशि में अधिक संख्या में आकर्षक, मजबूत, उपयुक्त और सुविधाजनक उपस्करों की खरीद होगी। पुस्तकालय के प्रभागों और उसकी कार्यविधि में विस्तार के साथ-साथ पुस्तकालय के उपस्करों के स्वरूप और संख्या में भी वृद्धि होती रहती है। जिस तरह पुस्तकालय की परिकल्पना उसके विभिन्न

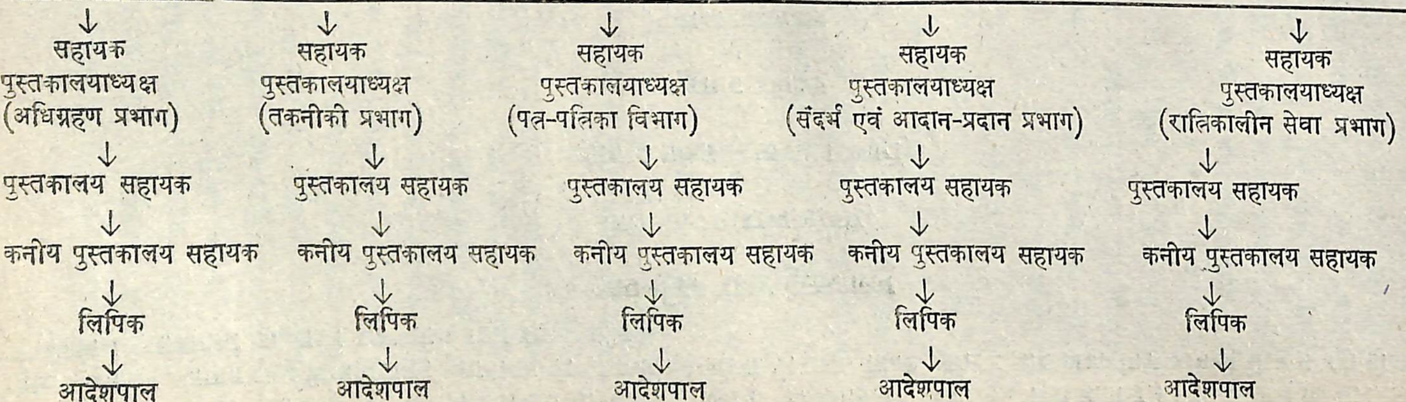
प्रभागों की कार्यविधि के बिना नहीं हो सकती; उसी तरह पुस्तकालय का भौतिक स्वरूप इन उपस्करों के बिना आकार नहीं ग्रहण कर सकता।

पुस्तकालय का प्रशासन-तन्त्र

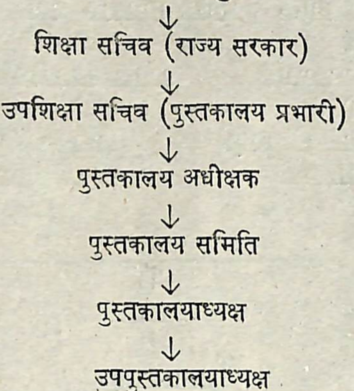
किसी भी संस्था अथवा संगठन की सुचारुता एवं सुव्यवस्था के लिए नियन्त्रण और प्रबन्धन की समुचित व्यवस्था अपेक्षित है। पुस्तकालय जैसी बहुआयामी संस्था में संगठन, प्रबन्ध, नेतृत्व और समन्वयन के लिए प्रशासन तन्त्र की सुगठित योजना पर पर्याप्त बल दिया गया है। वास्तव में प्रशासन तन्त्र एक ऐसी शक्ति है जिसके माध्यम से संगठन और प्रबन्धन द्वारा तय की गई नीतियाँ कार्यान्वित होती हैं, समूची संस्था की योजना और पारस्परिक कार्य-प्रक्रिया को अनुकूलता मिलती है। प्रशासन तन्त्र की सुदृढ़ता के कारण ही पुस्तकालय में विभिन्न प्रभागों के बीच समन्वय स्थापित होता है और पुस्तकालय एक सुनिश्चित योजना के अधीन विकसित होता है। स्वभावतः पुस्तकालय के प्रशासन तन्त्र का कार्य पुस्तकालय की योजना बनाना, संस्था को संगठित करने, अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच तालमेल स्थापित करने, निर्देश देने, पुस्तकालय को संयोजित और नियन्त्रित करने से सम्बद्ध है। वास्तव में सामाजिक व्यवस्था के हर अंग को ऐसी छूट मिली हुई है कि वह अपने विकास के अनुरूप प्रशासन तन्त्र को विकसित कर सके। इसीलिए पुस्तकालय में भी प्रशासन की एक सुनिश्चित शृंखला रहती है। यह शृंखला अलग-अलग कोटियों के पुस्तकालयों में थोड़े से अन्तर के साथ अनिवार्यतः विद्यमान है।

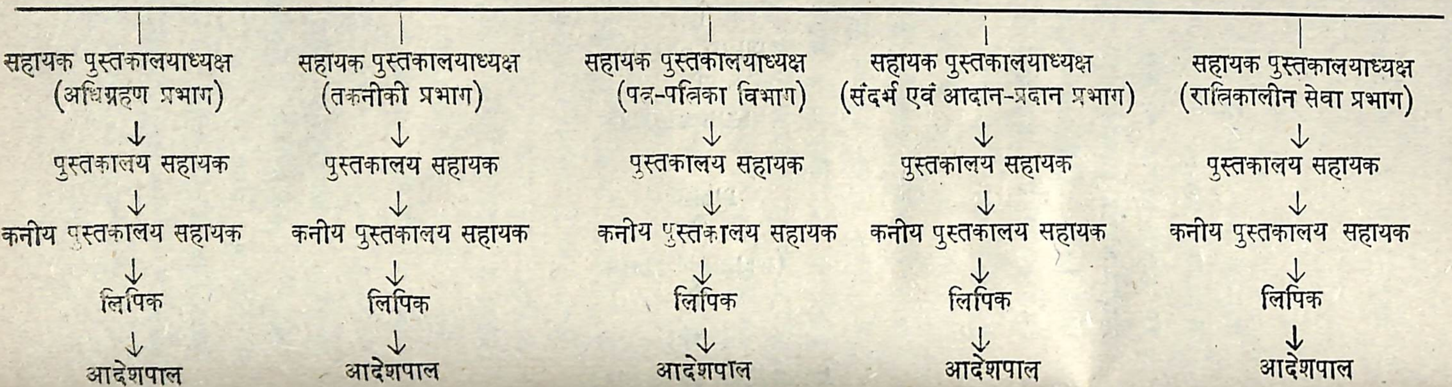
पुस्तकालय का प्रशासन तन्त्र पुस्तकालय समिति और पुस्तकालय अधिकारियों के संगठन से लेकर कर्मचारियों तक फैला हुआ है। पुस्तकालय विषयक जो कानून भारत और अन्य देशों में स्वीकृत हैं, उनके अन्तर्गत पुस्तकालय का प्रशासन एक सुनिश्चित तन्त्र के अधीन है। कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक पाठकों को अधिक-से-अधिक संतोष प्रदान करने में पुस्तकालय की सक्षमता को अनुकूलता प्रदान करने के लिए किसी व्यापारिक प्रबन्ध तन्त्र की तरह पुस्तकालय का प्रशासनिक ढाँचा भी तैयार किया जाता है। इसीलिए पुस्तकालय में ऊपर से लेकर नीचे तक समूचा प्रशासनिक विधान एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख है और इस समूचे संगठन का कार्य केवल पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों की परिपालना करना है। पुस्तकालय के प्रशासन तन्त्र को विभिन्न पुस्तकालय श्रेणियों के सन्दर्भ में परखे बिना इस ढाँचे का पूरा जायजा नहीं लिया जा सकता। समूचे संसार में उपलब्ध पुस्तकालयों का बहुत बड़ा हिस्सा शैक्षणिक पुस्तकालयों के रूप में है और ऐसे पुस्तकालयों के बीच विश्वविद्यालय पुस्तकालय के प्रशासनिक ढाँचे को एक प्रतिनिधि तन्त्र की संज्ञा दी जा सकती है। यह ढाँचा इस प्रकार है—


विश्वविद्यालय पुस्तकालय
सिनेट
अभिषद् (सिन्डीकेट)
कुलपति
अकादमिक परिषद्
पुस्तकालय समिति
पुस्तकालयाध्यक्ष
उप-पुस्तकालयाध्यक्ष


सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष (अधिग्रहण प्रभाग)
पुस्तकालय सहायक
कनीय पुस्तकालय सहायक
लिपिक
आदेशपाल
सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष (तकनीकी प्रभाग)
पुस्तकालय सहायक
कनीय पुस्तकालय सहायक
लिपिक
आदेशपाल
सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष (पत्र-पत्रिका विभाग)
पुस्तकालय सहायक
कनीय पुस्तकालय सहायक
लिपिक
आदेशपाल
सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष (संदर्भ एवं आदान-प्रदान प्रभाग)
पुस्तकालय सहायक
कनीय पुस्तकालय सहायक
लिपिक
आदेशपाल
सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष (रात्रिकालीन सेवा प्रभाग)
पुस्तकालय सहायक
कनीय पुस्तकालय सहायक
लिपिक
आदेशपाल

विश्वविद्यालय पुस्तकालय के प्रशासनिक ढाँचे से सार्वजनिक पुस्तकालय का प्रशासनिक स्वरूप कुछ भिन्न होता है। यही कारण है कि सार्वजनिक पुस्तकालय का प्रशासन तन्त्र विश्वविद्यालय पुस्तकालय की प्रशासनिक व्यवस्था की तरह सिनेट-सिंडीकेट और अकादमिक अभिषद् से जुड़ा नहीं होता। सार्वजनिक पुस्तकालयों का आदर्श प्रशासनिक ढाँचा इस प्रकार है—





विश्वविद्यालय और सार्वजनिक पुस्तकालयों की प्रशासनिक संरचना में ऊपरी तौर पर भले ही पार्थक्य लक्षित होता है, लेकिन दोनों ही किस्म के पुस्तकालयों की मूलभूत कार्यविधि न तो कुलपति और शिक्षा सचिव पर आधृत है और न अकादमिक समिति के सदस्यों अथवा राज्य सरकार के अधिकारियों को ही पुस्तकालय की विकास-यात्रा से कोई लेना-देना होता है। सभी पुस्तकालयों का सारा प्रशासन मुख्यतः पुस्तकालय समिति में केन्द्रित है। यूरोप के आरम्भिक पुस्तकालयों के लिए ऐसी समितियों का गठन १४वीं शताब्दी के आसपास होने लगा था, जबकि भारत में १८७६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत पाँच सदस्यों की पहली पुस्तकालय समिति संगठित हुई। आज हम किसी भी पुस्तकालय के प्रशासन तन्त्र की परिकल्पना पुस्तकालय समिति के बिना नहीं कर सकते चाहे यह समिति तदर्थ समिति हो, प्रतिवेदित समिति हो, वैधानिक समिति हो, स्थायी समिति हो अथवा निर्वाचित समिति हो। पुस्तकालय समिति ही पुस्तकालय की प्रशासनिक व्यवस्था को नियन्त्रित करती है। पुस्तकालय समिति के ऊपर ही प्रशासन का यह दायित्व आधारित है कि वह पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति एवं प्रोन्नति करे, पुस्तकालय की संगृहीत सामग्री के बारे में सिद्धान्त निर्धारित करे, पुस्तकालय के पाठकों की सुविधा का प्रबन्ध करे, पुस्तकालय की भवन-व्यवस्था और उपस्करों की देखभाल करे तथा पुस्तकालय की वित्तीय स्थिति पर नजर रखे। इसीलिए पुस्तकालय समिति को पुस्तकालय प्रशासन का मेरुदण्ड कहा गया है। विभिन्न पुस्तकालयों की समितियों में पार्थक्य है। जैसे—सार्वजनिक राज्य पुस्तकालय की समिति में पुस्तकालय अधीक्षक अथवा नगर का उच्चस्थ प्रशासनिक अधिकारी, पुस्तकालयाध्यक्ष, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ और संभ्रांत नागरिक होते हैं। दूसरी ओर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की समिति में मुख्यतः कुलपति, पुस्तकालयाध्यक्ष, कुलसचिव, वित्त अधिकारी, छात्र-कल्याण अधिकारी, विविध संकायाध्यक्ष और विभिन्न विभागों के अध्यक्ष रहते हैं। यदि किसी महाविद्यालय की पुस्तकालय समिति के सदस्यों की तालिका तैयार की जाय तो उसमें प्राचार्य, पुस्तकालयाध्यक्ष, सभी विभागाध्यक्ष, छात्र संघ के अध्यक्ष, छात्र एवं शिक्षक प्रतिनिधियों की गणना की जा सकती है। पुस्तकालय समिति ही सभी स्तरों पर पुस्तकालय के प्रशासन को नियमित करती है।

पुस्तकालय के सुदृढ़ प्रशासनिक संगठन से ही पुस्तकालय का संचालन सफल होता है। पुस्तकालय के विभिन्न प्रभागों से लेकर उनके निर्विघ्न कार्य सम्पादन तक का सारा दायित्व उस प्रशासनिक प्रबन्धन पर होता है, जो पुस्तकालयों की संरचना के मूल में विद्यमान है। पुस्तकालय का प्रशासन जितना ही अधिक वैज्ञानिक और सन्तुलित होगा, पुस्तकालय की कार्यक्षमता उतनी ही बेहतर होगी। कई स्तरों पर पुस्तकालय संगठन और पुस्तकालय प्रशासन के बीच पार्थक्य की रेखायें धूमिल दिखलाई पड़ती हैं, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। पुस्तकालय संगठन का उद्देश्य सिद्धान्तों का निर्धारण करना है, जबकि पुस्तकालय का प्रशासन तन्त्र निर्धारित सिद्धान्तो का कार्यान्वयन करता है। इसीलिए पुस्तकालय के प्रशासन पर ही इस सामाजिक ज्ञान

केन्द्रित संस्था की सारी यांत्रिकी आधारित है। जिस तरह कुशल और अनुभवी चालक के हाथों में आकर मोटर कार अपनी सही गति और दिशा प्राप्त करती है, उसी तरह नियोजित और दक्ष प्रशासन के अधीन पुस्तकालय भी अपना वास्तविक रूपाकार ग्रहण करता है। विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने पुस्तकालय प्रशासन के सिद्धान्त और व्यवहार पर व्यापक चर्चा की है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकालय का प्रशासन मूलतः अनुभव और परिस्थितिजन्य दक्षता से अनुकूलता प्राप्त करता है।

पुस्तकालय का अर्थतन्त्र

पुस्तकालय की स्थापना मात्र से इसके उद्देश्यों की न पूर्ति हो सकती है और न पुस्तकालय का प्रशासनिक ढाँचा ही उसे पूरी तरह संचालित कर सकता है। विकासशील संस्था होने के नाते पुस्तकालय एक खर्चीली संस्था है और अपने वित्तीय साधनों के लिए अग्रसर रहती है। इसीलिए पुस्तकालय के संचालन में उसके अर्थतन्त्र की अपनी विशिष्ट भूमिका है। पुस्तकालय की तरह आर्थिक व्यवस्था भी एक परिवर्तनशील शक्ति है, जिसका विनियोग किसी भी सामाजिक संस्था अथवा संगठन के संचालन के लिए अनिवार्य है। इसीलिए पुस्तकालय जैसी संस्था के लिए अर्थतन्त्र की एक स्वतन्त्र व्यवस्था की अपेक्षा की गई है, ताकि पुस्तकालय के आय-व्यय का बजट तैयार हो सके एवं वित्तीय साधनों की समुचित देखभाल की जा सके।

किसी भी पुस्तकालय में विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय के अनुपात में आय की व्यवस्था उसके अर्थतन्त्र पर निर्भर करती है। आय और व्यय का अनुपात बना रहे इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तकालय के लिए वित और वित संचालन की सुनिश्चित व्यवस्था हो। वास्तव में सभी पुस्तकालयों की आय के स्रोत एक जैसे नहीं होते और उनमें व्यय के रास्ते भी समान नहीं होते। शैक्षणिक पुस्तकालयों का बजट उन्हें संचालित करने वाली शैक्षणिक संस्था तैयार करती है, तदनुसार पुस्तकालय की वित्त व्यवस्था मूर्त्त होती है। जैसे, विश्वविद्यालय-पुस्तकालय की वित व्यवस्था के लिए विश्वविद्यालय के वार्षिक बजट में प्रावधान होता है। और इसी के अनुसार विश्वविद्यालय-पुस्तकालय के आय और व्यय का ब्योरा तैयार होता है। विश्वविद्यालय की आय का सारा हिस्सा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राज्य सरकार और विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त होता है। इस दृष्टि से विश्वविद्यालय पुस्तकालय की आय और व्यय की बानगी प्रस्तुत करने वाला एक बजट इस प्रकार तैयार किया जा सकता है—

आय	रुपये
१. अनुदान :	
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त	५,४५,६००-००
राज्य सरकार से प्राप्त	३,२२,८००-००
विश्वविद्यालय का योगदान	३,२२,८००-००

२. चन्दा (शिक्षार्थियों के द्वारा)	१२,६४०-००
३. विलम्ब शुल्क, आदि	८,१६०-००
कुल	१२,१२,०००-००

व्यय	रुपये
१. वेतन और मजदूरी	१,५०,०००-००
२. पुस्तकों की खरीद	६,८४,७००-००
३. पत्र-पत्रिकाओं की खरीद	३,१०,०००-००
४. जिल्दबन्दी	५,०००-००
५. प्रकाश-व्यवस्था	५,०००-००
६. उपस्कर	४०,०००-००
७. अन्य व्यवस्थापकीय व्यय	७,३००-००
कुल	१२,१२,०००-००

विश्वविद्यालय पुस्तकालय से सार्वजनिक पुस्तकालयों का अर्थतन्त्र सर्वथा भिन्न होता है। केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा संचालित पुस्तकालयों और किसी निजी संस्था द्वारा संचालित पुस्तकालय की आय के स्रोतों में भी अन्तर होता है। सामान्यतः सार्वजनिक पुस्तकालय सरकार द्वारा प्राप्त अनुदान, पुस्तकालय कर, दान द्वारा प्राप्त राशि, सदस्यता शुल्क, सदस्यों द्वारा विलम्ब दण्ड के रूप में दी गई राशि और रद्दी कागज की बिक्री द्वारा प्राप्त राशि आदि को ही आय के स्रोतों के रूप में ग्रहण करते हैं। इसीलिए सार्वजनिक पुस्तकालय के आय के साधन सीमित हैं, यद्यपि उनमें व्यय की सीमायें शैक्षणिक पुस्तकालयों से कम नहीं होतीं। सार्वजनिक पुस्तकालय के बजट की एक बानगी इस प्रकार है—

आय	रुपये
१. राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान	१,६५,०००-००
२. सदस्यों से प्राप्त शुल्क राशि	७८,०००-००
३. विलम्ब शुल्क, आदि	१,६००-००
कुल	२,४४,६००-००

व्यय	रुपये
१. वेतन और मजदूरी	३४,०००-००
२. पुस्तकों की खरीद	१,७७,०००-००
३. पत्र-पत्रिकाओं की खरीद	१८,०००-००
४. जिल्दबन्दी	३,०००-००
५. प्रकाश-व्यवस्था	२,०००-००
६. उपस्कर	८,०००-००
७. अन्य व्यवस्थापकीय व्यय	२,६००-००
कुल	२,४४,६००-००

निजी सार्वजनिक पुस्तकालयों में दान के रूप में प्राप्त राशि आय स्वरूप ग्रहण की जाती है, लेकिन ऐसे पुस्तकालयों में किराया, बीमा और कर्ज जैसी व्यय की कुछ मदें भी हैं। इस बारे में पर्याप्त मतभेद रहा है कि पुस्तकालयों के अन्तर्गत विभिन्न मदों में व्यय किये जाने वाली राशि कितनी निश्चित की जाय। डॉ० रंगनाथन ने स्थापित किया था कि पुस्तकालय बजट की कुलराशि का आधा वेतन आदि पर व्यय होना चाहिये, ताकि बेहतर सेवा प्रदान की जा सके। अमेरिकी कांग्रेस पुस्तकालय के अनुसार पुस्तकालय के व्यय का अनुपात इस प्रकार है—

१. वेतन आदि	७०.० प्रतिशत
२. पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं की खरीद	१५.७ प्रतिशत
३. अन्य	१४.३ प्रतिशत

डॉ० रामशोभित प्रकाश सिंह ने पुस्तकालय व्यय का अनुपात इस प्रकार स्थिर करने का प्रस्ताव किया है—

१. वेतनादि आदि	५०.० प्रतिशत
२. पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाओं की खरीद तथा जिल्दबन्दी	२५.० प्रतिशत
३. आकस्मिकतायें	२५.० प्रतिशत

निश्चय ही पुस्तकालय की वित्त व्यवस्था पर ही उसका सारा कार्य-व्यापार निर्भर करता है। यदि पुस्तकालय में अर्थतन्त्र की देखरेख के लिए स्वतन्त्र लेखा विभाग रहे तो यह एक अच्छी व्यवस्था कही जायेगी। आर्थिक साधनों के अधीन ही पुस्तकालय अपने पाठकों को अधिकतम संतोष प्रदान करने को चेष्टा करता है। इसलिए यह अस्वाभाविक न होगा कि पुस्तकालय के अर्थतन्त्र पर सबसे पहले ध्यान दिया जाय और तदनुरूप पुस्तकालय की प्रगति के मार्ग प्रशस्त हों।

पुस्तकालय के अधिकारी और कर्मचारी

किसी भी श्रेणी के पुस्तकालय की समस्त कार्य-प्रणाली जिन लोगों के माध्यम से साकार होती है, उन्हें ही अधिकारियों और कर्मचारियों के रूप में देखा जाता है। पुस्तकालयाध्यक्ष, उप-पुस्तकालयाध्यक्ष, सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, पुस्तकालय सहायक, कनीय पुस्तकालय सहायक, लिपिक और आदेशपाल के रूप में जो लोग पुस्तकालय में काम करते हैं, वस्तुतः उन्हीं पर समूची पुस्तकालय-प्रक्रिया आश्रित है। स्वभावतः पुस्तकालय में अधिकारी और कर्मचारी दो उपवर्गों के लोग कार्य करते हैं। पुस्तकालयाध्यक्ष, उप-पुस्तकालयाध्यक्ष और सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष की गणना अधिकारियों के बीच होती है, जबकि शेष लोग पुस्तकालय के कर्मचारी हैं।

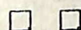
पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय का वरिष्ठतम अधिकारी है, यद्यपि पुस्तकालय के प्रशासन और प्रबन्धन के अधिकांश वैधानिक दायित्व का सम्बन्ध पुस्तकालय के शासी निकाय और पुस्तकालय समिति पर होता है। लेकिन व्यावहारिक तौर पर समूचा पुस्तकालय अकेले पुस्तकालयाध्यक्ष के नियन्त्रण में रहता है। यह एक ऐसा समर्थ और सम्बन्ध स्थापक प्रशासक होता है, जिससे एक साथ कई अपेक्षाएँ की जाती हैं। पुस्तकालयाध्यक्ष ही पुस्तकालय में उपलब्ध सुविधाओं और असुविधाओं, खूबियों और खामियों सबके प्रति उत्तरदायी होता है। उसे एक ओर शासी निकाय के साथ जुड़कर पुस्तकालय के प्रशासन को अनुकूलता देनी होती है तो दूसरी ओर उसे पुस्तकालय के अपने सहयोगियों के साथ मधुर और विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित रखना पड़ता है। उसका कर्त्तव्य एक ओर पुस्तकालय के उपभोक्ताओं को सन्तोष प्रदान करना होता है तो दूसरी ओर राष्ट्र और समाज के प्रति पुस्तकालय के महान् उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में भी सचेष्ट रहना पड़ता है। स्वभावतः पुस्तकालयाध्यक्ष एक बहुमुखी, दायित्वपूर्ण और समर्थ योग्यता वाले व्यक्तित्व का दूसरा नाम है।

पुस्तकालय की कार्य-सुचारुता के लिए आवश्यक है कि पुस्तकालयाध्यक्ष अपने सहयोगियों के बीच कार्य को समुचित व्यवस्था करे; ताकि पुस्तकालय के सभी प्रभाग कुशलतापूर्वक कार्यरत हो सकें। इसके लिए पुस्तकालयाध्यक्ष अपने मूलभूत दायित्वों को सबसे पहले उप-पुस्तकालयाध्यक्ष के साथ बाँटता है और पुस्तकालय के विभिन्न प्रभागों के प्रभारी के रूप में विभिन्न सहायक पुस्तकालयाध्यक्षों की सहायता लेता है। अधिग्रहण, तकनीकी, पत्र-पत्रिकाएँ, सन्दर्भ-सेवा, रात्रि-सेवा, जैसे प्रभागों के लिए प्रभारी सहायक पुस्तकालयाध्यक्षों के अतिरिक्त पुस्तकालयों के अधिकारी वर्ग में लेखा-अधिकारी की गणना भी होने लगी है। इन सभी अधिकारियों का कार्य-कलाप और पुस्तकालय की सुचारुता उन तकनीकी एवं गैर-तकनीकी कर्मचारियों पर निर्भर करती है, जो पुस्तकालय के विभिन्न प्रभागों में कार्य करते हैं। पुस्तकालय सहायक, कनीय पुस्तकालय सहायक, लिपिक और आदेशपाल के समानान्तर पुस्तकालय में आदान-प्रदान शाखा के कर्मचारियों, खजांची और स्वागती का महत्व भी पुस्तकालय की कार्य-विधि के बीच महत्वपूर्ण है।

पुस्तकालय के सुचारु संचालन के लिए पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों को मिलने वाली वेतन सुविधाओं और सेवा-शर्तों का आकर्षक होना अनिवार्य है, तभी पुस्तकालय के लोग पूरी निष्ठा के साथ बेहतर सेवा प्रदान कर सकते हैं। पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे अपेक्षित तकनीकी योग्यता रखें और पुस्तकालय की आचार-संहिता के अनुरूप पुस्तकालय की कार्य-विधि को गतिशील रखें। वास्तव में पुस्तकालय अपने अधिकारियों और कर्मचारियों के कारण ही लोकप्रिय और सर्व उपयोगी बन पाता है। पुस्तकालय को उनकी सम्पूर्णता प्रदान करने में अधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या, योग्यता और दक्षता का वैशिष्ट्य प्राथमिक शर्त है।

सन्दर्भ-संकेत

१. डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह : पुस्तकालय संगठन एवं प्रशासन, पृष्ठ ५२ ।



अध्याय १६

पुस्तक वर्गीकरण

परिभाषा

ज्ञान के विकास के साथ ही ज्ञान की श्रेणियों का भी विकास हुआ और तब से ही ज्ञान को अलग-अलग कोटियों में वर्गीकृत करने की प्रवृत्ति विकसित हुई। इसमें सन्देह नहीं कि वर्गीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है और उसका उद्देश्य समानता या असमानता के आधार पर वस्तुओं को अलग पहचान देना होता है। द्वारकाप्रसाद शास्त्री ने स्वीकार किया है—वर्गीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें पदार्थ को उसकी समानता और असमानता के आधार पर मानसिक दृष्टि से एकत्रित किया जाता है, जिससे हमारे कुछ उद्देश्य की पूर्ति हो।[1] वर्गीकरण की यह प्रवृत्ति मनुष्य की ज्ञानात्मक शाखाओं के विकास के साथ तीव्र होती गई है और समय के साथ वर्गीकरण प्रक्रिया भी जटिल होती गई है। जिस तरह मनुष्य को हम किसी एक कोटि में सीमित नहीं कर सकते, जाति और धर्म, रंग और रूप, देश और सम्प्रदाय, परिवार और परिवेश, व्यवहार और संस्कृति, जैसे अनेकानेक स्तरों पर मनुष्य को वर्गीकृत किया जा सकता है, ठीक इसी तरह मनुष्य के चारों ओर उपलब्ध पुस्तकों और अन्य ज्ञान-सामग्रियों को भी सुविधा और व्यावहारिक सुगमता की दृष्टि से पुस्तकालय विज्ञानियों ने विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है। पुस्तकों के वर्गीकरण की इस प्रक्रिया को ही पुस्तकालय वर्गीकरण अथवा पुस्तक वर्गीकरण कहा जाता है। पाश्चात्य और भारतीय विभिन्न विचारकों ने पुस्तकों के वर्गीकरण की अनेकानेक परिभाषाएँ दी हैं—

मार्गरेट मैन

पुस्तक वर्गीकरण कुछ सुधारों सहित ज्ञान का वर्गीकरण है, जो पुस्तकों के बाह्य स्वरूप के कारण आवश्यक हो गया।[2]

ए० जे० हाकिन्स

पुस्तक वर्गीकरण पुस्तकों की एक व्यवस्था है, जिसके माध्यम से पुस्तकें कम या अधिक तार्किक दृष्टि से सोद्देश्यता की कसौटी पर शीर्षक, विषय और विज्ञान के अनुरूप एक साथ संयोजित होती हैं।[3]

डब्ल्यू० हावर्ड फिलिप्स

वर्गीकरण का तात्पर्य व्यवस्था का एक ऐसा मुद्रित रूप है, जिसके माध्यम से पुस्तकों और अन्य प्रविष्टियों को एक सुव्यवस्थित क्रम में संयोजित किया जा सके।[4]

रोजर मिथाम

पुस्तक वर्गीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा चीजें अपनी उपादेयता और वर्ग क्षमता के अनुसार व्यवस्थित होती हैं।[5]

सी० डी० निघाम

पुस्तक वर्गीकरण योजना को सामान्यतः वर्गों और कोटियों में क्रमिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[६]

आर्थर माल्टेब

वर्गीकरण चाहे आलमारियों में हो अथवा सूची में, उसके माध्यम से वस्तुओं और शीर्षकों को एक पंक्ति या क्रम मिलता है।[७]

एल० एम० हैरोड

पुस्तक वर्गीकरण वस्तुओं के तार्किक संयोजन का दूसरा नाम है, जो उनको पसन्द और पुस्तकों के सही स्थान निरूपण पर आधारित होता है।[८]

डब्ल्यू० सी० बी० शेयर्स

पुस्तक वर्गीकरण पुस्तकों को फलकों पर व्यवस्थित करना है अथवा पुस्तकों को पाठकों के लिए अत्यधिक उपयोगी बनाने का विवरण है।[९]

कृष्ण कुमार

पुस्तक वर्गीकरण ऐसी प्रक्रिया है, जो समान प्रलेखों को निकट लाती है और असमानों को विलग करती है।[१०]

डॉ० एस० आर० रंगनाथन

पुस्तक के विशिष्ट विषय के नाम को अधिमान्य कृत्रिम भाषा में अनुवाद करना ही ग्रन्थालय वर्गीकरण है। इसके साथ ही वर्गीकरण एक ही विशिष्ट विषय पर असंख्य पुस्तकों का पृथक्करण भी है, जो कुछ क्रामक संख्याओं की सहायता से होता है।[११]

जी० डी० भार्गव

समस्त सम्बन्धित विषयों को एक वर्ग में एकत्रित करना ही वर्गीकरण है। इसके द्वारा पुस्तकों को विभिन्न समूहों में रखा जाता है।[१२]

द्वारकाप्रसाद शास्त्री

पुस्तक वर्गीकरण ज्ञान सम्बन्धी विचारों और मान्यताओं को क्रमबद्ध करता है, जो कि लिखित रूप में या अन्य रूप में होती है।[१३]

डॉ० प्रभुनारायण गौड़

वर्गीकरण-विषय अथवा विषय-निरूपण रूप के अनुसार पुस्तकों और अन्य पाठ्य-सामग्री को वर्गों में व्यवस्थित करने की क्रमबद्ध योजना। सम्यक् ज्ञान समष्टि अथवा उसके किसी विशिष्ट अंश की एक युक्तिपूर्ण ढंग से वर्गानुसार व्यवस्था। पुस्तकों एवं अन्य पाठ्य-सामग्री को एक क्रमबद्ध वर्गीकृत योजना के अनुसार व्यवस्थित करने की कला या प्रविधि।[१४]

इन परिभाषाओं के आलोक में इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पुस्तक वर्गीकरण पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री के व्यवस्थित संयोजन का दूसरा नाम है। तकनीकी तौर पर पुस्तक वर्गीकरण को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है—

पुस्तक वर्गीकरण समान विषय की असंख्य पुस्तकों या ज्ञान-सामग्रियों को एकीकृत करने की उस व्यवस्थित प्रणाली का नाम है जिसके कारण पुस्तकालय को एक सुव्यवस्था और पाठकों को सुविधा प्राप्त होती है।

इस परिभाषा के अनुसार पुस्तकालय वर्गीकरण अथवा पुस्तक वर्गीकरण का लक्ष्य पुस्तकालय-सेवा को अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी बनाना है। इस तकनीकी प्रक्रिया के माध्यम से पुस्तकालय में संगृहीत समान विषयी सामग्रियों को एक साथ संयोजित किया जाता है। इसीलिए कई चिन्तकों के अनुसार पुस्तक वर्गीकरण असमान ज्ञान सामग्री को समानता की कसौटी पर निकट लाने का यत्न है। यह भी एक वास्तविकता है कि पुस्तकालय विज्ञानियों ने पुस्तक वर्गीकरण को नितान्त तकनीकी और जटिल स्वरूप दे रखा है, जबकि कोई भी वर्गीकरण संगृहीत सामग्री का अन्तिम प्रतिमान नहीं उपस्थित करता है।

आवश्यकता और उद्देश्य

पुस्तकालय की स्थापना पुस्तकों और अन्य ज्ञान सामग्रियों को सही समय में सही पाठकों तक सुगमतापूर्वक पहुँचाने के लिए की जाती है, इसलिए यह सर्वथा अनिवार्य है कि पुस्तकालय में उपलब्ध तमाम सामग्री को अत्यन्त सुविधाजनक ढंग से व्यवस्थित रखा जाय, ताकि पाठकीय लक्ष्य की पूर्ति हो सके। यदि पुस्तकालय में बेतरतीब और अव्यवस्थित ढंग से पुस्तकें रखी हों तो उन्हें पाठकों के बीच प्रस्तुत करने में पुस्तकालय कर्मचारियों को अपार असुविधा होगी, उनका और पाठकों का समय नष्ट होगा। इसी संकट को दूर करने के लिए पुस्तकों के वर्गीकरण की व्यवस्था अपनायी जाती है। पुस्तकालय विज्ञान की आधारशिला के रूप में वर्गीकरण को स्वीकार कर लेने का तात्पर्य यही है कि वर्गीकरण प्रक्रिया के सहारे ही विशाल ज्ञान सामग्री के बीच वांछित पुस्तकों को सुगमतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। पुस्तकालय की आलमारियों में, जहाँ इतिहास, भौतिकी साहित्य, जीव विज्ञान, भूगोल और गणित की पुस्तकें एक साथ रखी रहेंगी, वहाँ पुस्तकालय के कर्मचारियों और पाठकों को समान रूप से असुविधा हो सकती है। इसीलिए प्रत्येक आदर्श पुस्तकालय में उपलब्ध ज्ञान सामग्री को वर्गों में विभक्त करने के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं। पुस्तकों की सुविधाजनक क्रमबद्ध व्यवस्था और उपलब्ध सामग्री के आदान-प्रदान में होने वाली समय की बचत के सन्दर्भ में वर्गीकरण का महत्व निर्विवाद है। वास्तव में जहाँ कहीं पुस्तकों और अन्य ज्ञान सामग्रियों का भण्डार एकत्र होने लगता है, वहीं वर्गीकरण की उपादेयता उभरने लगती है। ज्ञान के जिन संसाधनों को उपयोगार्थ एकत्र किया जाता है, उनकी उपयोगार्थ व्यवस्था करना ही वर्गीकरण का लक्ष्य है।

वर्गीकरण स्थूल तौर पर एक किस्म का सारणीकरण है, जिसमें पुस्तकालय की सम्पूर्ण सामग्री को ऐसे सुनिश्चित क्रम में व्यवस्थित किया जाता है कि पाठकों और कर्मचारियों को सामग्री के उपयोग में सुविधा मिले। वर्गीकरण के कारण पुस्तकों के चुनाव, जाँच, प्रत्याहरण और उपयोग में अनूठी सुविधा मिलती है। यह एक सरल साधन है, जिसके द्वारा पुस्तकों को एक सुनिश्चित कोटि में व्यवस्थित किया जा सकता है। वर्गीकरण के आविष्कार ने पुस्तकालय के कर्मचारियों का काम आसान कर दिया है। पुस्तकों के आदान-प्रदान से लेकर पुस्तकों को सँभालने तक की प्रक्रिया में वर्गीकरण सहायक है। इसके सहारे किसी भी पुस्तकालय में उपलब्ध सम्पूर्ण विविध विषयक सामग्री का सम्पूर्ण ब्यौरा मिलता है। अनेक प्रकार की ग्रन्थ सूचियाँ तैयार करने और अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहित करने में भी वर्गीकरण की उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता। वास्तव में वर्गीकरण की एक विशिष्ट संयोजनात्मक आवश्यकता है और विशिष्ट व्यवस्थापरक लक्ष्य भी है।

पाठकों के समीप पुस्तकालय की सामग्री को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत करने में वर्गीकरण से बेहतर प्रक्रिया की कल्पना नहीं की जा सकती। अनादि काल के पुस्तकालयों में जिस दिन पहली बार विषय विशेष की पुस्तकों को एक क्रम से सजाया गया होगा, वह दिन मनुष्य के इतिहास का एक अविस्मरणीय दिन था। इसके बाद ही पुस्तकों को जानने और पहचानने में वर्गीकरण पद्धति की उपादेयता बढ़ी। निर्विवाद तौर पर वर्गीकरण का मुख्य लक्ष्य पुस्तकों के समूह बनाकर पाठकों और कर्मचारियों को व्यावहारिक सुविधा प्रदान करना है। इस क्रम में प्रत्येक वर्ग, विषय और उप-विषय की अनेकानेक श्रेणियाँ बनायी गई हैं, ताकि विशेषज्ञों को भी अपनी वांछित सामग्री के संधान में कठिनाई न हो। प्रत्येक पाठक को उसकी वांछित अध्ययन-सामग्री मिले, उसका समय नष्ट न हो और पुस्तकालय-सेवा और अधिक उपयोगी बने। इसी लक्ष्य को लेकर वर्गीकरण की परिकल्पना की गई है। निश्चय ही वर्गीकरण पुस्तकालय की कार्य-विधि का वह अन्तरंग मेरुदण्ड है, जो सीधे तौर पर पुस्तकालय एवं पाठकों के बीच पाठ्य-सामग्री को स्थापित करता है। वर्गीकरण की सफलता के आधार पर ही पाठक पुस्तकालय से सन्तुष्ट होते हैं और पुस्तकालय भी अपने पाठकों की सेवा कर सन्तोष का अनुभव करता है।

वर्गीकरण : प्रक्रिया और उसका आधार

पुस्तकालय में उपलब्ध ज्ञान सामग्री इतनी अधिक और इतनी वैविध्यपूर्ण है कि उसे वर्गीकरण किये बिना न तो पुस्तकालय को व्यवस्था मिल सकती है और न पाठकों को ही सन्तोष हो सकता है। इसीलिए वर्गीकरण की आवश्यकता का तीव्र अनुभव करते हुए पुस्तकालय विज्ञानियों ने वर्गीकरण के विभिन्न आधारों की चर्चा की है। तर्कशास्त्र में पदार्थों को सामान्य और विशेष दो वर्गों में विभाजित किया गया है। अरस्तू ने संसार की सारी वस्तुओं को द्रव्य, परिमाण, गुण, सम्बन्ध, दिशा, काल, परिस्थिति, व्यवस्था, क्रिया और कर्म शीर्षक दस श्रेणियों में विभाजित करने की पेशकश की थी। पुस्तकालय

विज्ञान में पुस्तकों के वर्गीकरण को इतने सहज रूप में नहीं स्वीकार किया गया है, अपितु जिन प्रतिमानों के आधार पर पुस्तक वर्गीकरण की कोशिशें हुई हैं, उनके कई नये उपयोगी आधार हैं। अत्यन्त प्राचीन पुस्तकालयों में पुस्तकों की पहचान और पुस्तकालय में उन्हें व्यवस्थित करने के लिए कई स्थूल तथ्यों का आधार ग्रहण किया जाता था। पुस्तक के आकार, वजन, जिल्द के रंग, जिल्द की किस्म, लेखक के नाम, शीर्षक, विषय, जैसी विशेषताओं के आधार पर पुस्तकों को व्यवस्थित करने की कोशिशें होती रही हैं। निश्चय ही पुस्तक को आकार, वजन, रंग और जिल्द की किस्म के आधार पर न तो अलग पहचाना जा सकता है और न पुस्तकालय में उन्हें कोई सुव्यवस्था ही दी जा सकती है।

कालान्तर में पुस्तकालय विज्ञानियों ने पुस्तक वर्गीकरण की वैज्ञानिक प्रविधि का विकास किया है और अब यह स्थापित हो चुका है कि पुस्तकों का वर्गीकरण कई मूलभूत विशेषताओं पर केन्द्रित है। अब यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री को उनकी आन्तरिक विशेषता के आधार पर इस तरह वर्गीकृत किया जाय कि वे अधिक से अधिक पाठकों की पहुँच में आ सकें। इस कार्य में पुस्तकों की परिग्रहण संख्या भी सहायक नहीं हो सकती, जैसा कि कुछ परम्परागत पुस्तकालयों में स्वीकार किया गया है। जहाँ पुस्तकों की संख्या अत्यन्त सीमित हो और पुस्तकालयाध्यक्ष अपनी सम्पदा के सभी शीर्षक कण्ठाग्र रखता हो, वहाँ भी परिग्रहण संख्या के आधार पर पुस्तकों का संयोजन वैज्ञानिक नहीं होता। आम पाठक की दिलचस्पी पुस्तकालय की कुल सम्पदा की जानकारी में नहीं होती, अपितु वे तो अपनी वांछित सामग्री की अपेक्षा करते हैं। इसीलिए परिग्रहण संख्या के अनुसार की गई पुस्तक व्यवस्था अवैज्ञानिक एवं अनुपयोगी कही गई है। वर्गीकरण के बहाने पुस्तकालय की सम्पूर्ण सामग्री की एक सुव्यवस्थित क्रमिक सूची तैयार होती है, जिसके माध्यम से वर्गीकरण-प्रक्रिया साकार होती है। विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने वर्गीकरण-प्रक्रिया के विभिन्न सूत्रों का निर्देश दिया है, लेकिन मानक वर्गीकरण की विशेषता उसकी सम्पूर्णता और क्रमबद्धता ही है। पुस्तकों का वर्गीकरण वर्ग, उपवर्ग, अनुवर्ग के रूप में क्रमशः सामान्य से विशेष की ओर प्रस्थित होता है। उपयोगकर्ताओं की सुविधा को ध्यान में रखकर पुस्तकों के वर्गीकरण का क्रम व्यवस्थित होना चाहिये, तभी वर्गीकरण पुस्तकालय के लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

पुस्तकों के वर्गीकरण के लिए पुस्तकालय विज्ञानियों ने विभिन्न आधारों की प्रस्तावना की है। पुस्तक वर्गीकरण की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं, लेकिन वर्गीकरण के मूलभूत सूत्रों के बारे में बहुत अधिक मतभेद नहीं है। यूरोपीय पुस्तकालय विज्ञानियों के अनुसार पुस्तक वर्गीकरण की पृष्ठभूमि में पुस्तकों का वर्ग विन्यास है और ऐसे वर्गीकरण के समय पुस्तकालय के तकनीकी कर्मचारी को पुस्तकालय के आकार, श्रेणी, पाठ्य-सामग्री के संग्रह, पाठकों की श्रेणियों और उनकी ग्रहण शक्ति की विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिये। इस सावधानी के बिना वर्गीकरण को अन्तिम रूप नहीं दिया जा

सकता । वास्तव में पुस्तकों को वर्गीकृत करने के पहले पुस्तकालय, उसके पाठकों और उसकी सम्पदा का सम्यक् अध्ययन होना चाहिये । डब्ल्यू० सी० बी० शेयर्स से आरम्भ हुई एतद्‌विषयक चिन्तना का चरम रूप डॉ० एस० आर० रंगनाथन की स्थापनाओं में मिलता है, जिन्होंने पुस्तक वर्गीकरण के छह मुख्य आधारों की परिकल्पना की—विशेषता, वर्ग विन्यास, शृंखला, संसर्ग अनुक्रम, पारिभाषिक शब्दावली और अंकन । इनमें से प्रत्येक धारणा पर आधारित वर्ग विन्यास ही वैज्ञानिक वर्गीकरण को प्रोत्साहित कर सकता है । डॉ० रंगनाथन ने इन सभी उपसूत्रों को कतिपय सैद्धान्तिक उपवर्गों **अथवा** गुणों में वर्गीकृत किया है—

(१) विशेषता—पृथक्करण, संलग्नता, सम्बद्धता, निर्धायता, स्थायित्व, सम्बद्ध-अनुक्रम, अनुरूपता ।

(२) वर्ग-विन्यास—निःशेषता, पृथकत्व, सहायक अनुक्रम, अनुरूप अनुक्रम ।

(३) वर्ग-शृंखला—विस्तार ह्रास, समावेशकता ।

(४) पारिभाषिक शब्दावली—प्रचलन, संयतता, परिगणन, प्रसंग ।

(५) अंकन—सापेक्षता, अभिव्यक्ति, मिश्रित अंकन ।

इन सारे उपसूत्रों के विस्तार में गये बिना भी यह स्वीकार किया जा सकता है कि डॉ० रंगनाथन ने पाठ्य-सामग्री को विषयानुसार क्रम प्रदान करने के लिए कई मूलभूत वर्गीकरण-आधारों की प्रस्तावना की है । यह भी स्वीकार लेना होगा कि प्रत्येक पुस्तकालय में प्रत्येक पाठक अपनी वांछित पाठ्य-सामग्री की माँग करता है और इस सामग्री का सीधा सम्बन्ध किसी-न-किसी विषय से होता है । इसलिए वर्गीकरण का मुख्य आधार पाठ्य-सामग्री का विशिष्ट विषय है और विषयानुसार क्रम निर्धारित करने से बेहतर पुस्तक वर्गीकरण का कोई आधार नहीं हो सकता । कठिनाई तब उत्पन्न होती है, जब अनेक विषयों की चर्चा एक ही पुस्तक में की जाती है अथवा किसी विषय का वर्णन कुछ पुस्तकों में सामान्य रूप से किया जाता है और कुछ पुस्तकों में विशिष्ट रूप से किया जाता है । ऐसी ही कठिनाइयों से जूझने के लिए डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने वर्गीकरण के उपसूत्रों का संकेतन किया है । निर्विवाद तौर पर वर्गीकरण का केन्द्रीय आधार पुस्तकों की विषय-सामग्री है । विषय के आधार पर ही पुस्तकों का वर्गीकरण वैज्ञानिक, उपयोगी और सार्थक हो सकता है । दूसरे शब्दों में पुस्तक वर्गीकरण पुस्तकों के सही विषयों का वर्गीकरण है, जिसके फलस्वरूप विभिन्न पुस्तकों के बीच प्रत्येक विशिष्ट पुस्तक का वैयक्तिक स्वरूप उभरकर सामने आता है ।

पुस्तक वर्गीकरण की प्रक्रिया में एक ओर पुस्तक के सही विषयों का चुनाव किया जाता है, तो दूसरी ओर सभी ज्ञात और अज्ञात विषयों के बीच प्रत्येक विषय की प्रत्येक पुस्तक को एक निश्चित स्थान दिया जाता है । इस दृष्टि से पुस्तक वर्गीकरण प्रक्रिया का पहला चरण वर्गीकरण योजना की तैयारी है, जिसके अन्तर्गत सभी सम्भावित विषयों

का एक मानचित्र बनाया जाता है और बाद में तदनुरूप पुस्तकें संयोजित की जाती हैं। इस प्रक्रिया के दूसरे चरण में प्रत्येक पुस्तक के विशिष्ट विषय का निर्धारण किया जाता है और तत्पश्चात् वर्गीकरण योजना में उक्त विशिष्ट विषय के स्थान का निरूपण होता है। स्वभावतः पुस्तक वर्गीकरण प्रक्रिया द्वारा पुस्तकालय की सुविधा और पाठकीय आवश्यकता के अनुरूप सम्पूर्ण संग्रहीत ज्ञान सामग्री को सुविधाजनक वैज्ञानिक और उपयोगी श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। यह एक तकनीकी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा पुस्तकालय व्यवस्था का वैज्ञानिक स्वरूप सामने आता है। वर्गीकरण प्रक्रिया के समापन के फलस्वरूप विभिन्न विषयों की विभिन्न पुस्तकों को आसानी से प्राप्त करने में सुविधा होती है। इसीलिए पुस्तकों को विविध विषयीकृत वर्गों में विभाजित कर उन्हें आलमारियों में सजा देना ही पुस्तक वर्गीकरण का कार्य नहीं है। पुस्तकों और विषयों को इंगित करने के लिए पुस्तकालय विज्ञान ने मानक अंकों और चिह्नों की व्यवस्था की है, जिनके आधार पर पुस्तकें पुस्तकालय के विशाल भण्डार के बीच भी अपनी अलग-अलग पहचान बनाती हैं। पुस्तक वर्गीकरण की सारी प्रक्रिया ज्ञान के अनेकमुखी विषयों पर आधारित है और ऐसी विषय केन्द्रित पुस्तक क्रम अवस्थायें ही पुस्तकालय को सम्पूर्णता प्रदान करती हैं।

वर्गीकरण की पद्धतियाँ

सभ्यता और पुस्तकालय के विकास के साथ ही ग्रन्थों की क्रमबद्धता और विषयानुसार व्यवस्था के प्रयासों का विकास होता रहा है। इतिहास साक्षी है कि नालन्दा और तक्षशिला के प्राचीन पुस्तकालयों में भी पुस्तकों को एक क्रमिक व्यवस्था प्राप्त थी और ग्रीस तथा रोम के प्राचीन ग्रन्थागारों में भी ग्रन्थ रखने की व्यवस्था पर बल दिया जाता था। विभिन्न दृष्टियों से पुस्तकों के वर्गीकरण को कोशिशें हुई हैं और पुस्तकालय विज्ञान के आधुनिकीकरण ने वर्गीकरण की कई पद्धतियों का प्रस्ताव किया है। यही कारण है कि पुस्तक वर्गीकरण की पद्धतियाँ समय और परिवेश के विकास के साथ-साथ अधिकाधिक वैज्ञानिक होती गई हैं और उनमें आधुनिकता का समावेश होता गया है। पुस्तकालयों में उपलब्ध पुस्तकों एवं अन्य ज्ञान सामग्रियों को एक सुनिश्चित विषय-वार क्रम देने की कई मानक वर्गीकरण पद्धतियाँ प्रचलित हैं, यद्यपि इस किस्म की पद्धतियों की कुल संख्या चालीस से ऊपर है, लेकिन अधोलिखित सात वर्गीकरण-पद्धतियाँ सर्वाधिक ख्यात हैं—

(१) **दशमलव वर्गीकरण पद्धति**—१८७३ में अमेरिकी पुस्तकालय विज्ञानी मेलविल ड्यूवी ने दशमलव वर्गीकरण पद्धति का आविष्कार किया था और १८७६ में प्रकाशित अपने एतद्विषयक ग्रन्थ में उन्होंने विषय वर्गों के निर्माण में दशमलव प्रणाली के आधार पर तीन अंकों के प्रतीकांकों का उपयोग किया। इस प्रणाली के अनुसार किसी भी पुस्तकालय में उपलब्ध कुल सामग्री को अधोलिखित दस मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है—

०००—सामान्य कृतियाँ
१००—दर्शनशास्त्र
२००—धर्मशास्त्र
३००—सामाजिक शास्त्र
४००—भाषा शास्त्र
५००—शुद्ध विज्ञान
६००—व्यावहारिक विज्ञान
७००—ललित कलायें
८००—साहित्य
९००—इतिहास

इन मुख्य विषय वर्गों को विभाग, खण्ड, उपखण्ड, उपखण्ड और सूक्ष्म उप-विभाग जैसे क्रमिक उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे—ड्यूवी की दशमलव वर्गीकरण पद्धति के मुख्य वर्ग साहित्य (८००) का क्रमिक उप-वर्गीकरण इस प्रकार सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ता है—

८००	साहित्य	मुख्य वर्ग
८२३	उपन्यास	विभाग
८२३.१	हिन्दी उपन्यास	खण्ड
८२३.२	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास	उपखण्ड
८२३.२६	चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यास	उप-उपखण्ड
८२३.२६३	चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासों की नायिकायें	सूक्ष्म उप-विभाग

इस उदाहरण से ज्ञात होता है कि ड्यूवी ने दशमलव वर्गीकरण पद्धति के अन्तर्गत दस वर्गों के लिए विस्तृत अनुसूचियों का निर्माण किया और रूप, भाषा और भौगोलिक विभाजन के आधार पर सापेक्षिक अनुक्रमणी को पल्लवित किया। यद्यपि इस दशमलव पद्धति का उपयोग संसार के अधिकांश पुस्तकालयों में हो रहा है, फिर भी इसके कई दोष भो लक्षित किये गये हैं। इसका केन्द्रीय कारण तो यही है कि ज्ञान के विस्तार ने दशमलव वर्गीकरण पद्धति में स्वीकृत दस वर्गों को अब अपर्याप्त घोषित कर दिया है और नये-नये विषयों के समावेशन की गुंजाइश ड्यूवी को पद्धति में नहीं रह गई है। इस पद्धति में सरल और व्यावहारिक प्रतीकांकन का उपयोग किया गया है, इसीलिए पिछले सौ से अधिक वर्षों में इसकी लोकप्रियता समाप्त नहीं हुई है। आलोचकों ने अनुभव किया है कि दशमलव वर्गीकरण पद्धति नये विषयों के समावेशन और पुस्तकालय

की बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को वहन करने में असमर्थ है। इसके बावजूद दशमलव पद्धति सर्वाधिक व्यापक और स्वीकृत वर्गीकरण पद्धति है।

(२) **विस्तारशील वर्गीकरण पद्धति**—अमेरिकी पुस्तकालय विज्ञानी चार्ल्स ए० कटर ने १८८१ में पुस्तकालय व्यवस्था के लिए वर्गीकरण की एक पद्धति का आविष्कार किया, जिसके अन्तर्गत विषयों के प्रतीकांक अंग्रेजी अक्षरों पर स्वीकार किये गये। कटर ने इस पद्धति में सात अनुसूचियों के माध्यम से विभिन्न विषयों की ज्ञान सामग्री को वर्गीकृत करने का यत्न किया। अपने पहले वर्गीकरण में कटर ने ग्रन्थों को आठ मुख्य वर्गों में विभाजित किया—

—A	सन्दर्भ कृतियाँ और सामान्य कृतियाँ
—B	दर्शन एवं धर्म
—E	जीवन चरित्र
—F	इतिहास, भूगोल एवं पर्यटन
—H	सामाजिक शास्त्र
—L	प्राकृतिक शास्त्र एवं कलायें
—Y	भाषा एवं साहित्य
—Y6	कथा साहित्य

इन आठ वर्गों में विभक्त ग्रन्थों को भी कटर ने लगातार उपवर्गों में विभक्त करते रहने की विस्तारशील योजना उपस्थित की है, जैसे उनके द्वितीय वर्गीकरण में १५ वर्गों की व्यवस्था है तो तीसरे वर्गीकरण में ३० वर्गों तथा २८ उपवर्गों की व्यवस्था है। इसी वर्गीकरण में अंग्रेजी वर्णमाला के बड़े और छोटे अक्षरों तथा अरबी संख्याओं का भी उपयोग किया गया है। वर्गों और अनुसूचियों के निर्माण में इस विस्तारशील वर्गीकरण पद्धति के लिए रूप, देश, काल और भाषा के आधार पर उपवर्ग तैयार करने का यत्न किया गया है। इस पद्धति के अन्तर्गत (Y) भाषा एवं साहित्य की पुस्तकों का प्रतीकांक है और यदि नाटक साहित्य के उपवर्गों की खोज इस पद्धति के अनुसार की जाये तो पुस्तकालय की व्यवस्था का प्रारूप इस प्रकार होगा—

—Y	भाषा और साहित्य
—Yd	नाटक
—Yd.3	हिन्दी नाटक
—Yd.39	जयशंकर प्रसाद के नाटक
—Yd.396	जयशंकर प्रसाद का चन्द्रगुप्त नाटक

वर्गीकरण की इस पद्धति को विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने सराहा है, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि इस पद्धति के प्रस्तोता चार्ल्स ए० कटर की असामयिक

मृत्यु के कारण इस पद्धति की अनुसूचियों का अन्तिम परिवर्द्धित रूप सामने न आ सका। डॉ० जी० डी० भार्गव ने स्वीकार किया है—यदि कटर महोदय को अपनी अन्तिम अनुसूची को पूरा करने का तथा प्रथम छह अनुसूचियों को सूचनात्मक परिवर्द्धन एवं संशोधन करने का अवकाश मिला होता (जो उनके असामयिक निधन से न हो सका) तो सम्भवतः यह पद्धति सर्वोत्तम एवं सर्वमान्य हो सकती थी[१५]।

(३) **लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण पद्धति**—अमेरिका के प्रसिद्ध लाइब्रेरी आफ कांग्रेस की स्थापना १८०० में हुई थी, जिसमें उपलब्ध विभिन्न ग्रन्थों और अन्य ज्ञान सामग्रियों को व्यवस्थित करने के लिए एक स्वतन्त्र वर्गीकरण पद्धति विकसित की गई। इस पद्धति के अन्तर्गत एक ओर कटर की विकासशील वर्गीकरण पद्धति को आधार बनाया गया है तो दूसरी ओर उपवर्गों के संकेतन के लिए भी रोमन अंकों का ही उपयोग किया गया है। अंग्रेजी वर्णमाला के बड़े अक्षरों का प्रयोग करते हुये लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण पद्धति में अधोलिखित २० मुख्य वर्गों की योजना की गई है—

A	सामान्य कृतियाँ (विविध)
B	दर्शन और धर्म
C	इतिहास और सहायक विज्ञान
D	इतिहास और भूपरिमापन (अमेरिका को छोड़कर)
EF	अमेरिका
G	भूगोल और मानवशास्त्र
H	सामाजिक विज्ञान और अर्थशास्त्र
J	राजनीति विज्ञान
K	विधि
L	शिक्षा
M	संगीत
N	ललित कला
P	भाषा तथा साहित्य
Q	विज्ञान (समस्त शाखायें)
R	चिकित्सा विज्ञान
S	कृषि एवं पशु उद्योग
T	अभियन्त्रणा
U	सैनिक विज्ञान
V	जलसेना विज्ञान
Z	ग्रन्थ-सूची तथा पुस्तकालय विज्ञान।

इस पद्धति में I, O, W, X, Y अक्षरों को भावी विकास योजनाओं के लिए सुरक्षित छोड़ दिया गया और मूलभूत बीस वर्गों के अन्तर्गत लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण की विस्तृत पद्धति अपनायी गई। इस पद्धति में असंख्य सूक्ष्म उपविभाग किये गये हैं और इसमें प्रत्येक वर्ग की निजी वर्णानुक्रम से बनी अनुक्रमणी की अपेक्षा की गई है। निश्चय ही बड़े आकार के पुस्तकालयों के लिए यह पद्धति उपयुक्त है, लेकिन संसार भर में उपलब्ध पुस्तकालयों में यह पद्धति कारगर नहीं हो सकती। इसलिए वैज्ञानिकता के अपने दावे के बावजूद लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण पद्धति व्यापक स्तर पर अलोकप्रिय सिद्ध हुई है।

(४) **सार्वभौम दशमलव वर्गीकरण पद्धति**—मेलविल ड्यूवी द्वारा प्रस्तावित दशमलव वर्गीकरण प्रणाली ने परवर्ती पुस्तकालय विज्ञानियों को इस दिशा में पुनर्मूल्यांकन के लिए बाध्य किया और १८९६ में ब्रुसेल्स (बेलजियम) के इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ बिब्लियोग्राफी के अन्तर्गत हेनरी पोन्टेन एवं पाल आटलेट ने सार्वभौम दशमलव वर्गीकरण प्रणाली की प्रस्तावना की। इस प्रणाली के अन्तर्गत ज्ञान के सभी क्षेत्रों में अन्तः सम्बन्धित विषयों के समन्वित वर्ग तैयार किये गये और तद्नुसार उपविभागों, सहायक उप-विभागों, सूक्ष्म-उप-विभागों आदि का निर्धारण हुआ। इस पद्धति के लिए भी दशमलव वर्गीकरण के अंकों और आधारों को स्वीकार किया गया है—

० सामान्य कृतियाँ
१ दर्शन, आत्म विद्या, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र
२ धर्म, धर्मज्ञान
३ सामाजिक शास्त्र, समाज शास्त्र, विधि, शासकीय शिक्षा
४ भाषा शास्त्र
५ शुद्ध विज्ञान
६ व्यावहारिक विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र
७ कलायें एवं मनोरंजन
८ साहित्य
९ भूगोल, जीवन चरित, इतिहास

इस तरह मुख्य वर्गों को तैयार करने में सार्वभौम दशमलव पद्धति ने मेलविल ड्यूवी का अनुसरण किया है, लेकिन ड्यूवी द्वारा स्वीकृत तीन अंकीय प्रारूप को इस पद्धति में छोड़ दिया गया है। जैसे—

७	कलायें एवं मनोरंजन
७३	चित्रकला
७३(०३)	भारतीय चित्रकला
७३(०३.४)	राजस्थानी चित्रकला

इस पद्धति में मुख्य वर्ग को विस्तार देने के लिए सहायक सूचियों और विभिन्न विभाजन विधियों को स्वीकार किया गया है। मूल प्रतीकांकों के रूप में अरबी संख्यायें स्वीकृत हैं और इसकी विस्तृत अनुक्रमणी का उद्देश्य इस पद्धति के प्रयोग को सुगम बनाना है। निश्चय ही दशमलव पद्धति को वैज्ञानिकता और नवीनता प्रदान करने के लिए इस सार्वभौम दशमलव वर्गीकरण पद्धति का विकास किया गया, लेकिन अपनी सूचियों को विराटता और उपवर्गों की जटिलता के कारण इसे अपेक्षित लोकप्रियता नहीं मिली। पुस्तकालय विज्ञानियों ने इस पद्धति की व्यापकता और अस्पष्टता की एक साथ चर्चा की है।

(५) **विषय वर्गीकरण पद्धति**—जेम्स ब्राउन ने अनेक प्रयोगों के माध्यम से पुस्तक वर्गीकरण की एक विषय केन्द्रित पद्धति का आविष्कार किया, जिसके अन्तर्गत एक विषय से सम्बन्धित सारी पाठ्य-सामग्रियों को एक स्थिर स्थान पर एकत्र करने का संकल्प स्वीकारा गया। १८९४ में उपने मित्र जान कुवीन के साथ मिलकर ब्राउन ने इस पद्धति का प्रारम्भिक रूप उपस्थित किया था, जिसका संशोधित व्यवस्थित रूप १८९७ में सामने आया। बाद में स्वयं ब्राउन ने १९०६, १९१४ और १९३९ में अपनी इस विषय वर्गीकरण पद्धति में लगातार संशोधन भी किये। ब्राउन के अनुसार पुस्तकालय की पाठ्य-सामग्री को पदार्थ एवं शक्ति, जीवन, मस्तिष्क और आलेख चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है और इन्हीं समूहों के अधीन ब्राउन ने पुस्तकालय सामग्री का अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार अधोलिखित मुख्य वर्गों में विषयवार विभाजन किया—

A	सामान्य
BCD	भौतिकशास्त्र
EF	जीव-विज्ञान
GH	मानव विज्ञान और चिकित्साशास्त्र
I	आर्थिक जीव-विज्ञान और गृह कलायें
JK	दर्शन एवं धर्म
L	समाजशास्त्र और राजनीति-विज्ञान
M	भाषा एवं साहित्य
N	साहित्यिक रूप
OW	इतिहास एवं भूगोल
X	जीवनी

मुख्य वर्गों की रूपरेखा को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक मुख्य वर्ग में अंकों का उपयोग कर उन्हें उपवर्गों और उपखण्डों में विभाजित किया गया है। ब्राउन ने अपनी वर्गीकरण पद्धति में जीवनी अंकों का आविष्कार किया है, जिनका उपयोग व्यक्तिगत

जीवन, तथा साहित्य, कविता और लेखकों के नाम को वर्णानुक्रम में व्यवस्थित करने के लिए किया जाता है। इस पद्धति में अंग्रेजी वर्ण माला के अक्षरों के साथ-साथ अरबी अंकों का भी उपयोग किया गया है। अपनी समूची विवेचना में ब्राउन ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उनके वर्गीकरण में Y और Z को क्यों छोड़ दिया गया है। इस वर्गीकरण पद्धति की पर्याप्त आलोचना हुई है और इसे वैज्ञानिक नहीं स्वीकारा गया है। इसका मुख्य कारण यही है कि एक ग्रन्थ, एक विषय, एक स्थान तथा एक प्रतीकांक की पद्धति के अन्तर्गत पुस्तकालय की व्यवस्था करने में ब्राउन की यह पद्धति असमर्थ सिद्ध हुई है।

(६) **ग्रन्थात्मक वर्गीकरण पद्धति**—हेनरी एब्लिन ब्लिस द्वारा प्रवर्तित ग्रन्थात्मक वर्गीकरण पद्धति को कई पुस्तकालय विज्ञानियों ने सबसे आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धति की संज्ञा दी है। डॉ० जो० डी० भार्गव ने स्वीकार किया है—इस पद्धति में विषयों का सूक्ष्म वर्गीकरण बिना विषयों की श्रृंखला को हानि पहुँचाये किया जा सकता है। वर्गीकरण की विकल्प व्यवस्था इस पद्धति की असाधारण विशेषता है। इसके द्वारा नवीन विषयों को स्थान प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती तथा अनेक विषयों को सम्बन्धित विषयों के साथ रखा जा सकता है।[१६] ग्रन्थात्मक वर्गीकरण पद्धति की पहली रूपरेखा १९१० में सामने आयी थी, लेकिन १९३५ में ही इस पद्धति का सम्पूर्ण रूप सामने आया। हेनरी ब्लिस ने एक से लेकर ९ तक के अंकों का प्रयोग कर बाह्य संख्यक वर्गों का निर्माण किया। इसके अनुसार पुस्तकालय के लिए एकत्र सम्पूर्ण सामग्री को अंग्रेजी वर्णानुक्रम के अनुसार कतिपय विशिष्ट अनुवर्गों में संयोजित किया जा सकता है। सभी विषयों को इस वर्गीकरण पद्धति में अंग्रेजी वर्णों के अनुरूप विभाजित किया गया है—

A दर्शन तथा सामान्य विज्ञान (गणित, तर्कशास्त्र, अन्तरिक्ष विज्ञान, सांख्यिकी)
B भौतिकी (व्यावहारिक और विशिष्ट भौतिकीय तकनीक)
C रसायन विज्ञान
D ज्योतिष, भूतत्व विज्ञान, भूगोल
E जीव विज्ञान
F वनस्पति विज्ञान
G प्राणिकी
H नृतत्व विज्ञान
I मनोविज्ञान
J शिक्षा
K सामाजिक शास्त्र (समाजशास्त्र और मानव जातिशास्त्र)
L इतिहास (सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक)

M यूरोप
N अमेरिका
O आस्ट्रेलिया, एशिया, अफ्रीका
P धर्म, ईश्वर-ज्ञान, नीतिशास्त्र
Q व्यावहारिक समाजशास्त्र एवं नीतिशास्त्र
R राजनीतिशास्त्र, दर्शन एवं नीतिशास्त्र
S न्यायशास्त्र एवं विधि
T अर्थशास्त्र
U कलाएँ (उपयोगी एवं औद्योगिक)
V ललित कलाएँ (मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद)
W भाषाशास्त्र (भारोपीय भाषाओं के अतिरिक्त)
X योरोपीय भाषाशास्त्र एवं साहित्य
Y अंग्रेजी एवं अन्य भाषा-साहित्य
Z ग्रन्थ-सूची एवं ग्रन्थालय

इन प्रतीक अक्षरों को अनुसूचियों के अनुरूप संयोजित करने के लिए पुस्तक वर्गीकरण की इस पद्धति में अधोलिखित नौ वर्गों का संयोजन किया जाता है—

१ सन्दर्भ ग्रन्थ
२ ग्रन्थ-सूची
३ विशिष्ट संग्रह
४ विभागीय संग्रह
५ शासन एवं संस्थागत अभिलेख
६ पत्र-पत्रिकाएँ
७ विविध
८ स्थानीय ऐतिहासिक अथवा संस्थागत संग्रह
९ प्राचीन ग्रन्थ अथवा राष्ट्रीय-ऐतिहासिक संग्रह

इस सामान्य उप-विभाजन के अनुरूप ग्रन्थ वर्गीकरण की यह पद्धति बहुत लोचदार बना दी गई है, लेकिन अनुक्रमणी सापेक्ष होते हुए भी ग्रन्थात्मक वर्गीकरण की यह पद्धति अधिक लोकप्रिय और उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकी है। इसका कारण यही है कि इसके द्वारा नवीन विषयों को स्थान प्राप्त करने में कठिनाई होती है और इसका उपयोग आलेखों के सारणीकरण में अधिक समीचीन हो सकता है। यही कारण है कि अमेरिका में भी केवल न्यूयार्क में कालेज पुस्तकालय में ही इस पद्धति का उपयोग किया जा रहा है।

पुस्तकालय वर्गीकरण की इन सारी प्रमुख श्रेणियों के परिपार्श्व से पुस्तकालय विज्ञान के किसी भी नये अध्येता के सामने यह विचारणीय संकट उत्पन्न होता है कि इन सारी पद्धतियों में से अन्ततः आदर्श पुस्तकालय के लिए किस पद्धति को स्वीकार किया जाय। निर्विवाद रूप से ड्यूवी द्वारा प्रतिपादित दशमलव वर्गीकरण पद्धति सबसे अधिक लोकप्रिय रही है, लेकिन इससे डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण को द्विबिन्दु वर्गीकरण पद्धति की वैज्ञानिकता और प्रासंगिकता समाप्त नहीं हो जाती। वास्तव में डॉ० रंगनाथन ने पुस्तकालयों के लिए पुस्तक वर्गीकरण विषयक अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन उपयोगिता और वैज्ञानिकता के कई मूलभूत सैद्धान्तिक और व्यावहारिक निष्कर्षों के आधार पर किया था, इसीलिए आने वाले दिनों में यदि डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित द्विबिन्दु वर्गीकरण का सिद्धान्त सर्वस्वीकृत एवं सर्वाधिक लोकप्रिय हो जाय तो इसमें तनिक भी आश्चर्य न होगा।

वर्गीकरण के प्रयोग

वर्गीकरण पुस्तकालयों में स्वीकृत एक ऐसी उपयोगी और वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी भी पुस्तकालय में आगत अनेक विषयी पुस्तकों और ज्ञान विस्तार की अन्य सामग्रियों को फलकों पर सुव्यवस्थित क्रम में रखना सम्भव हो पाता है। स्वभावतः पुस्तकालयों में वर्गीकरण का प्रयोग-पक्ष अत्यन्त तकनीकी और व्यावहारिक उद्देश्य से जुड़ा है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने वर्गीकरण की मूलभूत प्रक्रिया में पाँच ऐसे सूत्रों का समायोजन सर्वप्रमुख स्वीकारा है, जिनके अभाव में वर्गीकरण की सुव्यवस्था साकार नहीं हो सकती। पामर और वेल्स जैसे पाश्चात्य पुस्तकालय विज्ञानियों ने भी इन पाँच मूलभूत तत्वों को वर्गीकरण की प्रयोगवत्ता का मूलाधार माना है—

(१) व्यक्तित्व (Personality)
(२) पदार्थ (Matter)
(३) ऊर्जा (Energy)
(४) देश (Space)
(५) काल (Time)

संक्षेप में इन्हीं पाँच मूलभूत वर्गीकरण श्रेणियों को PMEST कहा जाता है। प्रत्येक विषय की पुस्तकों में एक या इससे अधिक उपवर्ग हो सकते हैं। किन्तु प्रत्येक पक्ष या उपवर्ग को इन पाँच मूलभूत श्रेणियों में से केवल एक श्रेणी की ही अभिव्यक्ति माना जा सकता है। डॉ० रंगनाथन ने स्पष्ट किया है कि इन पाँच श्रेणियों की धारणा के बीच व्यक्तित्व, पदार्थ और ऊर्जा का सबसे अधिक महत्व है। देश और काल की श्रेणियाँ उसी समय मूर्त होती हैं, जब किसी विशिष्ट विषय में देश और काल विद्यमान रहता है। निश्चय ही पंच श्रेणियों की इस धारणा ने वर्गीकरण की धारणा को एक वैज्ञानिक दिशा दी है और वर्गीकरण की प्रयोगवत्ता को वास्तविक विस्तार दिया है। सच तो यह है कि

वर्गीकरण की सम्पूर्ण प्रयोगशीलता एक मानचित्र के निर्माण जैसा है, जिसमें सभी संभावित विषयों को सुव्यवस्थित क्रम में विन्यस्त किया जाता है। पुस्तकालय में पुस्तकों का वर्गीकरण चाहे मेलविल ड्यूवी की दशमलव पद्धति के अनुरूप किया जाय अथवा डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित द्विविन्दु सिद्धान्त के अनुरूप किया जाय, पुस्तकें व्यक्तित्व, पदार्थ, ऊर्जा, देश और काल की मूलभूत श्रेणियों से जुड़कर ही व्यवस्थित हैं।

पुस्तक वर्गीकरण का सम्पूर्ण प्रयोग पक्ष पाठकीय सुविधा के समानान्तर पुस्तकालय के कर्मचारियों की सुविधा पर भी आधारित है। इसीलिए वर्गीकरण प्रक्रिया में पुस्तक के विषय, शीर्षक, मुख्य वर्ग, उपवर्ग और अन्तिम तौर पर सुनिश्चित वर्गसंख्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकों को वर्गीकृत करने के लिए संसार के विभिन्न पुस्तकालयों में विभिन्न पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, लेकिन यह सत्य है कि विभिन्न पद्धतियों के अन्तर्गत पुस्तकों को व्यवस्थित करने के लिए पुस्तकालय कतिपय स्थायी उपकरणों और प्रक्रियाओं का सहारा लेता है। विभिन्न विषयों के भेदोपभेद सहित वर्गीकरण को मूर्त्त करने में अंकन प्रणाली, क्रामक संख्या और अनुक्रमणी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसे कतिपय संसाधनों और प्रक्रियाओं के बिना पुस्तक वर्गीकरण सामने नहीं आ सकता।

अंकन के अभाव में ग्रन्थों का वर्गीकरण असम्भव जैसा है। किसी भी वर्ग अथवा उपवर्ग को इंगित करने में अंकन का इस्तेमाल उस कृत्रिम एवं प्रतीक भाषा के रूप में होता है, जिसके सहारे वर्गीकरण पद्धति में वर्गों का प्रतिनिधित्व सही व्यवस्था पाता है। इसीलिए पुस्तकालयों में स्वीकृत सभी किस्म की वर्गीकरण पद्धतियों के लिए अंकन की प्राथमिकता स्वीकारी गई है। अंकन का निर्माण अंकों से होता है और संक्षिप्तता, सरलता, बोधगम्यता जैसे गुणों के कारण अंकन वर्गीकरण को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। अंकन की ही तरह पुस्तकालय में उपलब्ध ज्ञान सामग्री का रूप विभाजन भी एक अनिवार्यता है। कुशल पुस्तकालय विज्ञानी विभिन्न विषयों की सामग्री को इतने कौशल से अलग-अलग रूप वर्गों में विभक्त करता है कि वर्गीकरण अधिकाधिक सरल हो सके।

वर्गीकरण की सरलता और सम्पूर्णता में अनुक्रमणी के योगदान से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। अनुक्रमणी के अन्तर्गत प्रत्येक पद के सामने उपलब्ध अंकन की सहायता से पाठक और अन्य उपयोगकर्त्ताओं को पुस्तकालय में असुविधा नहीं होती। अनुक्रमणी चाहे विशिष्ट हो अथवा सापेक्ष, यह अनिवार्यतः वर्गीकरण पद्धति का महत्वपूर्ण सहायक उपस्कर है।

वर्गीकरण की इस समूची प्रयोग-प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम यही होता है कि पुस्तकालय में उपलब्ध प्रत्येक पुस्तक को एक निजी व्यक्तिगत संख्या प्राप्त हो जाती है। एक पुस्तक के लिए एक व्यक्तिगत संख्या के सिद्धान्त से विचलित होने पर वर्गीकरण का सारा श्रम नष्ट हो जाता है और पुस्तकालय में अव्यवस्था का साम्राज्य हो जाता है। ग्रन्थों की इसी व्यक्तिगत संख्या को क्रामक संख्या (Call Number) कहा गया है।

क्रामक संख्या ही यह विशिष्ट पहचान है, जिसके सहारे हम ज्ञान सामग्री के महासागर में से किसी छोटी और पतली-सी पुस्तक को भी खोज निकालते हैं। कई पुस्तकालयों में ग्रंथ-संख्या और क्रामक संख्या के बीच कोई विभेद नहीं माना गया है, जबकि वास्तविकता तो यह है कि क्रामक संख्या मूलतः ग्रंथ विशेष की अपनी पहचान है, जबकि ग्रंथ-संख्या किसी पुस्तक की अलग-अलग प्रतियों अथवा समान आस्था वाले ग्रंथों की ओर किया गया इशारा है। निश्चय ही पुस्तकालय के अन्तर्गत वर्गीकरण के सिद्धान्त का प्रयोग पक्ष पुस्तकालय की वास्तविक व्यवस्था प्रदान करता है। ऐसे किसी पुस्तकालय की परिकल्पना नहीं की जा सकती, जिसमें सुनियोजित और वैज्ञानिक तौर पर ज्ञान सामग्री के संयोजन के बिना ही वर्गीकरण के व्यावहारिक प्रयोग ने पुस्तकालय और उसके उसके उपयोगकर्ताओं का काम आसान किया है, पुस्तकालय के लक्ष्य को सही विस्तार दिया है।

सन्दर्भ-संकेत

१. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तक वर्गीकरण कला, पृष्ठ १।

2. Margaret Mann : Intrcduction to cataloguing and the classification of books, p. 33.

   "Classification is the arranging of things according to likeness and unlikeness. It is the sorting and grouping of things but classification of books is a knowledge classification."

3. The librarian and book world, Vol. 26, Oct. 1936, p. 32.

   "Book classification is an arrangement of books by which the topics, subjects and sciences of which they treat associated together on the shelves in a more or less logical sequences of deminishing intimacy of purport or purpose."

4. W. Howard Philips : A primer of book classification, p. 21.

   "Classification means the printed schedules of the system by which books and entries in a catalogue may be arranged in a systemetic order."

5. Roger Meetham : Information retrival—the essential technology, p. 88.

   "Classification is a process of the mind by which things are arranged according to their degrees of unlikeness."

6. C. D. Needham : Classification, p. 109.

   "A classification scheme is simply defined as an orderly arrangement of terms or classes."

7. Auther Maltby (Ed.) : Classification in the 1970, p. 16.

"Classification on the shelves and in the catalogue presents its subjects on a line or row.

8. L. M. Harrod : Librarians glossary and reference service, p. 197.

"Classification = the arrangement of thing in logical order according to their likeness, specially the assignment of books to their proper places in the scheme of book classification."

9. W. C. B. Sayers : Manual of classification for librarian and bibliographers, p. 1.

"Classification means the arrangement of books on shelves or description of them in the manner which is most useful for those who read."

10. Krishna Kumar : Theory of classification, p. 4.

"Classification is thus a process, which brings together like documents and separates unlike ones."

११. डॉ० जी० डी० भार्गव : ग्रन्थालय वर्गीकरण, पृष्ठ ४४ ।

१२. उपरिवत् ।

१३. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तक वर्गीकरण कला, पृष्ठ २२ ।

१४. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय विज्ञान : पारिभाषिक शब्दावली, ६६ ।

१५. डॉ० जी० डी० भार्गव : ग्रन्थालय वर्गीकरण, पृष्ठ ११७ ।

१६. उपरिवत्, पृष्ठ १६० ।

□ □

अध्याय १७

पुस्तक सूचीकरण

परिभाषा

किसी भी पुस्तकालय में इतनी अधिक संख्या में पुस्तकों और अन्य ज्ञान-सामग्रियों का आगमन होता है कि उन्हें सुविधाजनक और वैज्ञानिक वर्गों में विभाजित करने के बावजूद उनकी अन्तिम प्रामाणिक सूची तैयार करना अपने आप में सबसे कठिन कार्य है।

पुस्तकालय एक विकासशील संस्था है, इस नाते पुस्तकालय के लिए तैयार की गई सूची कभी अन्तिम नहीं होती। इसके बावजूद पुस्तकालय में सूचीकरण की प्रक्रिया एक महत्त्वपूर्ण अनिवार्यता है, जिसके अभाव में हम किसी सुव्यवस्थित पुस्तकालय की परिकल्पना नहीं कर सकते। निर्विवाद तौर पर अच्छी सूची के बिना कोई पुस्तकालय सक्रिय नहीं हो सकता। इसीलिए पुस्तकालय विज्ञान में सूचीकरण का विशिष्ट स्थान है।

सूचीकरण एक ऐसी श्रमसाध्य प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से न केवल पुस्तकालय की कुल सम्पदा का परिबोध होता है, अपितु पाठकों और उपभोक्ताओं के सामने पुस्तकालय की उपादेयता का विस्तार होता है। पुस्तकालयों की स्थापना-काल से ही सूचियाँ बनती आ रही हैं और जैसे-जैसे मानवीय ज्ञान का विस्तार होता गया है, सूचीकरण की प्रक्रिया भी जटिलतर होती गई है। विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने इस जटिल प्रक्रिया को कई दृष्टियों से परिमार्जित करने की कोशिश की है—

सी० ए० कटर

सूची पुस्तकों की एक तालिका है, जो किसी सुनिश्चित योजना के अनुसार व्यवस्थित होती है।[1]

मारग्रेट एस० टेलर

सूची भी एक तालिका होती है, परन्तु इसका क्षेत्र केवल किसी संग्रह विशेष तक ही सीमित होता है।[2]

जेम्स ब्राउन

सूची एक व्याख्यात्मक तर्कपूर्ण ढंग से व्यवस्थित पुस्तकों तथा उनके विषय की परिगणना की कुंजी है।[3]

डी० एम० नोरेश

ग्रन्थालय-सूची किसी ग्रन्थालय विशेष अथवा संग्रह की पुस्तकों तथा अन्य साम-

ग्रियों की एक तालिका है, जिसकी व्यवस्था किसी मान्यता प्राप्त क्रमानुसार की गई होती है और जिसमें किसी निर्धारित रूप में ग्रन्थ सम्बन्धी विशिष्ट सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं।[४]

मेरी पिगौट

सूचीकरण एक विशिष्ट कला है, यद्यपि हर पुस्तकालय की एक विलक्षण व्यवस्था होती है।[५]

एल० एम० हैरोड

सूचीकरण सूची की प्रविष्टियों के निर्माण की प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत पुस्तकों को फलकों पर सजाने की प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है।[६]

मार्ग्रेट मैन

सूची, पुस्तकों की एक ऐसी तालिका है, जो एक सुनिश्चित योजना के अधीन व्यवस्थित की जाती है।[७]

एरिक जे० हंटर

सूची भी पुस्तकों एवं अन्य सामग्रियों की एक तालिका है, लेकिन इसकी एक भिन्न कोटि होती है। यह पुस्तकालय के भण्डार तक ही प्रतिबन्धित होती है।[८]

डॉ० एस० आर० रंगनाथन

सूची ग्रन्थालय की पाठ्य-सामग्रियों के विवरण का विधिवत् व्यवस्थित अभिलेख है।[९]

डॉ० शत्रुघ्नमणि त्रिपाठी

ग्रन्थालय प्रसूची किसी ग्रन्थालय विशेष अथवा किसी स्थानीय ग्रन्थालयों की पुस्तकों तथा अन्य पाठ्य-सामग्रियों की एक तालिका है, जिसमें पुस्तकों के संलेखों को किसी सुनिश्चित एवं सुनियोजित योजना के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है।[१०]

श्यामनाथ श्रीवास्तव, सुभाषचन्द्र वर्मा

सूचीकरण अथवा सूची-पत्र पुस्तक भण्डार की कुंजी है, जो पुस्तकालय में आने वाले प्रत्येक पाठक को यह ज्ञान कराती है कि किसी पुस्तकालय में किसी विशिष्ट लेखक की पुस्तक है अथवा नहीं।[११]

डॉ० प्रभुनारायण गौड़

पुस्तकालय सूची = किसी मानक अथवा निश्चित पद्धति और नियमों के अनुसार प्रस्तुत एवं व्यवस्थित की गई पुस्तकालय में संग्रहीत पुस्तकों अथवा पाठ्य-सामग्रियों की सूची।[१२]

इन परिभाषाओं के आलोक में पुस्तकालयों की सूची का एक सुनिश्चित चरित्र

सामने आता है। ये परिभाषाएँ बतलाती हैं कि पुस्तकालय-सूची एक तालिका है, जिसके लिए एक सुनिश्चित योजना और व्यवस्था की अपेक्षा की जाती है। कोई भी पुस्तकालय-सूची न तो योजनारहित हो सकती है और न व्यवस्था से टूटकर आकार ग्रहण कर सकती है। विभिन्न पुस्तकालय-विज्ञानियों द्वारा सूचीकरण को परिभाषित करने के क्रम में अधिकांशतया पुस्तकालय-सूची का ही मानकीकरण किया गया है, सूचीकरण की सुनिश्चित परिभाषा अधिकतर उपेक्षित रह गई है। इसका एक कारण तो यही है कि पुस्तकालय-सूची को प्रक्रिया मात्र समझकर पुस्तकालय-विज्ञानियों ने सूचीकरण को परिभाषित करना प्रासंगिक नहीं समझा। वास्तव में सूचीकरण में जितनी सावधानी और कल्पना की अपेक्षा होती है, उतने परिश्रम और यत्न की आवश्यकता पुस्तकालय विज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं। इ० ए० ब्रैट ने स्वीकार किया है कि एक अच्छी पुस्तकालय-सूची ही वह अकेली चीज है, जिसकी सबसे अधिक कीमत होती है।[१३] इसीलिए सूची-निर्माण की प्रक्रिया का विशिष्ट महत्व पुस्तकालय विज्ञान में है, जबकि इस विज्ञान के मनीषियों ने सूचीकरण को परिभाषित करने का यत्न बहुत कम किया है। डॉ० प्रभुनारायण गौड़ ने सूचीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है—सूचीकरण = सूची संकलित अथवा प्रस्तुत करने अथवा सूचियों को प्रस्तुति के क्रम में प्रविष्टियों के उल्लेख करने की प्रक्रिया[१४]। निश्चय ही यह परिभाषा भी सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है। उपलब्ध सूत्रों के आधार पर सूची को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—**सूची पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों एवं अन्य अध्ययन सामग्रियों की वह तालिका है, जिसे एक सुनिश्चित क्रम में विशिष्ट व्यवस्था के अधीन इस प्रकार तैयार किया जाता है कि उसमें परवर्ती प्रविष्टियों के समावेशन की गुंजाइश लगातार बनी रहे।** इस परिभाषा के आलोक में सूचीकरण को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है—**सूचीकरण पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तक तथा अन्य पाठ्य-सामग्रियों को व्यवस्थित, क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक तालिका तैयार करने की वह प्रक्रिया है, जिसमें परवर्ती प्रविष्टियों के स्वागत की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है।**

इन परिभाषाओं के माध्यम से सूची और सूचीकरण का यह वैशिष्ट्य ज्ञापित होता है कि पुस्तकालयों में आगत सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री को एक व्यवस्थित क्रम देने में सूचीकरण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण योगदान है और यह प्रक्रिया पुस्तकालय की सतत् विकासशीलता को निरन्तर प्रोत्साहित करती है।

आवश्यकता और उद्देश्य

पुस्तकालय में प्रवेश करते ही पाठक का परिचय सबसे पहले पुस्तकालय-सूची से ही होता है। इसीलिए सूचीकरण की आवश्यकता और उद्देश्य के अलग-अलग आयामों पर पुस्तकालय-विज्ञानियों ने दृष्टिपात किया है। ऐसी सूचियों का सीधा और सामान्य कार्य पाठकों को उनकी वांछित पुस्तकों को प्राप्त कराना है। इस क्रम में ग्रन्थालय-विज्ञान के पंच-सूत्रों के परिपालन में पुस्तक-सूची सहायक होती है और पुस्तकालय में

उपलब्ध पाठ्य-सामग्री को उसके पाठकों तक पहुँचाती है। वास्तव में ऐसे किसी पुस्तकालय की परिकल्पना करना आज एक दुष्कर कार्य बन गया है, जिसमें कोई सूची उपलब्ध न हो। सूची के सहारे ही पुस्तकालय अपने उपभोक्ताओं के सामने अपनी सम्पदा का दिग्दर्शन कराता है। सौ साल से भी अधिक वर्ष पहले सी० ए० कटर ने पुस्तकालय-सूची के अधोलिखित लक्ष्यों की ओर संकेत किया है—

(१) किसी व्यक्ति को किसी लेखक अथवा किसी आख्या अथवा किसी विषय की जानकारी होने पर उसे उक्त पुस्तक को प्राप्त कराना।

(२) पाठक के सामने पुस्तकालय की कुल सामग्री की जानकारी देना कि पुस्तकालय में विहित लेखक अथवा विषय अथवा कोटि की कौन-सी सामग्री है।

(३) किसी पुस्तक के संस्करण विशेष अथवा स्वरूप विशेष के चयन में सहायता करना।

निश्चय ही १८७६ से अब तक पुस्तकालय-सूची की आवश्यकता और उद्देश्य में बहुत बदलाव आया है। बड़ी तेजी के साथ पुस्तक-सूचियों ने अपने-आपको पुस्तकालय की समग्र परिकल्पना का मेरुदण्ड बना लिया है। पुस्तकालय की सम्पूर्ण भण्डारन क्षमता और उपलब्धियों की कुंजी सूची में ही विद्यमान है। इसके बिना किसी भी पाठक के लिए यह असम्भव है कि वह पुस्तकालय में अपनी पाठ्य-सामग्री की उपलब्धता के बारे में जान सके। यह सच है कि पुस्तकालय की सारी उपादेयता ही सूची की समर्थता पर निर्भर करती है। एक सही और व्यवस्थित सूची पुस्तकालय के बारे में अच्छी धारणाओं को प्रोत्साहित करती है, जबकि एक सामान्य और आश्रित सूची उपभोक्ताओं को असन्तुष्ट करती है अथवा पुस्तकालय की छवि बिगाड़ती है। इसीलिए कई पुस्तकालय-विज्ञानियों ने पुस्तक-सूची को पुस्तकालय और पाठकों के बीच संचार और संवाद का सर्वश्रेष्ठ माध्यम माना है। इसका कारण यही है कि पुस्तक-सूचियाँ ही पाठकों के सामने पुस्तकालय के सम्पूर्ण भण्डार के बारे में जानकारी देती हैं, पुस्तकालय का हृदय खोलकर रख देती हैं। पुस्तकालय-सूचियों को देखकर किसी भी पुस्तकालय के बनते-बिगड़ते इतिहास का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। कई पुस्तकालयों की सूचियाँ मुद्रित रूप में अब दस्तावेज बन गई हैं; क्योंकि उनका क्रमिक रूप उक्त पुस्तकालयों के इतिहास का परिचायक है। ब्रिटिश म्यूजियम, लाइब्रेरी आफ कांग्रेस, भारतीय राष्ट्रीय पुस्तकालय, इण्डिया हाउस जैसे पुस्तकालयों की सूचियों का महत्व केवल पाठकीय दृष्टि से ही नहीं, ऐतिहासिक दृष्टि से भी अभूतपूर्व है। कई स्तरों पर पुस्तकालय-सूचियों का उपयोग संदर्भ सामग्री के रूप में भी होता है, अतएव अनुसन्धान-कर्त्ताओं के लिए ऐसी सूचियों का महत्व सन्दर्भात्मक भी है। सूची और सूचीकरण के इतने आवश्यक वैशिष्ट्य का केन्द्रीय कारण यह है कि पुस्तकालय-सूची के कार्य एवं उद्देश्य में लगातार विस्तार होता गया है।

निर्विवाद तौर पर पुस्तकालय-सूची का मुख्य उद्देश्य अध्येताओं के सामने पुस्तकालय की पाठ्य-सामग्री को परोसना है। इस दृष्टि से यह पाठ्य-सामग्री प्राप्त करने की

एक तालिका है, जिसके माध्यम से पाठक अपनी अभीष्ट पाठ्य-सामग्री तक कम समय में पहुँचने में समर्थ होता है। पुस्तक-सूची का एक उद्देश्य यह भी है कि इनके माध्यम से पाठक और पुस्तकालय के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित होते हैं। सूचियों के सहारे पाठक को जितनी सुविधा मिलती है, उससे भी अधिक सुविधा स्वयं पुस्तकालय को प्राप्त होती है। पुस्तकालय में मौजूद सम्पूर्ण सामग्री की संख्या और उसकी लेखक अथवा विषय के अनुसार उपस्थिति का संकेतन सूची से ही मिलता है। स्वभावतः पुस्तकालय सूचीकरण का कार्य उपलब्ध पाठ्य-सामग्री को क्रमपूर्ण में विन्यस्त कर देना है, ताकि सम्पूर्ण संपदा का स्थान ज्ञात किया जा सके और उन्हें यथावसर आदान-प्रदान के लिए उपयोग में लाया जा सके। सूचीकरण का उद्देश्य यह भी है कि किसी लेखक के समस्त उपलब्ध संस्करणों के बारे में वह अपने पाठकों को जानकारी दे।

सूचीकरण की आवश्यकता और बहुमुखी उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही पुस्तकालय विज्ञानियों ने अंगीकार किया है कि सूचीकरण का कार्य बागों में फूलों और तितलियों के बीच घूमते हुए मनोरम दृश्यावली का अवलोकन करने जैसा सुखकर नहीं है, अपितु यह तो तलवार की धार पर चलने जैसा एक कष्टकर कार्य है। थोड़ी-सी असावधानी समूची सूची और पुस्तकालय की छवि को विनष्ट कर सकती है। इसीलिए सूचीकरण को एक ऐसी सावधान प्रक्रिया के रूप में प्रमुखता मिली है, जिसकी सहायता से पुस्तकालय और उसके उपभोक्ताओं के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है।

पुस्तकालय-सूची का स्वरूप

पुस्तकालय की कार्य प्रणाली में सूची के महत्त्व को पुस्तकालय-विज्ञानियों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इसका कारण यही है कि पुस्तकालय के इतिहास के प्रारम्भ से ही सूचीकरण का इतिहास भी प्रारम्भ हुआ। तब से अब तक पुस्तकालय-सूची के स्वरूप में कई परिवर्तन हुए हैं और उनके भौतिक स्वरूप में लगातार बदलाव आया है। जब पुस्तकें ताल-पत्रों, मिट्टी की शिलाओं, पत्थरों, जानवरों की खालों आदि पर लिखी जाती थीं, तब ऐसी पाठ्य-सामग्रियों के लिए उस युग में पुस्तकालय-सूचियाँ भी शिलाओं, खालों और भोज-पत्रों आदि पर तैयार होती थीं। आज पुस्तक-सूचियों का भौतिक स्वरूप से तात्पर्य सूची के उस बाह्य आधार से है, जिस रूप में सूचियाँ हमें दिखाई पड़ती हैं। पिछले दो सौ वर्षों में मुद्रण और लेखन के अप्रतिम विकास तथा पुस्तकालय संस्था के वैज्ञानिक उन्नयन ने पुस्तकालय-सूची के स्वरूप को तीन अन्तिम रूपों में प्रस्तुत किया है—

(१) पुस्तक के रूप में,

(२) कागज के टुकड़े के रूप में,

(३) पत्रक के रूप में।

इन तीनों ही सूची-स्वरूपों के अपने-अपने गुण और दोष हैं। वास्तव में किसी

भी श्रेष्ठ पुस्तक-सूची के आदर्श स्वरूप से यह अपेक्षा की जाती है कि वह आसानी से उपयोग में आने में समर्थ हो और उपयोग के दौरान शीघ्र विनष्ट न हो। आदर्श पुस्तक-सूची ऐसे स्वरूप में होनी चाहिये कि पाठक कम-से-कम असुविधा द्वारा उसका अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके और वह कम स्थान घेरकर अधिक हित साधन कर सके। निश्चित ही पुस्तक-सूची के आदर्श स्वरूप की इन कसौटियों पर उपलब्ध रूपों का विश्लेषण इनकी उपयोगिताओं और सीमाओं को ज्ञापित करता है।

पुस्तक रूप में उपलब्ध पुस्तकालय-सूचियाँ या तो मुद्रित पुस्तक के रूप में होती हैं अथवा लिखित पुस्तक के रूप में संगृहीत होती हैं। इन दोनों ही रूपों में सूची की लोचदार क्षमता सुनिश्चित नहीं रह पाती। इसका कारण यही है कि पुस्तक रूप में उपलब्ध-सूचियों में परवर्ती प्रविष्टियों के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती और फलस्वरूप ऐसी सूचियाँ निरन्तर अप्रमाणित होती रहती हैं। सामान्यतया पुस्तकालयों के लिए यह सम्भव नहीं होता कि पुस्तक-सूचियों के नये-नये संस्करण हर पखवारा या हर महीने निकाले जाँय। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक रूप में उपलब्ध सूची सहज ग्राह्य और आवागमन की सुविधा से सम्पन्न होती है। यदि पुस्तकालय में ऐसी पुस्तक-सूची की अनेकानेक प्रतियाँ हैं तो एक साथ कई उपभोक्ता सूची का उपयोग कर पाते हैं। लेकिन ऐसी सूचियों को प्रस्तुत करना आर्थिक दृष्टि से सुगम नहीं है। अधिकांश पुस्तकालयों में जहाँ ऐसी पुस्तक-सूचियाँ उपलब्ध हैं, सूची के पन्ने छिन्न-भिन्न पाये जाते हैं। इसीलिए पुस्तकाकार में लिखित, टंकित अथवा मुद्रित सूचियाँ अब अप्रासंगिक हो गई हैं।

पुस्तकालय-सूची का दूसरा स्वरूप कागज के टुकड़ों के रूप में दिखाई पड़ता है। ऐसी सूचियों के निर्माण में कागज का उपयोग किया जाता है, जिनका आकार चार इंच × सात इंच का होता है। ऐसे टुकड़ों पर पुस्तक सम्बन्धी विवरण लिखकर पाँच या छः सौ की संख्या में एक साथ बाँध दिया जाता है। निश्चय ही पुस्तकालय-सूची का यह स्वरूप बहुत सस्ता होता है और इसकी कई प्रतियाँ भी तैयार की जा सकती हैं। ऐसी पुस्तक-सूचियों का उपयोग सुविधाजनक है और इन्हें आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाया जा सकता है। लेकिन ऐसी पुस्तक-सूचियों की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जिल्दसाज द्वारा एक बार बाँध देने के बाद इसमें किसी नई प्रविष्टि का समावेश असम्भव होता है। ऐसी सूचियाँ बहुत टिकाऊ नहीं होतीं; क्योंकि साधारण कागज के पतले टुकड़ों से इनका निर्माण होता है। ऐसी सूचियों का उपयोग करने में भी पाठकों को असुविधा होती है; क्योंकि इन्हें आसानी से खोला और पलटा नहीं जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी में पत्रक-सूची ने सर्वाधिक लोकप्रियता अर्जित की है। आधुनिक पुस्तकालय में अब सूचीकरण की पत्रक-पद्धति ही अपनाई गई है, जिसके अनुसार पुस्तकालय में उपलब्ध सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री की हर प्रविष्टि को अलग-अलग पत्रक पर अंकित किया जाता है। ऐसे सूची-पत्रक नीचे की ओर गोल छिद्रित होते हैं। पुस्तकालयों के लिए ऐसे पत्रकों के उपयोगार्थ पत्रक-पेटिका की अपेक्षा की जाती है, जिसमें अलग-अलग

मंजूषाओं में मौजूद धातु शलाकाएँ पत्रकों को व्यवस्थित रूप में रखती हैं। यह शलाका न केवल पत्रकों को स्थिर रखती है, अपितु उन्हें मंजूषा में छिटकने से भी रोकती है। ऐसे पत्रकों का आकार साढ़े सात से साढ़े बारह सेंटीमीटर के बीच स्वीकारा गया है। कुछ पुस्तकालयों में बड़े आकार के पत्रक प्रयोग में आते हैं, लेकिन इतना तय है कि पुस्तकालय में उपलब्ध सारे पत्रकों में आकार की एकरूपता होनी चाहिये। पुस्तकालय-सूची का यह पत्रक-स्वरूप सर्वाधिक वैज्ञानिक और उपयोगसुकर समझा गया है। इसका कारण यह है कि सूची-पत्रक सबसे अधिक लोचदार, उपयोगसक्षम, मजबूत और दीर्घ-सेवी होते हैं। पुस्तकालय में आने वाली हर नई प्रविष्टि को नये-नये पत्रकों में व्यवस्थित किया जा सकता है। पत्रक अलग-अलग मंजूषाओं में एक साथ कई पाठकों के उपयोग में आते हैं। इनके शीघ्र विनष्ट होने की सम्भावना नहीं होती, इसीलिए ये अधिक टिकाऊ होते हैं। निश्चय ही पुस्तकालय-सूची के पत्रक स्वरूप की भी अपनी सीमाएँ हैं। इन्हें आसानी से इधर-उधर नहीं किया जा सकता और इनकी संख्या विपुल होती है। यह भी सच है कि एक मंजूषा उपलब्ध पत्रकों का उपयोग एक समय में एक ही पाठक कर सकता है और सूची-निर्माण का यह स्वरूप मँहगा होता है। इसके बावजूद पुस्तकालय-सूची की उपादेयता और लगातार फैलती जा रही सोद्देश्यता को मूर्त करने में पुस्तकालय-सूची का पत्रक ही सबसे अधिक कारगर है।

निश्चय ही सूचीकरण की प्राथमिक समस्या पुस्तकालय-सूची के भौतिक स्वरूप से जुड़ी हुई है। पुस्तकालय के इतिहास में सूचियों के लिए सबसे अधिक लोचदार, सुगम, टिकाऊ और उपयोगी भौतिक आधार की तलाश होती रही है। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस जैसे महाकाय पुस्तकालयों में पुस्तक रूप में सूचियों का निर्माण और उपयोग सम्भव है, जबकि साधनहीन पुस्तकालयों में कागज की छोटी-छोटी चिटों पर तैयार की गई पुस्तक-सूचियाँ ही चलती हैं। आज के अधिकांश पुस्तकालयों में सूचीकरण की पत्रक प्रणाली ने अन्य सारे सूची स्वरूपों को अपदस्थ कर दिया है। पुस्तकालय की बढ़ती हुई कार्य-क्षमताओं ने जितनी विपुल संख्या में ज्ञान-सामग्रियों को विस्तार दिया है, उतनी ही तीव्रता के साथ पुस्तकालय में सूचीकरण के लिए पत्रक स्वरूप ने अपना स्थान सुरक्षित किया है। आने वाले दिनों में जब कम्प्यूटर और अन्य नव्य वैज्ञानिक संसाधनों का बाहुल्य पुस्तकालयों में हो जायेगा, तब सम्भव है कि सूचीकरण का पत्रक स्वरूप अप्रासंगिक हो जाय, लेकिन आज के पुस्तकालयों में तो पत्रकों के रूप में ही सूची की पहचान है।

पुस्तकालय-सूची के प्रभेद

न केवल पुस्तकालय-सूची के बाह्य आकार के कई रूप विद्यमान हैं, अपितु सूची के आन्तरिक स्वरूप के आधार पर भी कई प्रभेद होते हैं। पुस्तकालय में सूचियों का निर्माण, साधारण, मिश्रित और जटिल रूपों में किया जाता है। क्रम-व्यवस्था की दृष्टि से पुस्तकालय-सूचियाँ तीन कोटियों में निर्धारित की गई हैं—

(१) अनुर्वणिक क्रमानुसार सूची

(२) अनुवर्ग क्रमानुसार सूची

(३) अनुवर्ण वर्गिक सूची।

ऐसी तमाम पुस्तकालय-सूचियों को अनुर्वणिक अथवा वर्णानुक्रम कहा गया है जिनमें प्रविष्टियों को वर्णानुक्रम से व्यवस्थित किया जाता है। अनुवर्ग क्रमानुसार अथवा वर्गीकृत सूचियों में प्रविष्टियों की प्रस्तुति पुस्तक वर्गीकरण-प्रणाली के अनुरूप होती है। इस क्रम की तीसरी सूची ऐसी होती है जिसमें पहले विषय को वर्गों में विभाजित करके उनके शीर्षकों का वर्णानुक्रम से व्यवस्थापन होता है और फिर उसी प्रकार उन विभाजित उप-विभागों के शीर्षकों का अलग अक्षरानुक्रम से विन्यास होता है। अधिकांश पुस्तकालयों के लिए आज वर्णानुक्रम अथवा अनुर्वणिक क्रमानुसार सूचियों की पद्धति को ही स्वीकार किया गया है; क्योंकि इस प्रणाली के अनुसार विभिन्न पुस्तक-वर्गों को सुविधाजनक ढंग से उपस्थित किया जा सकता है। वास्तविकता तो यह है कि पुस्तकालय की कुल सम्पदा की अक्षरानुक्रम से अधोलिखित कोटियों में निर्मित किया जा सकता है—

(१) **लेखक-सूची**—लेखकों के नाम के अक्षरानुक्रम से तैयार की गयी पुस्तक-तालिका पुस्तकालय के पाठकों के सामने लेखक विशेष की तमाम कृतियों के बारे में जानकारी उपस्थित करती है। इससे उपभोक्ता को यह जानकारी मिल जाती है कि किसी लेखक विशेष की कौन-सी कृति उपलब्ध अथवा अनुपलब्ध है। जिन पाठकों को पुस्तक की आख्या अच्छी तरह ज्ञात नहीं होती, वे भी लेखक-सूची के आधार पर अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं। इस सूची की कुछ दुर्बलताओं की ओर इशारा किया गया है क्योंकि ऐसी सूचियों में लेखक के ज्ञात न होने पर पुस्तक को निश्चित कर पाना कठिन हो जाता है और अनेक अवसरों पर पाठकों को निर्देश की आवश्यकता पड़ती है। इसके बावजूद पुस्तकालयों में सूचीकरण के जुड़े लोग अनिवार्यतः लेखक-सूची तैयार करते हैं।

(२) **नाम-सूची**—ऐसी सूचियों का स्वरूप लेखक-सूची जैसा ही है, जब एक ही नाम के कई लेखक स्थान, काल और दृष्टि के अनुसार नयेपन का बोध कराने लगते हैं, तब सामान्य लेखक-सूची की अपेक्षा नाम-सूची का उपयोग अधिक सार्थक हो जाता है। जैसे कांग्रेस पुस्तकालय की एक सूची नाम पर केन्द्रित है, ताकि लेखक-सूची को सहायता दी जा सके। नाम-सूची को इसी कारण लेखक-सूची का ही एक प्रभाग कहा जाता है।

(३) **आख्या-सूची**—सभी पुस्तकालयों में उपलब्ध पाठ्य-सामग्री की मूल आख्या के अनुरूप पुस्तकालय सूची तैयार करने का यत्न किया जाता है। इस प्रकार की सूचियों में पुस्तक की आख्या का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया है। यदि पाठक किसी पुस्तक के लेखक के नाम से अनभिज्ञ है और उसे सिर्फ पुस्तक की आख्या ही याद है तो ऐसी आख्या सूचियाँ उसके लिए उपादेय होती हैं। आख्या के अनुरूप पुस्तक की पहचान कराने में यह आख्या-सूची सहज समर्थ होती है।

(४) **विषय-सूची**—लेखक, उसके नाम और पुस्तक को आख्या के अनुरूप पाठ्य-सामग्री की तलाश करने में कभी-कभी पाठक असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें केवल वांछित विषय ही याद रहते हैं। ऐसे ही पाठकों के उपयोगार्थ विषय-सूचियाँ तैयार की जाती हैं। अमेरिका के सभी सार्वजनिक पुस्तकालयों में आकारादि क्रम से व्यवस्थित विषय-सूची का सफल उपयोग किया जा रहा है, क्योंकि वहाँ के जागरूक पाठक अपनी वांछित पाठ्य-सामग्री विषय के अनुसार तलाशते हैं। भारत जैसे पिछड़े हुये देश में अभी भी विषय के अनुसार पाठ्य-सामग्री की तलाश करने वाले लोगों को संख्या बहुत कम है, इसलिए ऐसी विषय-सूची भारत के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं है। ऐसी सूचियों का इतना लाभ तो अवश्य है कि पाठक किसी विषय पर उपलब्ध सारी सामग्री की जानकारी एक साथ करता है और विषय-केन्द्रित अनुसंधान को इससे प्रोत्साहन मिलता है, लेकिन ऐसी विषय-सूचियों का सम्यक् उपयोग बहुत ही प्रबुद्ध पाठकों के लिए ही सम्भव है।

(५) **सर्वानुवर्णी-सूची**—ऐसी पुस्तकालय सूचियों में आख्या, लेखक, विषय माला आदि सभी निर्देशों को वर्णानुक्रम में एक साथ आबद्ध कर दिया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में ऐसी सूचियों का निर्माण आरम्भ हुआ था, जिनमें संलेखों और निर्देशों को शब्दकोश की व्यवस्था के अनुरूप स्वरूप दिया जाता है। इस सूची को पाठकीय प्रयोग की दृष्टि से सरल और सुविधाजनक कहा गया है। ऐसी सूचियों की कुछ सीमायें भी हैं, क्योंकि यह एक बिखरी हुई और भ्रमोत्पादक सूची होती है।

पुस्तकालय सूची के इन सभी प्रभेदों की अपनी सीमायें एवं विशेषतायें हैं। इसीलिए अलग-अलग पुस्तकालयों में सूची शैलियों को स्वीकार किया गया है। वस्तुतः यह पूरी तरह पुस्तकालय और सूचीकरण कार्य में संलग्न लोगों पर निर्भर करता है कि वे अपने संस्थान के लिए किस सूची-प्रभेद को स्वीकार करें। सूचीकरण की आधुनिक प्रवृत्तियों के विकास के साथ सूचियों के नव्यतर प्रभेदों के प्रादुर्भाव की सम्भावना बनी हुई है, इसीलिए यह अस्वाभाविक नहीं है कि आने वाले दिनों में आख्या, लेखक या विषय पर-केन्द्रित पुस्तकालय सूचियों के समानान्तर कोई नई सूची-प्रणाली उभर कर सामने आ जाये।

सूचीकरण-प्रक्रिया

पुस्तकालय-सूची का भौतिक और आन्तरिक स्वरूप चाहे जैसा हो, सूचीकरण-प्रक्रिया अपने आपमें एक कठिन और समय तथा श्रमसाध्य कार्य है। पुस्तकालय-सूची को बनाने में सूचीकार को प्रविष्टियों के विभिन्न स्तरों से जूझना पड़ता है। सूची चाहे लेखक के नाम के अनुरूप तैयार की जाय अथवा पुस्तकों की आख्या के अनुरूप, वह विषय केन्द्रित हो अथवा सर्वानुवर्णी, इसमें सन्देह नहीं कि प्रविष्टियों के सावधान प्रस्तावन में ही सूचीकरण की सारी प्रक्रिया समाहित है। यही कारण है कि किसी भी

पुस्तकालय का सूचीकरण प्रभाग निरन्तर आकलन और संचिकाकरण की समस्याओं से जूझता रहता है। आकलन से तात्पर्य पुस्तकालय की सम्पदा के बारे में प्रामाणिक जानकारी को संप्राप्ति है, जिसके आधार पर सूची-पत्रक तैयार किया जाता है। आकलन कार्य में किसी अन्य स्रोत की अपेक्षा स्वयं पुस्तक अथवा पाठ्य-सामग्री का सहारा लेना सर्वाधिक समोचीन है तभी आकलित जानकारी प्रामाणिक और वैज्ञानिक हो सकती है। सूची के आकलन कार्य के ठीक बाद सूचो-पत्रक की निर्माण-प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। सूची-पत्रक इतना सम्पूर्ण और प्रामाणिक होना चाहिये कि उसके आधार पर पुस्तकालय के उपभोक्ताओं के सामने विहित पाठ्य-सामग्री पूरी तरह साकार हो जाये। पुस्तकालय विज्ञानियों ने आदर्श सूची-पत्रक में क्रमशः अधोलिखित तथ्यों और सूचनाओं की अपेक्षा की है—

(१) क्रामक संख्या

(२) लेखक

(३) मुख्य संलेख शीर्षक (आख्या)

(४) संस्करण

(५) प्रकाशन

(६) तिथि

(७) पृष्ठ-संख्या

(८) माला-संकेत

(९) अधिसूचनायें

इन सूचनाओं के साथ आदर्श सूचीपत्रक का निर्माण सूचीकरण प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि सुव्यवस्थित पुस्तकालय-सूची सूचो-पत्रक के माध्यम से ही साकार होती है। आदर्श सूची-पत्रक के निर्माण में अनुर्वाणिक और अनुवर्ग वर्णित सूचियों में अन्तर होता है, लेकिन इतना तय है कि सूची-पत्रक का मानक रूप पुस्तकालय की विहित पाठ्य-सामग्री के बारे में सम्पूर्ण एवं प्रामाणिक जानकारी देता है। इस कसौटी पर आदर्श सूची-पत्रक का प्रारूप इस प्रकार होना चाहिये—

		शर्मा, हरिवंशलाल ( ), सम्पादक
		सूरदास. संस्करण चतुर्थ.
		८६१.४-६५ सूर एन ८३
	२६६४	O

सूची-पत्रक में विराम चिह्नों का उपयोग कुल संलेख के विभिन्न भागों को अलग करने के लिए किया जाता है। सूची-पत्रक का निर्माण निर्विवाद तौर पर सूचीकरण प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सूचीकार प्रविष्टियों में लेखकों और शीर्षकों का समावेशन किस प्रकार करता है। इस सावधानी के आधार पर ही सूचीकरण की प्रामाणिकता और उपयोगिता आधारित होती है। कई पुस्तकालयों में लेखकों और उनकी कृतियों का सूची-पत्रक में समावेशन सहज नहीं होता, क्योंकि कई पुस्तकें एक से अधिक लेखकों द्वारा लिखी गई होती हैं और कई पुस्तकें तो किसी संस्था के द्वारा ही प्रस्तुत की जाती हैं। यदि पुस्तक का लेखक एक ही व्यक्ति है, तो ऐसी पुस्तक का संलेख सूची-पत्रक के लिए इस प्रकार तैयार होगा—

	८९१.	४-३ एन ८३
		सिंह (शंकर दयाल) ( )
		पास से देखने का सुख.
	६७६१	O

जब किसी पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर एक से अधिक लेखकों के नाम मुद्रित होते हैं, तब सूचीकार के सामने यह समस्या उत्पन्न होती है कि दोनों में से किसे प्रधान मानकर मुख्य संलेख प्रस्तुत किया जाय। इस समस्या के समाधान का एक सरल मार्ग यह है कि पहले सूचित व्यक्ति-नाम को प्रधान मानकर मुख्य संलेख एवं सूची-पत्रक तैयार हो, जैसे—

८६१.४-६४/६५ सूर	एन ४६
	पारिख (द्वारिकादास) ( ) और सिंह (प्रभुदयाल) ( )
	सूर निर्णय.
७८५१	O

सम्पादित, संकलित और शोधात्मक कृतियों के पत्रक भी इसी बानगी के अनुरूप तैयार किए जा सकते हैं, लेकिन जब किसी अन्य भाषा की मूल कृति का दूसरी भाषा में अनुवाद प्रकाशित होता है, तब ऐसी अनूदित कृतियों का संलेख तैयार करने में सूचीकार से अतिरिक्त सावधानी की अपेक्षा की जाती है। ऐसी अनूदित कृतियों के संलेख की मुख्य प्रविष्टि मूल लेखक के नाम की होती है और तत्पश्चात् यथाक्रम अनुवादक का नाम दिया जाता है। ऐसे सूची-पत्रक का उदाहरण है—

	शंखधर,	जगत ( ), अनुवादक
		चोट्टि मुण्डा और उसका तीर
		८९१.४-३ एन ८१
	५८७१	O

सूचीकरण के क्रम में सूचीकार से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह लेखक के द्वारा प्रयुक्त नामों की अनेकरूपता में संलेख निर्माण के लिए सही नाम को स्वीकार करेगा। कई बार नामों की अपूर्णता, छद्मनाम के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में सजग सूचीकार से अपेक्षा की जाती है कि वह सतर्कतापूर्वक नामों की पड़ताल करेगा और तदनुरूप मुख्य संलेख तैयार करेगा। लेखकीय नामों की ही तरह पुस्तक आख्याओं के प्रस्तुतीकरण में भी कभी-कभी संकट उत्पन्न हो जाता है। विशेषतः जब सूचीकरण आख्या केन्द्रित हो अथवा सर्वानुवर्णी रूप में तैयार की जाय, तब यह समस्या अधिक सामने आती है। ऐसे सूची-पत्रकों के निर्माण में भी ठीक उसी प्रकार की सावधानी की अपेक्षा की जाती है, जैसी सतर्कता विषय केन्द्रित सूची-पत्रक अथवा आख्या धारित सूची-पत्रक के निर्माण में दिखाई जाती है। इन सारी सावधानियों और सतर्कताओं के कारण ही सूचीकरण प्रक्रिया अपने सही रूप में साकार होती है। वास्तव में सूची का वास्तविक लक्ष्य पाठकों की विषय, पुस्तक और लेखक सम्बन्धी जिज्ञासा को शान्त करना है और इस लक्ष्य की पूर्ति में सूची की सफलता सबसे अधिक सहायक होती है। सूचीकरण प्रक्रिया जितनी कठिन और जटिल है, उतना ही महत्वपूर्ण है सूची की पूर्णता और प्रामाणिकता। दोषरहित प्रामाणिक सूची ही पुस्तकालय की उपयोगिता और सूचीकर की सफलता का मूलाधार है।

सूचीकरण के सिद्धान्त

पुस्तकालय सूचियों के निर्माण के प्रारम्भ काल से ही सूचीकरण के लिए नियमावलियों की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। यही कारण है कि समय के साथ

सूचीकरण के सिद्धान्त में भी बदलाव आता गया। सत्तहवीं शताब्दी तक सूचीकरण के जो सिद्धान्त स्वीकृत थे, उन्हें उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में यूरोप में पहली बार एक सुसंगठित आकार दिया गया। १८४१ में ऐन्टोनी पनिजी ने ब्रिटिश म्यूजियम कोड के ८१ नियमों का निर्माण किया, जिसमें कालान्तर में कई संशोधन होते गये। डी० एम० नोरेश ने स्वीकार किया है कि परवर्ती काल में निर्मित सूचीकरण के तमाम नियमावलियों के मूल में केवल लेखकानुसार प्रविष्टि का प्रावधान है और इससे समष्टि लेखक की धारणा को मान्यता दी गई है। ब्रिटिश म्यूजियम कोड की अपर्याप्तता देखते हुये बाद में चार्ल्स जीवट कोड, एन्ड्रीय केस्टाडोरा कोड जैसे सिद्धान्तों की प्रस्तावना की गई। जेम्स कटर ने १८७६ में ब्रिटिश म्यूजियम कोड का नवीन संस्करण रूल्स फार ए डिक्शनरी कॉटलॉग (आ० डी० सी०) के रूप में किया। कटर की नियमावली में सूचीकारों की सुविधा पर अधिक ध्यान दिया गया, लेकिन यह नियमावली भी त्रुटिहीन नहीं थी। विभिन्न परवर्ती संशोधनों और सिद्धान्तों से गुजरती हुई सूचीकरण नियमावली १९४९ में अमेरिकन लाइब्रेरी एशोसिएशन रूल्स के रूप में व्यवस्थित हुई, जिसमें सूचीकरण को एक वैज्ञानिक रूप देने का यत्न किया गया। १९६७ में ऐंग्लो अमेरिकन कंटलगिंग रूल्स (ए० ए० सी० आर०) इसी सिद्धान्त के संशोधित विकास के रूप में सामने आया। अमेरिकी और ब्रिटिश पुस्तकालयों में सूचीकरण के लिए इसी नियमावली को अधिकांशतया स्वीकार किया गया। इसके पूर्व १९६१ में इन्टरनेशनल कांफ्रेंस आन कैटलगिंग प्रिंसिपुल्स (आई० सी० पी०) के अनुसार सूचीकरण के अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त में कई परिवर्तन किये गये। समूचे संसार में सूचीकरण के लिए प्रस्तावित नियमावलियों के बीच डॉ० एस० आर० रंगनाथन द्वारा १९३४ में क्लासीफाइड कैटलॉग कोड (सी० सी० सी०) एक महत्वपूर्ण अवदान है। यह नियमावली उन आदर्श मूल सिद्धान्तों और सूचीकरण के उपसूत्रों पर आधारित है, जिसमें पुस्तकालय की भाषा, पुस्तकों की भाषा और सूचीकार की असुविधाओं पर एक साथ ध्यान दिया गया है। भारत जैसे विशाल देश में ग्रन्थों और लेखकों की आख्या के आधार पर सूचियाँ तैयार करना जितना कठिन कार्य है, डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रस्तावित सूची-नियमावली सी० सी० सी० उसकी अधिकांश समस्याओं का समाधान करतो है।

सुनिश्चित तौर पर सूचीकरण एक विशिष्ट प्रविधि है, जो पुस्तकालय के हितार्थ कतिपय आदर्शमूलक सिद्धान्तों को लेकर सम्पन्न होती है। सूचीकरण की सैद्धान्तिक आवश्यकता यह है कि वैचारिक एकता के साथ संलेखों और प्रविष्टियों का चुनाव किया जाय। पक्षपातरहित और एकरूपता पर आधारित आदर्श सूचीकरण ऐसा होना चाहिये कि वह एक ओर पुस्तकालय के लिए मितव्ययी साबित हो तो दूसरी ओर समयानुसार परिवर्तन के लिए सतत् लोचदार हो। इस आदर्श सिद्धान्त के आधार पर ही सूची, उसमें उपलब्ध संलेखों, सूची-पत्रक और पुस्तकालय की तमाम प्रविष्टियों का वास्तविक और त्रुटिहीन उपस्थापन सम्भव हो सकता है। सूचीकरण की सफलता और

वैज्ञानिकता के मूल में सूचीकरण प्रक्रिया के लिए अपनायी गई आदर्श योजना है। सूचीकरण की प्रक्रिया इसीलिए नियमों और आदर्शों से विरत नहीं हो सकती।

सन्दर्भ-संकेत

१. डॉ० एस० एन० त्रिपाठी : आधुनिक प्रसूचीकरण : सिद्धान्त एवं प्रयोग, पृष्ठ ५ पर उद्धृत।

"A catalogue is a list of books which are arranged on some definite plan."

२. उपरिवत्, पृष्ठ ५ पर उद्धृत।

"A catalogue is also a list but its scope is limited to a particular collection."

३. उपरिवत्, पृष्ठ ५ पर उद्धृत।

"A catalogue is an explanatory logically arranged inventory and key to the books."

४. उपरिवत्, पृष्ठ ६ पर उद्धृत।

"A catalogue is a list of books and other materials in a particular literary or collection, arranged in a recognized order and containing specified items of bibliographical information presented in a given form.

5. P. N. Sewell (Edited) : Five year's work in librarianship, p. 225.

Cataloguing is a craft, though each library is a unique organism.

6. L. M. Harrod : The librarians glossary and reference book, p. 170.

Cataloguing is strictly the process of moving ent rely for a catalogue, it may also cover all the processes involved in preparing books for the shelves.

7. Margret Mann : Introduction to cataloguing and the classification of books, p. 114.

"A list of books which is arranged according to some definite plan."

8. Eric J. Hunter and K. G. B. Bakewell : Cataloguing, p. 1.

"A catalogue is also a list of books and or other materials but with a different kind of limitation, it is restricted to the stock of a library.

९. डॉ० शत्रुघ्नमणि त्रिपाठी : आधुनिक प्रसूचीकरण : सिद्धान्त एवं प्रयोग, पृष्ठ ७ पर उद्धृत ।

"The catalogue is methodically arranged record of information about its bibliographical resources.

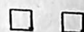
१०. डॉ० शत्रुघ्नमणि त्रिपाठी : आधुनिक प्रसूचीकरण : सिद्धान्त एवं प्रयोग, पृष्ठ ७ ।

११. श्यामनाथ श्रीवास्तव, सुभाषचन्द्र वर्मा : पुस्तकालय संगठन एवं संचालन, पृष्ठ १०५ ।

१२. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली, पृष्ठ ५५ ।

13. E. A. Brett : Cataloguing, p. 43.

१४. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली, पृष्ठ ५६ ।



अध्याय १८

ग्रन्थ-सूची

परिभाषा

मूल अंग्रेजी शब्द Bibliography के पर्याय के रूप में हिन्दी में सन्दर्भिका, वांग्मय सूची, ग्रन्थ-विज्ञान, ग्रन्थपुटी, ग्रन्थ-सूची जैसे कई शब्द प्रचलित हैं। इन शब्दों की प्रासंगिकता के पक्ष-विपक्ष में तर्क दिये गये हैं, लेकिन पर्यायों के इस मेले में ग्रन्थ-सूची से बेहतर पर्याय नहीं नजर आता। ग्रन्थ-विज्ञान तो एक भ्रामक पद है, क्योंकि इसका प्रयोग कई लोगों ने पुस्तकालय विज्ञान के पर्याय स्वरूप भी किया है। सन्दर्भिका को इसलिए समीचीन नहीं माना जा सकता क्योंकि इससे किसी रचना अथवा विषय विशेष के सन्दर्भ का ही संकेत मिलता है, जबकि ग्रन्थ-सूची केवल सन्दर्भ का काम नहीं करती। वांग्मय सूची से यह भ्रम उत्पन्न होता है कि जैसे यह केवल रचनात्मक साहित्य की विवरणिका हो, जबकि ग्रन्थ-सूचियों के रूप में साहित्येतर एवं नवीनतम तकनीकी विषयों के ग्रन्थों की भी परिक्रमा होती है। इसे पुस्तकों का लेखा-जोखा और मामूली पुस्तक-सूची के रूप में ज्ञापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज की ग्रन्थ-सूचियों ने एक वृहत्तर लक्ष्य का स्पर्श किया है। इसीलिए मूल ग्रीक भाषा के Biblion तथा grapheen दो शब्दों के योग से बने Bibliography के पर्याय स्वरूप हिन्दी में ग्रन्थ-सूची शब्द को स्वीकार कर लेना सर्वाधिक वैज्ञानिक है।

ग्रन्थ-सूची के प्रारम्भिक निर्माण काल से ही इसके स्वरूप को परिभाषित करने की अनेक कोशिशें हुई हैं। मूल ग्रीक भाषा में इसका अर्थ पुस्तक लिखना था, लेकिन समय के साथ इस धारणा में परिवर्तन होता गया और १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ग्रन्थ-सूची का स्वरूप एक ऐसे शास्त्र के रूप में उभरा, जो तमाम पुस्तकीय उत्पादन के साथ जुड़ा हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थ-सूचियाँ संसार भर की भाषाओं में प्रकाशित होने वाली विविध विषयात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन से सम्बद्ध तमाम प्रामाणिक जानकारियाँ देती हैं। पुस्तक के शीर्षक, लेखक, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष, आकार, मूल्य, पृष्ठ-संख्या और प्राप्ति के स्थान के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रन्थ-सूची से बेहतर कोई साधन नहीं है। इसीलिए ग्रन्थ-सूची की सबसे सपाट परिभाषा यही दी जा सकती है कि इसके द्वारा पुस्तकों के बारे में पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने न केवल बिब्लियोग्राफी के विभिन्न पर्यायों के बारे में अपने दावे प्रस्तुत किये हैं, अपितु ग्रन्थ-सूची की अलग-अलग परिभाषायें भी उपस्थित की हैं। इस क्रम में ग्रन्थ-सूचीकरण को कला और विज्ञान दोनों ही रूपों में परिभाषित करने के यत्न किये गये हैं।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी—पुस्तकों के किसी लेखक, प्रकाशन, शीर्षक, विषय या अन्य किसी पाठ्य-सामग्री से सम्बन्धित पुस्तक-सूचियों को ग्रन्थ-सूची कहते हैं।[१]

जार्ज श्युइडन—साहित्य की सूचियों का अध्ययन, जो सूचियाँ स्वयं वांग्मय-सूची कहलाती हैं, ग्रन्थ-सूचीकरण है।[२]

जे० डी० कावले—ग्रन्थ-सूची किसी विषय के प्रारम्भिक अध्ययन के लिए सामग्री का सूचीकरण और वर्णन है।[३]

कोपिंगर—ग्रन्थ-सूची साहित्यिक अनुसन्धान का व्याकरण है।[४]

ह्वी० डब्ल्यू० क्लैंप—ग्रन्थ-सूची मानवीय ज्ञान के संचरण के लेख का क्रमबद्ध सूचीकरण है।[५]

थियोडोर वेस्टर मैन—ग्रन्थ-सूची पुस्तकों की वह सूची है, जो कुछ स्थायी सिद्धान्त के अनुसार व्यवस्थित होती है।[६]

लुइस सोर्स—लिखित, मुद्रित अथवा ग्रन्थ रूप में प्रसूत (उत्पादित) सम्यता के रिकार्डों की सूची, जिसके अन्तर्गत पुस्तकें, धारावाहिक प्रकाशन, चित्र, मानचित्र, रिकार्डिंग, संग्रहालय की वस्तुएँ, हस्तलिखित ग्रन्थ और ज्ञान के संचरण का कोई अन्य माध्यम सम्मिलित किया जा सकता है, उसे ग्रन्थ-सूची कहते हैं।[७]

एरिक जे० हंटर—पुस्तक-सूची पुस्तकों और अन्य सामग्रियों की एक सूची है, यद्यपि सभी देशों और सभी कालखण्डों की सभी एतद्विषयक सामग्रियों की सूची प्रस्तुत करना सर्वथा असम्भव कार्य है, फिर भी ऐसी ग्रन्थ-सूचियाँ अपनी सीमाओं के बावजूद तैयार होती हैं।[८]

चार्ल्स ई० मैकपीस—ग्रन्थ-सूचियाँ इस जानकारी की सामान्य साधन हैं कि पुस्तक अथवा अन्य रूपों में क्या प्रकाशित हो चुका है।[९]

एल० एम० हैरोड—ग्रन्थ-सूची पुस्तकों और कभी-कभी अन्य सामग्रियों जैसे पत्रिकाओं, लेखों, सन्दर्भों आदि की सूची है जिसे एक लेखक, एक विषय पर लिखता है अथवा कोई प्रकाशक किसी विशेष समय में किसी एक स्थान पर मुद्रित करता है।[१०]

द्वारकाप्रसाद शास्त्री—किसी विशिष्ट विषय या विषयों पर हस्तलिखित ग्रन्थों या मुद्रित पुस्तकों की सूची को सामान्य सूची कहते हैं।[११]

गिरिजा कुमार, कृष्ण कुमार—आज के प्रसंग में ग्रन्थ-विज्ञान लिखित या प्रकाशित अभिलेखों (विशेषतया पुस्तकों और उससे सम्बन्धित सामग्री) की व्यवस्थित रूप से विवरणात्मक सूचियाँ प्रस्तुत करने की तकनीक समझा जाता है और इस अर्थ में इस प्रकार की तकनीक से प्रस्तुत सूची को ही ग्रन्थ-सूची कहते हैं।[१२]

डॉ० प्रभुनारायण गौड़—किसी एक लेखक द्वारा रचित या किसी एक विषय, काल अथवा स्थान से सम्बन्धित पाठ्य-सामग्री की सूची।[१३]

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह—ग्रन्थ-सूची के अन्तर्गत पुस्तक के सम्बन्ध में सारी उपयोगी सूचनाओं को एकत्र करने के उपरान्त एक सुन्दर, प्रभावशाली एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने पर उपयोगकर्ताओं को कम-से-कम समय में उपयोगी सूचनायें प्राप्त हो जाती हैं।[१४]

इन सारी परिभाषाओं से ग्रन्थ-सूची के स्वरूप के बारे में कई मत सामने आते हैं। यह जानकारी मिलती है कि ग्रन्थ-सूची का तात्पर्य अब केवल प्रकाशित सूची भर नहीं है, अपितु हस्तलिखित पुस्तकों और नये तकनीकी संसाधनों से उभरी ज्ञान-सामग्रियों के सूचीकरण का सम्बन्ध भी ग्रन्थ-सूची से है। इसीलिए ग्रन्थ-सूची की वैज्ञानिक और तार्किक परिभाषा में ग्रन्थ-सूचीकरण के नये आयामों और उद्देश्यों को समाहित करना प्रासंगिक होगा। इस कसौटी पर ग्रन्थ-सूची को अधोलिखित शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है—**लिखित अथवा मुद्रित पुस्तकों एवं पुस्तकालय के कार्यक्षेत्र की विविध ज्ञान सामग्रियों की व्यवस्थित तकनीक से तैयार की गई सूचियाँ ही ग्रन्थ-सूची कही जा सकती हैं।**

इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि पुस्तकालय के कार्य-क्षेत्र में आनेवाली लिखित, मुद्रित, टंकित एवं अन्य तकनीकी तरीकों से एकत्र ज्ञान-सामग्रियों का व्यवस्थित सूचीकरण ही ग्रन्थ-सूचीकार का कार्य होता है। ऐसी ग्रन्थ-सूचियाँ एक ओर पुस्तकालय को एक व्यवस्था देती हैं, तो दूसरी ओर पाठकों और जिज्ञासुओं को भी अपेक्षित सुविधा प्रदान करती हैं।

आवश्यकता और उद्देश्य

संसार भर की विभिन्न भाषाओं में विभिन्न विषयों पर अनन्त लेखकों द्वारा असंख्य पुस्तकों, लेखों, प्रलेखों आदि का सृजन होता रहा है। ज्ञान के बहुत सारे उपादान तो अब वैज्ञानिक संग्रहालयों में माइक्रोफिल्मों, टेपों और कम्प्यूटर चिप्स के रूप में संगृहीत हैं। इतनी सारी फैली हुई ज्ञान सामग्रियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेना सहज नहीं है। स्थिति यह है कि हिन्दी में साहित्य की किसी एक शाखा अथवा विज्ञान के किसी एक खण्ड के बारे में प्रकाशित ग्रन्थों की अन्तिम प्रामाणिक सूची भी अधिकांशतः उपलब्ध नहीं है। इसी असुविधा और संकट को दूर करने के लिए ग्रन्थ-सूचियों का आविष्कार हुआ होगा। तब से ग्रन्थ-सूचियों का निर्माण आरम्भ हुआ है, बौद्धिक प्रक्रिया में तेजी आयी है, क्योंकि ग्रन्थ-सूचियों ने ज्ञान-सामग्री को एक सुव्यवस्थित आकार देने में सहायता प्रदान की है। ग्रन्थ-सूचियाँ समय के साथ अधिक समृद्ध, संश्लिष्ट और जटिल होती गयी हैं, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि आनेवाले वर्षों में भी ग्रन्थ-सूचियों की आवश्यकता का अनुभव लोग करते रहेंगे और इसके संकल्प का समापन नहीं होगा। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने बताया है कि ग्रन्थ-सूची का उद्देश्य पाठकों को चुनी हुई सामग्रियों की ओर आकृष्ट करना है। इस धारणा के मूल में ग्रन्थ-सूचीकरण का उद्देश्य छिपा हुआ है। वास्तव में संपूर्ण प्रकाशित अथवा लिखित सामग्री के बारे में प्रामाणिक

जानकारी देना किसी भी पुस्तकालय अथवा अन्य संस्था के लिए एक दुष्कर कार्य है। इसीलिए प्रकाशन व्यवसाय के आरम्भ काल से ही ग्रन्थ-सूचियों की आवश्यकता का अनुभव किया गया ताकि उन्हें देखकर पाठक अपने मनोवांछित विषय से जुड़ सकें।

ग्रन्थ-सूची को पुस्तकों की पुस्तक के रूप में स्वीकार लेने की प्रासंगिकता यही है कि इसके माध्यम से सम्पूर्ण प्रकाशित अथवा लिखित सामग्री का प्रामाणिक वृत्त सामने आता है। इसका लक्ष्य पाठकों को आवश्यक सामग्री की खोज में सहायता करना और लेखक अथवा प्रकाशक को अपेक्षित प्रचार देना है। ग्रन्थ-सूचियों के बिना न तो जिज्ञासु पाठकों की बौद्धिक तृप्ति हो सकती है और न लेखक अथवा प्रकाशक के उत्पादन से सही पाठक जुड़ सकते हैं। ग्रन्थ-सूची की भूमिका ज्ञान के इतिहास में उस सेतु की तरह है जो लेखक अथवा प्रकाशक को उसके सही पाठकों अथवा जानकारों से जोड़ता है। इसीलिए ग्रन्थ-सूचियों में पुस्तक की आख्या, लेखक के नाम, प्रकाशक, प्रकाशन-स्थल, मूल्य, आकार पृष्ठ-संख्या सब की प्रामाणिक सूचना अपेक्षित है। ऐसी अव्यवस्थित एवं अप्रामाणिक ग्रन्थ-सूचियों से किसी को लाभ नहीं हो सकता, न पाठक का और न लेखक अथवा प्रकाशक का—

(१) डॉ० किशोर—आधुनिक हिन्दी महाव्यों का शिल्प-विधान
(२) डॉ० रामखेलावन पाण्डेय—हिन्दी साहित्य का नया इतिहास
(३) डॉ० पाण्डेय शशिभूषण शीतांसु—शैली विज्ञान का इतिहास
(४) डॉ० रामस्वार्थ सिंह—नयी कविता और पौराणिक गाथा
(५) मन्नू भण्डारी—बिना दीवारों के घर।

इस सूची में न तो विषय का कोई तालमेल है और न पुस्तकों के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी ही मिलती है। पहली पुस्तक के लेखक का नाम भी पूरा नहीं दिया गया है। होना यह चाहिये कि ग्रन्थ-सूची पूरी छानबीन और प्रामाणिक सूचनाओं के आधार पर तैयार हो। उसके निर्माण में पुस्तक व्यवसायियों, लेखकों और समीक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों से सहायता ली जानी चाहिए, ताकि अन्तिम तौर पर तैयार ग्रन्थ-सूची पूरी तरह व्यवस्थित, वैज्ञानिक और प्रामाणिक हो। ऐसी सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ-सूची से ही पाठक, लेखक, प्रकाशक और पुस्तकालय सबके हितों की रक्षा की जा सकती है।

बिहार के कहानीकार

(१) शंकर दयाल सिंह (संपादक)—कथा-सेतु, प्रकाशक—पारिजात प्रकाशन, डाक बंगला रोड, पटना—८०००० १, प्रथम संस्करण १९८०, मूल्य-पन्द्रह रुपये, पृष्ठ-संख्या ११२, आकार—क्राउन।

(२) डॉ० रामेश्वर नारायण रमेश (संपादक)—अनावृत्त, प्रकाशक—प्रज्ञा प्रकाशन, मोराबादी, रांची—८३४००८, प्रथम संस्करण १९८३, मूल्य सजिल्द तीस रुपये, अजिल्द बीस रुपये, पृष्ठ-संख्या १६०, आकार—क्राउन।

(३) रोबिन शा पुष्प, विकास कुमार झा (संपादक)—विहार की हिन्दी कहानियाँ—प्रकाशक-कल्पतरु प्रकाशन, नेहरू गली, विश्वास नगर, शाहदरा दिल्ली-११००३२, प्रथम संस्करण १९८५, मूल्य साठ रुपये, पृष्ठ-संख्या ३१८, आकार क्राउन।

(४) रोबिन शा पुष्प (संपादक)—बिहार के युवा हिन्दी कथाकार, प्रकाशक—सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू० बी० बंगली रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७, प्रथम संस्करण १९८५, मूल्य चालीस रुपये, पृष्ठ-संख्या १६६, आकार-क्राउन।

ऐसी प्रामाणिक ग्रन्थ-सूचियों से ही ग्रन्थ-सूचीकरण के उद्देश्य की सिद्धि होती है। पुस्तकालय विज्ञानियों ने अनुभव किया है कि ग्रन्थ-सूचियाँ एक साथ कई लक्ष्यों क सम्पादन में समर्थ हैं। इनके माध्यम से किसी विषय या उप-विषय पर सम्पूर्ण अध्ययन-सामग्री की जानकारी मिलती है और इसी बहाने लेखकों के सम्पूर्ण सृजन को प्रचार भी मिलता है। देश के सांस्कृतिक विकास से भी ग्रन्थ-सूचियाँ अपने ढंग से सहारा देती हैं, क्योंकि इनसे शोध और अनुसंधान को गति मिलती है, बौद्धिक विकास को अनुकूल दिशा मिलती है। अनुसंधाताओं और मनीषियों को ग्रन्थ-सूचियाँ ही यह सूचित करती हैं कि किसी विषय अथवा विषयांश पर कितना काम हो चुका है। ग्रन्थ-सूचियों के लगातार प्रामाणिक प्रस्तुतिकरण से ज्ञान सामग्री के बारे में फैले भ्रमों का निवारण होता है और किसी भी विषय पर सही सामग्री के चुनाव में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से पुस्तकालयों की पुस्तक-चयन-प्रक्रिया में भी ग्रन्थ-सूचियाँ सहयोग करती हैं। अपने बृहत्तर उद्देश्य और बहुलाभकारी संकल्पना के कारण ग्रन्थ-सूची वह प्रकाश-स्तम्भ कही जा सकती है जो ज्ञान के अथाह समुद्र में डूबते-उतराते लोगों का पथ-प्रदर्शन करती है।

ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची में अन्तर

कई सामान्य धरातलों पर ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची को एक जैसा समझ लिया जाता है, जबकि दोनों के क्षेत्र, उद्देश्य, आकार, प्रक्रिया, उपयोगकर्त्ता, स्रोत, संस्था-व्यवस्थापन और विस्तार में कई आधारभूत अन्तर हैं। यही कारण है कि पुस्तकालय विज्ञानियों ने ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची को अलग-अलग विवेचना का विषय बनाया है। वास्तव में सूची अथवा सूचीकरण एक सामान्य शब्द है, जिसका कई सन्दर्भों में उपयोग सम्भव है, लेकिन ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची तो पुस्तकालय-विज्ञान के ऐसे महत्वपूर्ण सर्वथा असम्बद्ध उपकरण हैं, जिनकी स्वतन्त्र सत्ता ही उनके स्वरूप का नियामक है। जिस तरह हम अपने आसपास प्रकाशकों, मुद्रकों, पुस्तक-विक्रेताओं आदि की सूचियाँ देखते हैं, ठीक उसी प्रकार ग्रन्थ-सूची भी एक सामान्य सृजनात्मक जानकारी प्रदान करने वाला उपकरण है। लिखित अथवा मुद्रित पुस्तकों

एवं पुस्तकालय के कार्यक्षेत्र की विविध ज्ञान-सामग्रियों की व्यवस्थित तकनीक से तैयार की गई सूचियाँ ही ग्रन्थ-सूची हैं, जबकि पुस्तकालय-सूची किसी एक पुस्तकालय में उपलब्ध विविध विषयात्मक संग्रह की व्यवस्थित तालिका का दूसरा नाम है। इसीलिए ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची के स्वभाव और लक्ष्य में कई अन्तर लक्षित किये जाते हैं। प्रयोजन की दृष्टि से ग्रन्थ-सूची केवल एक तालिका है, जो अपने जिज्ञासुओं के सामने कोटि विशेष के ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करती है। इसके विपरीत पुस्तकालय-सूची तालिका होने के समानान्तर पुस्तकालय-विज्ञान के विभिन्न नियमों का परिपालन भी करती है। ग्रन्थ-सूची के लिए यह बाध्यता नहीं है। इसीलिए ग्रन्थ-सूचियों की प्रविष्टियों का निर्माण प्रकाशक या सूचीकर अपने ढंग से करता है, जबकि तमाम पुस्तकालय-सूचियाँ पुस्तकालय-विज्ञान की नियमावली से ही संचालित होती हैं। ग्रन्थ-सूची का क्षेत्र पुस्तकालय-सूची की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है, क्योंकि इसमें कहीं भी प्रकाशित और कहीं भी उपलब्ध ग्रन्थों की तालिका पेश की जाती है। इसके विपरीत पुस्तकालय-सूचियों में किसी विशिष्ट पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री की ही सूचना रहती है। ग्रन्थ-सूचियाँ अधिकतर पुस्तकालयाध्यक्षों, अनुसंधाताओं और विक्रेताओं आदि के उपयोग में आती हैं, जबकि पुस्तकालय-सूचियाँ प्रधानतया पुस्तकालय के पाठकों के उपयोगार्थ होती हैं। ग्रन्थ-सूची का भौतिक स्वरूप अधिकांशतः मुद्रित अथवा टंकित पुस्तकाकार होता है, जबकि पुस्तकालय सूचियाँ प्रायः कार्ड के रूप में होती हैं। ग्रन्थ-सूचियों से अपेक्षा की जाती है कि उनमें सूचित सामग्री के बारे अधिकाधिक जानकारी हो। कई ग्रन्थ-सूचियों में तो प्रत्येक प्रविष्टि के बारे में टिप्पणियाँ भी दी जाती हैं, ताकि उपयोगकर्त्ता को अधिकाधिक सुविधा मिले। इसके विपरीत पुस्तकालय-सूचियों में इतनी सारी प्रामाणिक जानकारियों का अभाव होता है और उनमें टिप्पणी तो शायद ही दी जाती है। ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची का विन्यास अधिकतर एक जैसा होता है। इन दोनों ही सूचियों को आकारादि क्रम से या विषय वर्गों के क्रम से व्यवस्थित किया जाता है। इन दोनों ही सूचियों की प्रभावक्षमता में पर्याप्त अन्तर है। पुस्तकालय-सूचियों को यथासम्भव सरल और उपयोगी बनाया जाता है, ताकि अधिक से अधिक पाठक सुगमतापूर्वक पुस्तकालय की सामग्री का उपयोग करने में समर्थ हो सकें। इसके विपरीत ग्रन्थ-सूचियों का निर्माण प्रस्तोता की क्षमता का परिचायक होता है। पुस्तकालय-विज्ञान की कसौटी पर इन दोनों ही सूचियों का एक अन्तर यह भी है कि ग्रन्थ-सूचियाँ विपुल मात्रा में प्रकाशित होती हैं और उन्हें सही पाठकों या उपभोक्ताओं को निर्गमित किया जा सकता है, जबकि किसी भी पुस्तकालय की सूची को पाठक के नाम निर्गम करना असम्भव है। इन सारी असमानाताओं के कारण ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची में कई भेदत्व निर्दिष्ट होते हैं। स्वभावतः ग्रन्थ-सूची और पुस्तकालय-सूची की अलग-अलग अवधारणायें अब व्यवस्थित हो गई हैं और इनके बीच भ्रम की सम्भावना शेष नहीं रह गई है।

ग्रन्थ-सूची के प्रभेद

इतिहास साक्षी है कि पुस्तक-सूची के रूप में ही ग्रन्थ-सूचियों का विकास हुआ और सम्भवतः सबसे पहले दूसरी शताब्दी में गैलेन ने अपनी कृतियों की वर्गीकृत सूची प्रस्तुत करने का यत्न किया था। तब से अब तक ग्रन्थ-सूचियों के स्वरूप और व्यवस्थापन में बड़ा परिवर्तन आया है। १५४८ ई० में प्रकाशित लगभग चौदह सौ पृष्ठों की 'कामंटरिड स्क्रीप्टोरीबस ब्रिटानिक्स (Commentaride Scriptoribus Britannicus) शीर्षक ग्रन्थ-सूची में पहली बार ग्रन्थनामों को बीस प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया गया और इसके बाद ग्रन्थ-सूचियों के विभिन्न प्रभेदों पर चर्चा का श्रीगणेश हुआ।

विभिन्न पुस्तकालय विज्ञानियों ने ग्रन्थ-सूचियों की अपने-अपने ढंग से कई शाखाओं की ओर संकेत किया है। अधिकांश की धारणा है कि संसार भर में प्रकाशित होने वाली ग्रन्थ-सूचियों को ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और गणनात्मक तीन प्रभेदों में वर्गीकृत किया जा सकता है। विषय ग्रन्थ-सूची, मुद्रक ग्रन्थ-सूची, राष्ट्रीय-ग्रन्थ-सूची, व्यावसायिक ग्रन्थ-सूची, लेखक-ग्रन्थ-सूची जैसे कुछ और प्रभेदों का उल्लेख भी किया जाता है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने ग्रन्थ-सूचियों के वर्गीकरण के लिए तीन आधारों की ओर संकेत किया है—विश्लेषण, आर्थिक शृंखला और भौतिक स्वरूप। इन तीनों ही कोटियों के निर्धारण के लिए डॉ० रंगनाथन ने कुछ अनूठी स्थापनायें उपस्थित की हैं। विश्लेषण के आधार पर ग्रन्थ-सूचियों का वर्गीकरण करने के लिए उन्होंने व्यक्तित्व, पदार्थ, क्रिया, क्षेत्र और समय को कसौटी बनाया है। आर्थिक शृङ्खला से डॉ० रंगनाथन का तात्पर्य उपभोक्ता, वितरक और उत्पादक के आर्थिक चक्र को ग्रन्थ-सूची के कोटि निर्धारण का आधार बनाने से है। ग्रन्थ की काया और आत्मा की कसौटी पर भी ग्रन्थ-सूचियों को वर्गीकृत किया जा सकता है। इन्हीं आधारों के परिप्रेक्ष्य में डॉ० रंगनाथन ने संसार की किसी भी भाषा में उपलब्ध ग्रन्थ-सूचियों को भौतिक ग्रन्थ-सूची, भाषात्मक ग्रन्थ-सूची और विषयात्मक ग्रन्थ-सूची तीन वर्गों में विभक्त किया है। यह वर्गीकरण तर्कसम्मत होते हुए भी अधिक प्रचलित नहीं है, अधिकांश पुस्तकालय विज्ञानियों ने ग्रन्थ-सूचियों को अधोलिखित तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है—

(क) ऐतिहासिक ग्रन्थ-सूची

ऐसी तमाम ग्रन्थ-सूचियाँ ऐतिहासिक कोटि की कही जा सकती हैं, जिनके आधार पर मनुष्य के लेखन, मुद्रण, प्रकाशन और एतद्विषयक अन्य कलाओं का इतिहास उपस्थित होता है। वास्तव में ऐतिहासिक ग्रन्थ-सूचियों में मनुष्य के सम्पूर्ण चिन्तन और लेखन का इतिहास उपस्थित करने की क्षमता होती है। यदि किसी सूचीकार ने गोस्वामी तुलसीदास से सम्बद्ध अध्ययन और अनुसन्धान की लम्बी विवरणिका तैयार की है तो इस ग्रन्थ-सूची के माध्यम से हमें तुलसीदास-विषयक शोध और समीक्षा का पूरा इतिहास ज्ञात हो जाता है। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ-सूची यह बतलाने में भी समर्थ है कि लेखन-कला, लेखन-सामग्री,

मुद्रण-कला, चित्रण, टंकण, जिल्दबन्दी आदि के क्षेत्र में कौन-सी प्रवृत्तियाँ इतिहास चक्र के साथ विकसित हुई हैं।

(ख) विश्लेषणात्मक ग्रन्थ-सूची

ऐसी ग्रन्थ-सूचियों के अन्तर्गत पुस्तक के भौतिक स्वरूप का संकेतन मिलता है, जिससे पुस्तक के निर्माण और उसके परिवेश आदि का पता चलता है। विश्लेषणात्मक ग्रन्थ-सूची को समीक्षात्मक ग्रंथ-सूची भी कहा गया है। अंग्रेजी में इसके लिए Analytical, Critical आदि कई पर्याय प्रचलित हैं। ऐसी सूचियों का कार्य पुस्तकों के उत्पादन, मुद्रण, सज्जा आदि का रिकार्ड रखना है, ताकि परवर्ती पुस्तकों की नींव रखी जा सके। ऐसी ग्रन्थ-सूचियाँ ग्रन्थ की सम्पूर्ण शारीरिक परीक्षा उपस्थित करती हैं, जिसके अन्तर्गत ग्रन्थ के शीर्षक, पृष्ठ-संख्या, आवरण, मुद्रण, भूमिका, समर्पण, अनुच्छेद, विज्ञापन, समापन, परिशिष्ट, संस्करण, विज्ञप्ति, कृतज्ञता, विषय-सूची, चित्र-सूची, संकेत-सूची, शुद्धि-पत्र, शब्दावली आदि समस्त उपकरणों की जाँच-पड़ताल की जाती है। पुस्तक के आवरण से लेकर अन्तिम आवरण तक सम्पूर्ण सामग्री का संकेतन ही विश्लेषणात्मक ग्रन्थ-सूची का प्रतिपाद्य है।

(ग) गणनात्मक ग्रन्थ-सूची

इसे व्यवस्थित अथवा परिणनात्मक ग्रन्थ-सूची भी कहा गया है। अंग्रेजी में इसके लिए Enumerative, Systematic जैसे पर्याय प्रचलित हैं। वास्तव में हमारे चारों ओर उपलब्ध अधिकांश ग्रन्थ-सूचियाँ इसी शृंखला की हैं क्योंकि गणनात्मक ग्रन्थ-सूचियों में ही विभिन्न प्रामाणिक और विशद प्रविष्टियों के माध्यम से ग्रन्थों का व्यापक ब्योरा मिलता है। यह एक व्यवस्थित ग्रन्थ-सूची होती है, जिसका उद्देश्य होता है—प्रत्येक पुस्तक और उससे सम्बद्ध सूचनाओं को प्रामाणिक एवं व्यवस्थित रूप में सामने रखना। ग्रन्थ-सूचीकरण की अन्य दिशाओं की तुलना में यह अधिक उपयोगी और लोकप्रिय ग्रन्थ-सूची है, जिसके अन्तर्गत ही ग्रन्थ-सूचियों के कई उपभेदों का समाहार कर लिया जाता है। लेखक, विषय, व्यवसाय, राष्ट्र, विश्व, मुद्रण, चयन, प्रकाशन, लेखन आदि के स्तर पर तैयार की गई ग्रन्थ-सूचियाँ किसी-न-किसी रूप में मूलतः गणनात्मक ग्रन्थ-सूची ही हैं; क्योंकि उनमें विभिन्न दृष्टिकोणों से ग्रन्थों का गणनात्मक सूचीकरण उपस्थित किया जाता है।

इन तीन प्रमुख ग्रन्थ-सूची प्रभेदों के समानान्तर कतिपय ग्रन्थ-सूची उपभेदों की परिकल्पना पुस्तकालय विज्ञानियों ने की है। वास्तविकता तो यह है कि हमारे आसपास फैले रचनात्मक एवं प्रकाशकीय संसार में इतने सारे ग्रन्थ विद्यमान हैं कि उन सबका समाहार कुल तीन प्रकार की ग्रन्थ-सूचियों में नहीं किया जा सकता। इसीलिए ग्रन्थ-सूचियों की कई अन्य सुविधात्मक भेदोपभेद किये गये हैं। यह स्वीकार लेना भी आपत्तिजनक नहीं है कि विभिन्न ग्रन्थ-सूचियों के मूल में अधिकांश गणनात्मक ग्रन्थ-सूचीकरण के सिद्धान्त ही विद्यमान हैं। किसी लेखक द्वारा लिखित अथवा उस लेखक के बारे में अन्य लेखकों द्वारा

लिखित ग्रन्थों की सूची को **लेखक ग्रन्थ-सूची** कहा गया है। इसी तरह किसी एक विषय पर प्रकाशित सभी पुस्तकों एवं अन्य जानकारियों पर आधारित सूची को **विषय ग्रन्थ-सूची** कहा जाता है। ऐसी ग्रन्थ-सूचियों में विद्यमान विषय, सामग्री और तद्‌विषयक सूचना का विस्तार प्राप्त होता है। कई प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता अथवा संस्थान अपने पास उपलब्ध अथवा अपनी ओर से प्रकाशित ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करते हैं, ऐसी सूचियाँ **व्यावसायिक ग्रन्थ-सूची** की कोटि में आती हैं। इस किस्म की सूचियों के द्वारा पाठकों को नवीनतम प्रकाशनों की जानकारी मिलती है और प्रकाशन अथवा विक्रेता को अपेक्षित प्रचार मिलता है। इधर तेजी के साथ ऐसी ग्रन्थ-सूचियाँ भी सामने आने लगी हैं, जिनमें किसी देश विशेष के सम्पूर्ण प्रकाशनों का विवरण रहता है। इन्हें **राष्ट्रीय ग्रन्थ-सूची** कहा गया है, जिनमें किसी राष्ट्र में प्रकाशित सभी ग्रन्थों का इस प्रकार सूचीकरण किया जाता है कि उसके आधार पर राष्ट्र की उपलब्धियों का एक चित्र सामने आ सके। राष्ट्रीय ग्रन्थ-सूची की ही शृंखला में राष्ट्रीय पुस्तकालय-सूचियों का भी विकास हुआ है। इधर शोध-प्रबन्धों, हस्तलिखित ग्रन्थों, प्रलेखों और सार्वभौम महत्व के ग्रन्थों की कतिपय सूचियाँ भी सामने आयी हैं। इस शृंखला की ग्रन्थ-सूचियों में उन विशिष्ट ग्रन्थ-सूचियों का उल्लेख भी किया जा सकता है, जिनमें ग्रन्थ-सूचियों के सूचीकरण का यत्न किया जाता है।

ग्रन्थ-सूचियों के इतने सारे उपभेदों के बीच प्रधानतया गणनात्मक ग्रन्थ-सूचियों का सिद्धान्त ही प्रचलित है। इसी आधार पर पुस्तकालयों में पुस्तक-चयन की प्रक्रिया साकार होती है, पाठक मनोवांछित विषयों के ग्रन्थों से परिचित होते हैं तथा लेखक एवं प्रकाशक को अपेक्षित प्रसार मिलता है।

ग्रन्थ-सूची-निर्माण की प्रविधि

विभिन्न संस्थाओं और सन्दर्भ सेवाओं के अन्तर्गत ग्रन्थ-सूचियों का निर्माण किया जाता है। ग्रन्थ-सूचियों के माध्यम से पुस्तकालयाध्यक्ष की अभिरुचि, प्रकाशक की सक्षमता, लेखक की प्रतिभा और पाठक की जागरूकता का परिचय मिलता है। इसीलिए ग्रन्थ-सूची का निर्माण अपने आपमें एक विलक्षण एवं जटिल प्रक्रिया है। वास्तव में ग्रन्थ-सूचियों का निर्माण पूरी तरह संकलन-कार्य पर केन्द्रित होता है। जितनी सावधानी और अन्तरंगता के साथ संकलन-कार्य सम्पन्न होगा, ग्रन्थ-सूची भी उतना ही उपादेय और प्रामाणिक होगी। इसीलिए ग्रन्थ-सूची-निर्माण का पहला चरण संकलन कार्य की योजना से आरम्भ होता है। ग्रन्थ-सूचीकार को यह तय कर लेना होगा कि उसे किस विषय अथवा लेखक के ग्रन्थों की सूची तैयार करनी है। विषय, विषय-क्षेत्र, पुस्तक विषयक भौतिक सूचनाओं, भाषा और अन्य जानकारियों के सम्पूर्ण संकलन के बाद ही सही ग्रन्थ-सूची तैयार की जा सकती है। ऐसी सूचियाँ प्रकाशित अथवा लिखित ग्रन्थों की हो, अभिलेखों अथवा नये तकनीकी ज्ञान माध्यमों की हो—ग्रन्थ-सूचीकरण में सूचीकार की सतर्कता और सूचनाओं को अन्तिम प्रामाणिक तौर पर एकत्र करने की सावधानी ही सबसे बड़ी

बात है। ग्रन्थ-सूची की प्रत्येक प्रविष्टि प्रामाणिक और सम्पूर्ण हो, इसी आधार पर ग्रन्थ-सूची का व्यवस्थापन किया जाता है। ग्रन्थ-सूचियों का भौतिक व्यवस्थापन कई प्रचलित रूपों में सम्भव है, जैसे—वर्णानुक्रम, विषयानुक्रम, कालानुक्रम और वर्गानुक्रम के आधार पर ग्रन्थ-सूची में प्रतिपादित सामग्री का व्यवस्थापन होता है। इस कार्य-विधि को सही आकार देने के लिए ग्रन्थ-सूचीकार से कई अपेक्षायें की जाती हैं। गिरिजा कुमार और कृष्ण कुमार ने सूचित किया है—किसी भी प्रकार की ग्रन्थपरक सेवाओं का केन्द्र-बिन्दु ग्रन्थ-सूचीकार होता है। ग्रन्थ-सूचीकार के व्यक्तित्व के बिना किसी भी प्रकार की ग्रन्थपरक सेवाओं की कल्पना नहीं की जा सकती, इस कारण ग्रन्थ-सूचीकार के व्यक्तित्व, उसकी योग्यता, गुण तथा अनुभव पर पूरा ध्यान देना चाहिये।[१५] सुनिश्चित तौर पर ग्रन्थ-सूचीकार को पक्षपात रहित, परिश्रमी, कुशल निरीक्षक, गणना सिद्ध और सुलेख का स्वामी होना चाहिये। ग्रन्थ-सूचीकार को इस कार्य के लिए प्रशिक्षण मिलना चाहिये, लेकिन यह भी आवश्यक है कि सूचीकरण उसकी मनोवृत्ति के अनुरूप हो। सफल ग्रन्थ-सूचीकार कुशलतापूर्वक अधीत विषय की प्रामाणिक ग्रन्थ-सूची तैयार करता है और उसकी प्रविष्टियों का व्यवस्थापन न केवल अध्ययन और शोध को प्रोत्साहित करता है, अपितु अपने पाठकों को सरसरी तौर पर मुग्ध भी करता है। ग्रन्थ-सूची का प्रस्तुतीकरण इतना आकर्षक होना चाहिये कि उसे देखकर ही सूची की भव्यता और प्रामाणिकता का बोध हो। यद्यपि ग्रन्थ-सूचीकरण की प्रक्रिया की कोई मानक विधान नहीं है और अनेक प्रकार की ग्रन्थ-सूचियों के लिए कई प्रकार की तकनीकें प्रयुक्त हैं, तथापि ग्रन्थ-सूची निर्माण में संकलन और व्यवस्थापन के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। अपने व्यावहारिक और विकासात्मक महत्त्व के कारण ग्रन्थ-सूचियों का निर्माण अनायास ही बायें हाथ से नहीं होना चाहिये। पूरी सावधानी के साथ ग्रन्थ-विषयक जानकारी का संकलन हो और उतनी ही सतर्कतापूर्वक प्रविष्टियों का व्यवस्थापन हो, तभी एक आदर्श और प्रामाणिक ग्रन्थ-सूची साकार होती है। ऐसी सही ग्रन्थ-पूची ही लेखक, पुस्तक, प्रकाशक, पाठक, ग्रन्थ-सूचीकार और पुस्तकालय सबके हितों की रक्षा करने के समर्थ होती है।

सन्दर्भ-संकेत

१. आक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ ८१।

2. George Schuiden : Theory and history of bibliography, p. 16.
"Study of lists on literature, the lists themselves are generally termed bibliography."

3. J. D. Cowley : Bibliographical description and cataloguing. p. 7.
"Cataloguing and description of material for a preliminary study of a subject."

4. Copinger : Presidential Address of 1892, Vol.-1, p. 34.
"Bibliography : Manner of literary investigation,"

५. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : वांग्मय सूची और प्रलेखन, पृष्ठ ३ पर उद्धृत ।

6. Theodore Bestman : A world bibliography of bibliography. p. 3.
"Bibliography is a list of books arranged according to some permanent principles."

७. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : वांग्मय सूची और प्रलेखन, पृष्ठ ४ पर उद्धृत ।

8. Eric J. Hunter : Cataloguing, p. 1.
"A bibliography is a list of books and other materials, since it would be clearly impossible to list all materials, countries and all periods on all subjects, such a list normally has a self imposed limitation."

9. G. L. Higgens (Ed.) : Printed reference materials, p. 391.
"Bibliographies are the usual means of tracing what has been published either in book form or as articles."

10. L. M. Harrod : The librarians glossary and reference book, p. 108.
"Bibliography : A list of books and some times of other materials such as, periodicals, articles and illustration written by one printer or in one place or during one period."

११. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : वांग्मय सूची और प्रलेखन, पृष्ठ ८ ।

१२. गिरजा कुमार, कृष्ण कुमार : ग्रन्थ विज्ञान, पृष्ठ १ ।

१३. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय-विज्ञान पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ ३३ ।

१४. डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह : पुस्तकालय संगठन और प्रशासन, पृष्ठ १५५ ।

१५. गिरजा कुमार, कृष्ण कुमार : ग्रन्थ विज्ञान, पृष्ठ २४८ ।

□ □

अध्याय १६

सन्दर्भ-सेवा

परिभाषा

पुस्तकालय में अध्ययन और अनुसंधान में संलग्न पाठकों और अनुसंधाताओं को उनकी आवश्यकता के अनुरूप सामग्री प्राप्त करना संदर्भ-सेवा का लक्ष्य है। अधिकांश विचारकों ने इसे एक मानवीय विधि घोषित किया है, क्योंकि संदर्भ-सेवा के अन्तर्गत पुस्तकालय अपने संसाधनों के अधीन लोगों की अनुसंधान सम्बन्धी जिज्ञासा और आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसे मानवीय विधि कहने का एक आधार यह भी है कि संदर्भ-सेवा मुख्यतः व्यक्तिगत सहानुभूति और मानवोचित संदर्भ-सहायता पर आधारित है। वास्तव में संदर्भ-सेवा ने जिस विशिष्ट संकल्पना के साथ पुस्तकालय में अपना प्रभाव फैलाया है, उसी ने संदर्भ-पुस्तकालयों को जन्म दिया है। एक गतिशील प्रक्रिया और महत्वपूर्ण विवेक सहायता के रूप में संदर्भ-सेवा आज के पुस्तकालयों की एक अनिवार्य दिशा है।

पुस्तकालय विज्ञानियों के बीच संदर्भ-कार्य और संदर्भ-सेवा दोनों की कई व्याख्याएँ प्रचलित हैं। इस क्रम की कुछ परिभाषाएँ और धारणाएँ इस प्रकार हैं—

विलियम बी० चाइल्ड—संदर्भ-कार्य से तात्पर्य किसी पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा पाठकों को दी गई उस सामान्य सहायता से है, जो सूची की गूढ़ता से परिचय कराने में, प्रश्नों का उत्तर देने में एवं अपने पुस्तकालय के सीमित साधनों के भीतर हर प्रकार की सेवा सुलभ करने से है।[1]

विलियम वार्नर बिशप—संदर्भ-कार्य वह सेवा है जो किसी प्रकार के अनुसंधान में लगे हुए पाठक को दी जाती है।[2]

जेम्स आई० बायर—अध्ययन और अनुसंधान के लिए पुस्तकालय के संग्रह की व्याख्या करने में सहानुभूतिपूर्ण और वैयक्तिक सहायता ही संदर्भ-कार्य है।[3]

एल० एम० हैरोड—संदर्भ-सेवा पुस्तकालय - सेवा की वह शाखा है, जिसमें पाठकों को उनके विविध विषयी अनुसंधान से सम्बन्धित सूचनाएँ देने का कार्य किया जाता है।[4]

आर० एन० कोलिसन—संदर्भ पुस्तकालय की सही परिकल्पना केवल लिखित और मुद्रित सामग्री के संग्रह की नहीं है, अपितु यह वास्तव में एक जीवंत विश्व-कोश जैसा होता है।[5]

जी० एल० हिगिन्स—सामान्यतः संदर्भ-सेवा का उल्लेख ऐसे किया जाता है जैसे वह मात्र और सामान्यतया संदर्भ-सामग्री के उपयोग से जुड़ी जिज्ञासाओं का उत्तर भर है,

लेकिन अपने विस्तृत अर्थ में यह पुस्तकालय का उपयोग करनेवालों की सारी सूचनात्मक और प्रामाणिक संदर्भ प्रस्तुत करने वाली जिज्ञासाओं की प्रभावशाली, सुनिश्चित, शीघ्र और अल्पसमयी-सेवा है।[६]

डॉ० एस० आर० रंगनाथन—संदर्भ-सेवा पाठकों और पुस्तकों के मध्य सम्पर्क स्थापित कराने की एक विधि है।[७]

द्वारकाप्रसाद शास्त्री—किसी सूचना की प्राप्ति में पुस्तकालय स्टाफ द्वारा दी गई वैयक्तिक सहायता संदर्भ-सेवा है।[८]

प्रभुनारायण गौड़—पुस्तकालय में ऐसी सेवा का संगठन और प्रावधान जिसके द्वारा पुस्तकालय के जिज्ञासु उपभोक्ताओं को विभिन्न विषयों से सम्बन्धित तथ्यों अथवा सूचनाओं की जिज्ञासा की पूर्ति में सहायता उपलब्ध हो सके और उनके सामान्य अध्ययन अथवा शोधकार्य में आवश्यक पुस्तकालय-सामग्री की खोज और उपयोग में सहयोग और सहायता मिल सके।[९]

इन सारी विचारधाराओं से सन्दर्भ-कार्य और सन्दर्भ-सेवा के बारे में कई तथ्य सामने आये हैं। कुछ विचारकों ने सन्दर्भ-कार्य को पुस्तकालय में सम्पन्न होने वाला पाठकोपयोगी ऐसा कार्य मान लिया है जो पूरी तरह मानवीय सहानुभूति पर केन्द्रित है। कुछ अन्य विचारकों के अनुसार न्यूनतम समय में अधिकतम सुविधा के साथ पाठकों को उनके अध्ययन और शोध से सम्बन्धित सहायता करना ही सन्दर्भ-सेवा है। वास्तव में सन्दर्भ-सेवा इतनी सीमित और सतही प्रक्रिया नहीं है। साधारणतया सन्दर्भ-सेवा को व्यक्तिगत सन्दर्भ पुस्तकों और सूचनाओं की उपलब्धि तथा पाठकों द्वारा की गई माँग से जोड़ा जाता है, जबकि वास्तव में सन्दर्भ-सेवा का सम्बन्ध किसी भी विषय की अत्यन्त सूक्ष्म और प्रामाणिक जानकारी प्रदान करने से है। इस कसौटी पर सन्दर्भ-सेवा को अधोलिखित शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है—**पुस्तकालय में आये पाठकों और अनुसंधाताओं की विविध विषयात्मक जानकारी और सूचनाओं को आवश्यकतानुसार अधिक प्रामाणिक और सूक्ष्मता के साथ पुष्ट करने के लिए प्रदान की गई सेवा ही सन्दर्भ-सेवा है।**

आवश्यकता तथा उद्देश्य

संगृहीत ज्ञान के कोष के रूप में पुस्तकालय की पहचान सुनिश्चित बनाने में सन्दर्भ-सेवा का अपना विशिष्ट महत्व है। इसका कारण यही है कि पुस्तकालयों में उपलब्ध सामग्रियों में वृद्धि होती रहती है और पाठकों के लिए यह असम्भव है कि वे अपनी आवश्यकता के अनुरूप सारी पाठ्य सामग्री का सूक्ष्म एवं गहन ज्ञान ग्रहण कर सकें। सन्दर्भ-सेवा पाठकों और सूक्ष्म पाठ्य सामग्रियों के बीच सेतु का काम करती है। इस सेवा की प्रासंगिकता इस तथ्य पर केन्द्रित है कि पाठकों को किसी भी विषय की सूक्ष्मतम, शोधपरक, प्रामाणिक जानकारी साधारण पुस्तकालय-सेवा के वश की बात

नहीं है। संगृहीत ज्ञान अब केवल पुस्तकों और पत्रिकाओं में ही नहीं, बल्कि प्रतिवेदनों टिप्पणियों, टेपों, माइक्रोफिल्मों, सूचिकाओं और कम्प्यूटरों में भी बिखरा हुआ है। इन सबकी सूक्ष्म और प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराने के लिए सन्दर्भ-सेवा की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। पाठ्य-सामग्री कभी-कभी गूढ़ होती हैं जिनकी समुचित व्याख्या और सही ज्ञान प्राप्त करने में सन्दर्भ-सेवा की आवश्यकता होती है। पुस्तकालय में कई पुस्तकें विशुद्ध तौर पर सन्दर्भ ग्रन्थ की श्रेणी में परिगणित होती हैं। ऐसे सन्दर्भ-ग्रन्थों के संग्रहण और उपयोग-विधि में सन्दर्भ-सेवा सहायक होती है। सन्दर्भ सेवा से जुड़े पुस्तकालयाध्यक्ष एवं पुस्तकालय कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने संस्थान में आने वाले पाठकों की माँगों और प्रश्नों को समुचित जानकारी देकर उनका निराकरण करेंगे। नये परिवेश में पाठ्य सामग्री की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कराने में सन्दर्भ-सेवा की उपादेयता असंदिग्ध है। यही कारण है कि पाठकों और पाठ्य सामग्री की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के समानान्तर पुस्तकालयों की नयी-नयी कोटियाँ भी सामने आने लगी हैं। स्वभावतः इधर विशिष्ट किस्म के सन्दर्भ पुस्तकालय बने हैं। विभिन्न औद्योगिक संस्थानों, तकनीकी उपक्रमों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों के पुस्तकालयों में सन्दर्भ-सेवा की आवश्यकता का लगातार अनुभव किया गया है। शोधकार्य से सम्बद्ध पुस्तकालयों में तो सन्दर्भ-सेवा रीढ़ की हड्डी की तरह आवश्यक है। पुस्तकों की सुरक्षा पाठकों की जिज्ञासा की शांति, समय की बचत और शोधकार्य को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सन्दर्भ-सेवा का महत्त्व अपरिहार्य है। इसके कई स्पष्ट लाभ इंगित होते हैं। एक ओर सन्दर्भ-सेवा के कारण पुस्तकालयों के प्रति पाठक और अनुसंधाता का विश्वास सुदृढ़ होता है तथा दूसरी ओर विभिन्न पाठ्य सामग्रियों की व्यापक उपादेयता सामने आती है। इससे पुस्तकालय में आने वाले पाठकों और शोधकों को सुविधा मिलती है। उनके समय की बचत होती है और शोधकार्य को तेजी प्राप्त होती है। सन्दर्भ-सेवा की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के कारण न केवल पाठकों को मनोवैज्ञानिक संतोष प्राप्त होता है, अपितु पुस्तकालय की लोकप्रियता भी पल्लवित होती है।

सन्दर्भ-सेवा के प्रभेद

किसी भी पुस्तकालय में शोध और अध्ययन को प्रोत्साहित करने वाली सन्दर्भ-सेवा प्रधानतया दो श्रेणियों में विभक्त की जाती है—

(१) तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा,

(२) दीर्घकालिक सन्दर्भ-सेवा।

तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा को प्रस्तुत सन्दर्भ-सेवा, प्रत्यक्ष सन्दर्भ-सेवा, तत्कालीन सन्दर्भ-सेवा जैसे नामों से भी पुकारा जाता है। यह एक ऐसी सन्दर्भ-सेवा है जो पाठकीय आवश्यकता का तत्काल समाधान कर डालती है। जिज्ञासा का अतिशीघ्र समाधान प्रस्तुत करने वाली इस सेवा में समय की अल्पता का सर्वाधिक महत्त्व है। यह एक

ऐसी त्वरित सेवा है जो व्यक्तिगत स्तर पर जिज्ञासु पाठकों तथा अनुसंधाताओं की सहायता करती है ।

तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा निर्देशों के द्वारा की जाय अथवा सूचना के द्वारा, सीधे तौर पर की जाय अथवा दूरभाष द्वारा, यह अतिशीघ्र शोध-प्रश्नों और जिज्ञासाओं को शांत करती है । इस सेवा से सम्बद्ध लोगों से अपेक्षा की जाती है कि वे पूरी तल्लीनता के साथ प्रश्नकर्ता की जिज्ञासा को सुनेंगे और उनका अधिकतम प्रामाणिक और गहन उत्तर शीघ्र देंगे ।

दीर्घकालिक सन्दर्भ-सेवा को व्यापक सन्दर्भ-सेवा, परोक्ष सन्दर्भ-सेवा, दीर्घकालीन सन्दर्भ-सेवा जैसे नाम दिये गये हैं । इसमें सन्दर्भ-सेवायें व्यक्तिगत रूप में न होकर अन्य साधनों के माध्यम से प्रदत्त होती हैं । वास्तव में तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा और दीर्घकालिक सन्दर्भ-सेवा के बीच समय, सामग्री और सूचना के प्रकार का अन्तर होता है । तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा व्यक्तिगत सम्पर्कों पर केन्द्रित होती है, जबकि दीर्घकालिक सन्दर्भ-सेवा सामूहिक अनुसंधान को प्रोत्साहित करती है । इसके माध्यम से प्रश्नों और जिज्ञासाओं का त्वरित समाधान उपस्थित नहीं होता, अपितु कतिपय अन्य स्रोतों से खोज-कर उत्तर निकाला जाता है । ये स्रोत विभिन्न शोध पुस्तकालयों, विषय-विशेषज्ञों और अभिलेखागारों में बिखरे होते हैं । इस सन्दर्भ-सेवा के कारण कभी-कभी पुस्तकालय की क्षमता अथवा विश्वसनीयता खतरे में पड़ जाती है; क्योंकि जब सन्दर्भ-सेवा से जुड़े लोग तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा की प्रविधि छोड़कर अन्य स्रोतों की ओर संकेत करने लगते हैं, तब अनुसंधाता और जिज्ञासुओं के मानस पर कभी-कभी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इसके बावजूद दीर्घकालिक सन्दर्भ-सेवा के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शोध-कार्य का लक्ष्य किसी एक पुस्तकालय की सीमाओं में पूरा नहीं किया जा सकता ।

दीर्घकालिक और तात्कालिक दोनों ही किस्म की सन्दर्भ-सेवाओं के माध्यम से पुस्तकालय अपने जिज्ञासु पाठकों और जागरूक अनुसंधाताओं की सहायता करता है ।

सन्दर्भ-सेवा-प्रविधि

सन्दर्भ-सेवा के लिए आवश्यक है कि पुस्तकालय में उपयुक्त सन्दर्भ-सामग्री का भण्डार हो और पुस्तकालय में उपलब्ध सन्दर्भ-सामग्री से भलीभाँति परिचित दक्ष कर्म-चारी सन्दर्भ-सेवा में संलग्न हों । अपने संसाधनों के अनुरूप पुस्तकालय के सन्दर्भ-सेवा विभाग में स्थान और उपस्करों, सन्दर्भ-सामग्री और कर्मचारियों का संयोजन किया जा सकता है । लेकिन सन्दर्भ-सेवा केवल इन्हीं चीजों पर आधारित नहीं होती । आवश्यकता इस बात की है कि सन्दर्भ-सेवा से जुड़े हुए लोग पूरी ईमानदारी और गहराई के साथ अपने कार्य करें । पुस्तकालयों में शोध-रुचि से सम्पन्न सन्दर्भ-सेवाविद नियुक्त हों, सन्दर्भ-ग्रन्थों का समुचित संग्रह हो और सन्दर्भ-सेवा के उपयुक्त सूचियों का अच्छा भण्डार हो । स्वभावतः पुस्तकालय के सभी विभागों का सहयोग अपेक्षित होता है । यह एक ऐसी

सूक्ष्म और अन्तरंग सेवा है, जिसे शोध-रुचि और गहन अध्ययन के बिना नहीं सम्पन्न किया जा सकता है।

सन्दर्भ-सेवा प्रक्रिया का समारम्भ उसी क्षण हो जाता है, जब पाठक अपने अध्ययन और अनुसन्धान के बीच किसी विशिष्ट सन्दर्भ के अभाव का बोध करता है। सन्दर्भ-सेवा से जुड़ी जिज्ञासाएँ अनेकमुखी हो सकती हैं। जैसे—

(१) हिन्दी कहानी में नारी पर किन अनुसन्धानकर्त्ताओं ने शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये हैं ?

(२) हिन्दी कविता में सरस्वती के चरित्र को किन कवियों ने अंकित किया है ?

(३) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य-नाटक 'बन्दर सभा' का प्रकाशन कब हुआ था ?

(४) संसार की पहली महिला अन्तरिक्ष यात्री कौन थी ? क्या उसके जीवन पर कोई पुस्तक भी निकली है ?

(५) सुनील गवास्कर ने कौन-कौन-सी पुस्तकें लिखी हैं और कहाँ से प्रकाशित हुई हैं ?

(६) हिन्दी नाटक में अश्लीलता विषय पर आलेख तैयार करने के लिए सामग्री कहाँ से मिलेगी ?

(७) हिन्दी में विधि शब्दावली कोश प्रकाशित हुए हैं क्या ?

(८) वाराणसी के उन पुस्तक विक्रेताओं के पते दें, जिन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य का प्रकाशन किया है।

(९) श्रीमती इन्दिरा गाँधी के जीवन-वृत्त पर आधारित काव्य-ग्रन्थों की जानकारी दें।

(१०) शरत्चन्द्र के साथ हिन्दी के किन उपन्यासकारों की तुलना की जा सकती है ?

ऐसे सवालों के सत्वर समाधान के लिए ही सन्दर्भ-सेवा का आयोजन किया जाता है। उपलब्ध सन्दर्भ-सामग्री के आधार पर सन्दर्भ-सेवा कार्य में जुटे पुस्तकालय के लोग अपनी क्षमता द्वारा जिज्ञासुओं को सन्तोष प्रदान करते हैं। पाठक अथवा अनुसन्धाता की जिज्ञासा का समाधान करना ही सन्दर्भ-सेवा का केन्द्रीय लक्ष्य है, जिसके लिए सन्दर्भ-सेवा प्रविधि इस प्रकार कार्यान्वित होती है—

(१) पाठक द्वारा सन्दर्भ के अभाव का बोध।

(२) पुस्तकालयाध्यक्ष और पाठक के बीच विचार-विमर्श।

(३) पाठक द्वारा पुस्तकालयाध्यक्ष के सामने समस्या का निरूपण।

(४) समस्या का सरलीकरण एवं स्पष्टीकरण।

(५) पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा सन्दर्भ की निजी जाँच।

(६) पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा पाठक को प्रदत्त सन्दर्भ-संकेत ।

(७) पाठक द्वारा सन्दर्भों का उपयोग ।

(८) पाठक का सन्तोष ।

इस प्रक्रिया के गुजरने के बाद ही सन्दर्भ-सेवा अपने मूर्त्त रूप में सामने आती है। स्वभावतः सन्दर्भ-सेवा-प्रक्रिया पुस्तकालय के मूलभूत लक्ष्य—पाठकों के सन्तोष—का ही प्रतिफलन है। इसी कारण पुस्तकालय में सन्दर्भ-सेवा एक अपरिहार्य एवं अनिवार्य सेवा के रूप में स्थापित है।

सन्दर्भ-सामग्री की श्रेणियाँ

पुस्तकालय की सन्दर्भ-सेवा में काम आने वाली कुल सामग्री इतनी अधिक और विविध विषयात्मक होती है कि उनकी एक स्वतन्त्र पहचान पुस्तकालय में विद्यमान ग्रन्थों के बीच होती है। तात्कालिक सन्दर्भ-सेवा के काम आने वाली सन्दर्भ-सामग्री पाठकों और जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करने में समर्थ होती है; क्योंकि अधिकांश पुस्तकालयों में एतद्विषयक सन्दर्भ-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इस किस्म के सन्दर्भ-ग्रन्थ पाठ्य-पुस्तकों और रचनात्मक समीक्षात्मक कृतियों से भिन्न होते हैं। ये अधिकतर सूक्ष्म अध्ययन पर आधारित और प्रामाणिक सूचनाओं से भरपूर होते हैं। सन्दर्भ-सेवा की सफलता की यह प्राथमिक शर्त है कि पुस्तकालय में पर्याप्त मात्रा में सन्दर्भ-ग्रन्थों का संचयन किया जाय। डॉ० शमशेर गुप्ता ने ऐसे सन्दर्भ-ग्रन्थों को परिभाषित करते हुए लिखा है—सन्दर्भ-ग्रन्थों से तात्पर्य उन दस्तावेजों से है जो किसी विषय सम्बन्धी सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं। यह पुस्तक रूप में, पत्रिका रूप में अथवा परम्परा से चली आ रही सन्दर्भ-सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकते हैं।[१०] इस कोटि के सन्दर्भ-ग्रन्थों का उपयोग पुस्तकालय में नहीं किया जाता है, अपितु पाठक और अनुसन्धाता किसी महाकाय सन्दर्भ-ग्रन्थ से भी बहुत ही संक्षिप्त और उपयोगी जानकारी लेते हैं। मैरिन बार्टन ने ठीक ही लिखा है—सन्दर्भ-ग्रन्थ से हमारा तात्पर्य प्रायः उस ग्रन्थ से है जो किन्हीं विशिष्ट सूचनाओं की जानकारी हेतु प्रयोग में लाया जाता है न कि आद्योपान्त पठन हेतु।[११]

ऐसी सन्दर्भ-सामग्री एक ओर प्रकाशित रूप में होती है तो दूसरी ओर अप्रकाशित पोथियों, फिल्मों, टेपों और कार्डों आदि के रूप में संगृहीत रहती हैं। अपेक्षा की जाती है कि इस सन्दर्भ-सामग्री से तमाम किस्म की जिज्ञासाएँ शांत हो सकती हैं। संदर्भ-सेवा के काम आने वाली ऐसी सन्दर्भ-सामग्रियों की श्रेणी में अधोलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है—

कोश—मानक हिन्दी कोश, आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, अंग्रेजी-हिन्दी कोश, जैसे कोशों के माध्यम से किसी भाषा के शब्दों के अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय, विलोम और प्रयोग आदि की जानकारी देने में सहायता मिलती है।

विश्वकोश—विभिन्न विषयों पर एकीकृत प्रामाणिक सूचना प्राप्त करने में हिन्दी विश्वकोश, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका जैसे विश्वकोश सहायक होते हैं।

विषय-केन्द्रित कोश—भाषा-विज्ञान कोश, भारतीय साहित्यशास्त्र कोश, हिन्दी साहित्य कोश, हिन्दू धर्म कोश जैसे सन्दर्भ-ग्रन्थ विशिष्ट विषयों पर प्रामाणिक जानकारी देने में सहायक होते हैं।

मानचित्र—नगरों, राज्यों, देशों और महादेशों के बारे में सही भौगोलिक जानकारी प्राप्त करने में मानचित्र सहायक होते हैं।

वार्षिकी—वर्ष भर की उपलब्धियों और स्थितियों की जानकारी प्राप्त करने में वार्षिकी सहायक होती है। जैसे—ब्रिटेनिका बुक आफ दि इयर, भारत वार्षिकी आदि ग्रन्थ इस कोटि के हैं।

अब्द कोश—वर्णनात्मक सूचनाओं और आँकड़ों के साथ-ही-साथ वर्ण विशेष की प्रामाणिक समीक्षा प्रस्तुत करने में हिन्दी साहित्याब्द कोश, इन्डियन इयर बुक आफ इन्टरनेशनल अफेयर्स जैसे अब्द कोश सहायक होते हैं।

पंचांग—भारतीय अथवा पाश्चात्य ज्योतिष पर आधारित पंचांग सारे संसार में प्रकाशित होते हैं, जिनमें ज्योतिष तथा तिथियों के बारे में व्यापक सूचनाएँ दी जाती हैं।

निर्देशिका—विभिन्न संस्थानों और संगठनों की उपलब्धियों और कार्य-विधियों की जानकारी प्राप्त करने में निर्देशिकाएँ सहायक होती हैं।

पुस्तक-सूची—विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों की सूचियाँ कभी स्वयं प्रकाशक की ओर से सामने आती हैं तो कभी किसी पुस्तकालय की सूची के रूप में प्रकाशित होती हैं। इन पुस्तक-सूचियों से भी नयी जानकारी मिलती है।

सरकारी प्रकाशन एवं प्रलेख—प्रत्येक देश की सरकार अपनी उपलब्धियों और कार्यक्रमों के बारे में सूचनाएँ प्रकाशित करती रहती हैं। इनसे प्रशासनिक प्रगति और अन्य सूचनाएँ मिलती रहती हैं। इस कोटि की सन्दर्भ-सामग्री में गजेटियर, अधिसूचना, योजना के प्रारूप आदि का उल्लेख दिया जा सकता है।

वांग्मय-सूची—इधर कई ऐसे सन्दर्भ-ग्रन्थ सामने आये हैं, जिनमें किसी एक विषय अथवा अनेक विषयों पर प्रकाशित ग्रन्थों की प्रामाणिक जानकारी मिलती है। शोध सन्दर्भ, हिन्दी उपन्यास सन्दर्भ जैसे ग्रन्थ इसी किस्म के हैं।

इन सारी सन्दर्भ-सामग्रियों के अतिरिक्त पुस्तकालय में सन्दर्भ-सेवा के लिए कई स्तरों पर हस्तलिखित ग्रन्थों, हस्तलिखित पोथियों की अनुक्रमणिकाओं और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री की सूचियों का संग्रहण भी किया जाता है। इधर के सन्दर्भ पुस्तकालयों में अब नये श्रव्य-दृश्य माध्यमों, टेपों, रिकार्डों, माइक्रो फिल्मों आदि का संचयन भी अनिवार्य हो गया है। सन्दर्भ-सेवा के काम आने वाली सामग्री की सबसे बड़ी विशेषता यह होनी चाहिये कि वह अत्यधिक प्रामाणिक और अद्यतन हो। तभी सन्दर्भ-सामग्री के सहारे पुस्तकालय में सही और शीघ्र सन्दर्भ-सेवा मूर्त्त हो सकती है।

सन्दर्भ-संकेत

१. लाइब्रेरी जर्नल, १६ अक्टूबर, १९८१, पृष्ठ २९८ ।
२. बुलेटिन आफ दि ए० एल० ए०, ९ जुलाई, १९१५, पृष्ठ १३४ ।
३. जेम्स आई० बायर : रेफरेंस वर्क : टेक्स्ट बुक फार स्टूडेन्ट्स ऑफ लाइब्रेरी वर्क एण्ड लाइब्रेरियन्स, पृष्ठ ४ ।
4. L. M. Harrod : The librarians glossary and reference book, p. 694.
5. "Reference service is that branch of the library's service which includes the assistance given to readers in their search for information on various subjects."
5. R. A. Colison : Encyclopaedia of librarianship, p. 2.
"The term concept of a reference library is rather a collection of written and printed resources to which people may urge for information. Is is better to look on the reference library as a living encyclopaedia."
६. जी० एल० हिगिन्स (सं०) : प्रिन्टेड रेफरेंस मैटेरियल, पृष्ठ २५ ।
"Reference work is often refered to as if it was purely and simply the answering on enquiries through the use of reference materials. In its widest cannotation, however, it may be said to encompass everything which is essential if user's queries are to be dealt with swiftly, efficiently, effectively and economically."
७. डॉ० एस० आर० रंगनाथन : रेफरेंस सर्विस एण्ड बिब्लियोग्राफी, पृष्ठ ८ ।
"Reference service in research libraries exist for and are conditioned by the needs and purpose of research."
८. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तकालय विज्ञान परिचय, पृष्ठ ३७२ ।
९. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय विज्ञान पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ २२६ ।
१०. डॉ० शमशेर गुप्ता : सन्दर्भ ग्रन्थ-स्वरूप परम्परा और इतिहास, पृष्ठ १८ ।
११. मेरी बार्टन : रेफरेंस सर्विस—ए ब्रीफ गाइड फॉर स्टूडेन्ट्स एन्ड अदर यूजर्स ऑफ लाइब्रेरी, पृष्ठ ७६ ।
"A reference service book as generally understood a book to be consulted for some definite information rather than for consultative reading."

□ □

अध्याय २०

प्रलेखन

पुस्तकालय विज्ञान के एक पृथक् शास्त्र के रूप में प्रलेखन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। १९३० ई० में सेन्ट ब्लाट पत्रिका द्वारा प्रस्तुत की गई रसायन विज्ञान तथा प्रायोगिकी से सम्बन्धित प्रलेख-सूची से ऐसी वांग्मय-सूचियों का इतिहास आरम्भ हुआ, जो प्रधानतया पत्रिकाओं के लेखों के आधार पर तैयार की जाती है। ऐसी ही एक सूची १८५८ में ब्रिटिश रायल सोसाइटी आफ साइंस ने प्राकृतिक तथा जीव वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित प्रलेखों को तैयार की। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई ऐसी सारणियों का प्रकाशन इंग्लैंड में हुआ, जिनमें प्रलेखन के आरम्भिक लक्षण मिलते हैं। वास्तव में १९३० के पहले प्रलेखन और सन्दर्भिका के बीच पार्थक्य की रेखायें नहीं के बराबर थीं। इसी कारण १८९५ में ब्रुसेल्स द्वारा आमन्त्रित अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भिका संस्थान (International Institute of Bibliography) की स्थापना के समय तक प्रलेखन को भी सन्दर्भिका का ही एक उपांग समझा गया। १९३१ में इस संस्था का नाम अन्तर्राष्ट्रीय प्रलेखन संस्थान (International Institute of Documentation) कर दिया गया, क्योंकि सूचीकरण के कार्य में संलग्न लोगों ने सन्दर्भिका से प्रलेखन को अलग रखना आवश्यक समझा। १९३७ में पुनः इस संस्था का नाम बदल कर अन्तर्राष्ट्रीय प्रलेखन संघ (International Federation of Documentation) हो गया। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने वांग्मय-सूचियों के निर्माण को प्रलेखन विज्ञान के रूप में विकसित करने में सहायता दी है। इसी कारण यूरोप के कई देशों और अमेरिका में इस शताब्दी के अन्तर्गत प्रलेखन की कई विशिष्ट पत्रिकायें प्रकाशित होती रही हैं। १९५० के आसपास तक विशिष्ट अनुसन्धाताओं और अध्येताओं के लिए प्रलेखन के महत्व को व्यापक स्वीकृति मिल गई, जिसके फलस्वरूप १९५० में भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रलेखन केन्द्र (Indian National Scientific Documentation Centre) की स्थापना हुई। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रलेखन के महत्व को पहचान कर एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में प्रलेखन का क्रमशः विकास हुआ है। प्रारम्भ में परम्परागत विधियों से प्रलेखन होता था, लेकिन अब नई तकनीकी उपलब्धियों और कम्प्यूटरों से भी प्रलेखन में सहायता ली जा रही है।

परिभाषा

प्रलेखन शब्द अंग्रेजी के डाक्यूमेंटेशन शब्द का पर्याय है, जिसका अर्थ है ऐसा अभिलेख जिसका भविष्य के लिए संरक्षण किया जा सके और जिसके आधार पर मानवीय विचारों को विकसित होने की दिशा मिले। स्वभावतः प्रलेख ने पुस्तक के परम्परा-

गत अर्थ को पीछे छोड़ दिया है और इसी नये विशिष्ट सन्दर्भ में प्रलेखन अथवा डाक्यूमेंटेशन का विकास हुआ है। आरम्भ में सन्दर्भिका और प्रलेखन के बीच पार्थक्य की रेखाएं बहुत छिन्न थीं, इसीलिए प्रारम्भ के पुस्तकालय-विज्ञानियों ने अपनी कृतियों में इन्हें एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है, जबकि अब प्रलेखन और सन्दर्भिका की अलग-अलग पहचान सुस्थिर हो गई है। डॉ० कुमुद कुमार कमल के अनुसार एक ओर जहाँ बिब्लियोग्राफी विषय, लेखन, आख्या आदि के अनुसार ऐसी ग्रन्थ-सूची बनाने की कला है, जिसमें पुस्तक सम्बन्धी सूचनाएँ संकलित की जाती हैं तो दूसरी ओर डाक्यूमेंटेशन समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, टिप्पणियों तथा अन्य सूचनाओं को वैज्ञानिक पद्धति पर सूची बनाने की कला है।[१] सन्दर्भिका के साथ प्रलेखन के इस पार्थक्य संकेत से प्रलेखन की परिभाषा की ओर इशारा मिलता है। पर्याप्त मतभेदों और भ्रांतियों के बावजूद विभिन्न पुस्तकालय-विज्ञानियों ने प्रलेखन की अनेकानेक परिभाषाएँ दी हैं।

पाल आप्लेट—प्रलेखन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव के सभी प्रकार के क्रियाकलापों के सभी अभिलेखों को संगृहीत, वर्गीकृत एवं वितरित किया जाता है।[२]

एस० सी ब्रेडफोर्ड—प्रलेखन मानव के सभी प्रकार के बौद्धिक क्रिया-कलापों के अभिलेखों के संग्रह, वर्गीकरण तथा शीघ्र उपलब्धि की कला है।[३]

जे० एच० शेरा—प्रलेखन वांग्मय संगठन का वह अंग है जो मौलिक पाठ्य-सामग्री के विशेषज्ञों में परोक्ष संचार से समर्थित है। यह कार्य इस प्रकार किया जाता है कि विशेषज्ञों को दक्षतापूर्वक अपने कार्य-सम्पादन में आवश्यक तथ्यों की प्राप्ति हो सके।[४]

एल० एम० हैरोड—सभी प्रकार के बौद्धिक कार्य-कलापों से सम्बन्धित सभी प्रकार की पाठ्य सामग्री का संग्रह करने, वर्गीकरण करने और तत्काल उपलब्ध कराने के कार्य का नाम प्रलेखन है।[५]

डॉ० एस० आर० रंगनाथन—प्रलेखन वह कार्यविधि है, जो पत्रिकाओं के लेखों आदि के आधार पर विशेषज्ञों के द्वारा सूचना रूप में तैयार की जाती है और जिसका उपयोग विशेषज्ञ ही करते हैं तथा जिस अतिसूक्ष्म, विस्तृत और द्रुतसेवा का सीधा सम्बन्ध हजारों पत्रिकाओं से प्राप्त सूचनाओं तथा विशेषज्ञों से ही होता है।[६]

प्रभुनारायण गौड़—किसी विशिष्ट ज्ञान-क्षेत्र अथवा विषय से सम्बन्धित हर प्रकार के तथ्यों अथवा सूचनाओं का सन्दर्भ-सूचियों के रूप में संग्रहण, सम्पादन, सारांशण, वर्गीकरण, अनुक्रमणीयन, प्रकाशन इत्यादि।[७]

इन सारी परिभाषाओं से प्रलेखन के बारे में कई धारणाएँ स्थिर होती हैं। विभिन्न पुस्तकालय-विज्ञानियों ने इस बात पर बल दिया है कि प्रलेखन का सम्बन्ध विशिष्ट ज्ञान से सम्बन्धित अभिलिखित सूचना से है और ऐसी सूचनाओं को अधिकाधिक उपयोगी तथा सुगम बनाने के लिए प्रलेखन का सहारा लिया जाता है। कई विचारकों

ने प्रलेखन को मनुष्य के समस्त बौद्धिक कार्य-कलापों के संग्रह और वर्गीकरण की कला के रूप में रेखांकित किया है, लेकिन ऐसा स्वीकारना समीचीन न होगा। न तो प्रलेखन कला है और न इसके माध्यम से मनुष्य की तमाम बौद्धिक उपलब्धियों को संगृहीत किया जाता है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन द्वारा दी गई प्रलेखन की परिभाषा की व्यापक प्रशंसा की गई है, क्योंकि एक ओर यह परिभाषा प्रलेखन के लक्ष्य को सूचित करती है तो दूसरी ओर पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रों का स्पर्श भी करती है। डॉ० रंगनाथन की परिभाषा में भी कई बातें खटकती हैं, जैसे—क्या प्रलेखन केवल हजारों पत्रिकाओं में उपलब्ध सूचनाओं को एकत्र करने की प्रक्रिया है और क्या पत्रिकाएँ ही नवीन सूक्ष्म ज्ञान को प्रकाशित करने का एकमात्र माध्यम है? वास्तव में नये तकनीकी संसाधनों के विकास के साथ प्रलेखन के साधनों और कार्यक्षेत्र में भी विस्तार आया है। आज पत्र-पत्रिकाओं, अनुसंधान प्रतिवेदनों, शोध-प्रबन्धों, मानकों और टिप्पणियों आदि के आधार पर विशेषज्ञों द्वारा विशेषज्ञों के लिए जो विशेष सूचनाएँ इंगित होती हैं, उन सबको प्रलेखन के अन्तर्गत समेटा जा सकता है। निश्चय ही पुस्तकालय की यह महत्त्व-पूर्ण सेवा विभिन्न विशेषज्ञों को उनके विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित सूक्ष्म और मूलभूत विचारों तथा सूचनाओं की सम्प्राप्ति का साधन है। प्रलेखन को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि पुस्तकालय विज्ञान की जिस शाखा का सीधा सम्बन्ध असंख्य पत्रिकाओं और अन्य संसाधनों के आधार पर विभिन्न विशेषज्ञों का उन विशिष्ट विषय-क्षेत्र से सम्बद्ध सूचनाएँ सूक्ष्म और शीघ्र स्तर पर प्रदान करने की व्यवस्था से हो, उसे प्रलेखन कहते हैं।

प्रलेखन का क्षेत्र और सीमाएँ

प्रलेखन विज्ञान की परिभाषा से सूचित होता है कि पुस्तकालय विज्ञान की इस प्रशाखा का सम्बन्ध विशिष्ट ज्ञान और अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों से है। यह अपने आप में एक महनीय कार्य है, क्योंकि पुस्तकालय में विभिन्न विषयों के बहुतेरे विशेषज्ञ अपनी वांछित विशिष्ट सूचना के लिए पहुँचते हैं। इन सारे विशेषज्ञों को संतोष प्रदान करने के लिए ही प्रलेखन की आवश्यकता और संकल्पना का अनुभव पुस्त-कालय विज्ञानियों ने किया है। इस बारे में पर्याप्त मतान्तर है कि पुस्तकालय और प्रलेखालय को एक माना जाय अथवा नहीं, प्रलेखन पुस्तकालय विज्ञान का ही एक अंश है अथवा एक स्वतन्त्र विज्ञान? इसमें सन्देह नहीं कि प्रलेखन अपने आपमें एक विशिष्ट और स्वतन्त्र प्रक्रिया है, लेकिन इसे पुस्तकालय विज्ञान की आधिकारिक सीमाओं से विलग नहीं करना चाहिये।

प्रारम्भ में प्रलेखन-कार्य और प्रलेखन-सेवा को ही प्रलेखन विज्ञान के दो प्रमुख अंगों के रूप में मान्यता मिली थी, लेकिन संसाधानों के विस्तार और ज्ञान के परिमाण में हुई वृद्धि के आधार पर प्रलेखन का क्षेत्र भी विस्तृत हुआ। प्रलेखन विषयक प्रारम्भिक धारणा से आगे बढ़कर डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने प्रलेखन के पाँच प्रमुख पक्ष बतलाये

हैं—प्रलेखन कार्य, प्रलेखन सेवा, सारण कार्य, प्रतिलिपि सेवा और अनुवाद। वास्तव में इन सबके बीच की विभाजक रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। प्रलेखन कार्य कहाँ समाप्त हुआ और प्रलेखन सेवा कहाँ प्रारम्भ हुई, यह कहना कठिन है। यह समूची प्रक्रिया एक नितान्त वैज्ञानिक और सूचनात्मक उपयोगी प्रक्रिया है। डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित प्रलेखन के पाँच पक्षों के आधार पर प्रलेखन सेवा की पीठिका के रूप में स्वीकारा जा सकता है। विशेषज्ञ पाठकों और अनुसंधाताओं की आवश्यकता को दृष्टिपथ में रखकर पुस्तकालय में अभिलिखित सूक्ष्म ज्ञान की अनुक्रमणी तैयार की जाती है तथा तदनुसार सूचीकृत विशिष्ट ज्ञान-सामग्री की सूचनाओं को अनुसंधाताओं तथा विशेषज्ञों के सामने उपस्थित किया जाता है। इस तरह विभिन्न विषयों की सूक्ष्मतम जानकारियों को पत्रि-काओं एवं अन्य संसाधनों से प्राप्त कर शोध के अनुरूप सूचीकृत करना प्रलेख-कार्य का पर्याय है। इसके आधार पर पुस्तकालय अपने पाठकों की प्रलेखन-सेवा करता है। प्रलेखन कार्य को वैज्ञानिकता और प्रलेखन सेवा को सुगमता प्रदान करने के लिए ही सारण, प्रतिलिपिकरण और अनुवाद की प्रक्रियायें सामने आती हैं। कम समय में पाठकों को अधिक से अधिक सन्तोष एवं वांछित ज्ञानात्मक सूचना प्रदान करने के लिए ही सारण कार्य सम्पन्न किया जाता है। लम्बे-लम्बे प्रलेखों का विषय-सार संक्षेप में तैयार कर रखा जाता है ताकि अनुसंधाता कम समय में अधिक से अधिक वांछित जानकारी प्राप्त कर सकें। विशेषज्ञों की सुविधा को ध्यान में रखकर ही प्रलेखों की हस्तलिखित अथवा अभियांत्रिक प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती हैं। प्रतिलिपि तैयार करना और प्रति-लिपि प्रदान करना भी प्रलेखन सेवा का ही अंग है। कई प्रलेखनों की सामग्री भाषा की दृष्टि से दुर्गम होती है। ऐसी सामग्रियों का अनुवाद उपस्थित करना भी प्रलेखन-सेवा का ही हिस्सा है। समय के साथ प्रलेखन के इस कार्य-क्षेत्र में लगातार विस्तार होता गया। डॉ० रंगनाथन ने प्रलेखन-प्रक्रिया की तुलना आठ पहियों वाली गाड़ी से की है, जिसके सभी आठ पहिए मिलकर प्रलेखन रूपी गाड़ी को संचालित करते हैं।

(१) प्रलेखों का अधिग्रहण
(२) प्रलेखों का संग्रह एवं व्यवस्थापन
(३) प्रलेखों का वर्गीकरण
(४) प्रलेखों का सूचीकरण
(५) प्रलेखों का सारणीकरण
(६) सन्दर्भ-सेवा
(७) प्रलेखों का अनुवाद
(८) प्रलेखों का प्रतिलिपिकरण।

इन्हीं आठ दिशाओं में प्रलेखन के निजी क्षेत्र का विस्तार हुआ है, लेकिन प्रलेखन की क्षेत्र सीमा इतनी संकुचित नहीं है। १९६६ ई० के बाद प्रलेखन का

अधिक वैज्ञानिक और तकनीकी रूप सामने आया है। यही कारण है कि अभिलिखित ज्ञान के समानान्तर प्रलेखन में नव्य तकनीकी साधनों का समावेशन भी आज की आवश्यकता बन गया है। इसीलिए भाषा-विश्लेषण नमूने की पहचान और तकनीकी साधनों का विवरण भी आज के प्रलेखन का अंग बन गया है। किसी परम्परागत पुस्तकालय में प्रलेखन के सारे नये उपकरण नहीं मिल सकते, लेकिन यह एक वास्तविकता है कि प्रलेखन की आवश्यकता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। समय के साथ प्रलेखन के क्षेत्र और उसकी सीमाओं में विस्तार आया है, उसकी प्रक्रिया में अधिक वैज्ञानिकता आयी है।

उद्देश्य

निश्चय ही प्रलेखन का प्रारम्भ और विकास मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का परिणाम नहीं है, अपितु अनुसंधान की बेचैनी तथा ज्ञान के विस्तार ने प्रलेखन को पल्लवित किया है। हर्बट कैबलस ने स्वीकार किया है—हम वाचिक अथवा लिखित भाषा द्वारा जो कुछ सम्प्रेषित करते हैं, वह सारा ज्ञान मनुष्य की विकास-प्रक्रिया का हिस्सा है, जिसे सुरक्षित रखने और सही उपयोग करने के लिए संरक्षित करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिये और इसी कारण हमारा (पुस्तकालयाध्यक्ष का) कार्य अधिक कठिन, लेकिन महत्त्वपूर्ण और आवश्यक बन गया है।[८]

इसी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की सिद्धि में प्रलेखन कई लक्ष्यों को स्पर्श करता है। विभिन्न सामाजिक स्तरों पर शक्तियों और साधनों के समाहार ने मनुष्य को जो नई दिशा दी हैं, उनके बढ़ते हुये विस्तार को इतिहास और अनुसंधान की सामग्री के रूप में सुरक्षित रखने का संकल्प प्रलेखन के माध्यम से पूरा होता है। २१वीं शताब्दी की दहलीज पर खड़े हम पुस्तकालय में उपलब्ध प्रलेखों के सहारे ही जान सकेंगे कि पिछली शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कौन-सी सूक्ष्मतर घटनायें और स्थितियाँ साकार हुई थीं। विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक उपकरणों से सम्बद्ध अनुसंधान को प्रलेखन ही प्रोत्साहित करता है। सामाजिक प्रोत्साहन के समानान्तर प्रलेखन का उद्देश्य सूचना-विस्फोट को सन्तुलित करना भी है। मनुष्य के बढ़ते हुये साधनों और बौद्धिक प्रगतियों के बीच सूचना माध्यमों का भी अप्रतिम विस्तार सामने आया है। १८वीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दी में एक भी पत्रिका नहीं प्रकाशित होती थी, १६वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हिन्दी में कम-से-कम दो सौ पत्रिकायें प्रकाशित होने लगीं और आज २०वीं शताब्दी के अन्तिम दशक के पूर्व यह संख्या बढ़कर दो हजार से भी अधिक हो गई है। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने ज्ञान के संचार साधनों में भी परिवर्तन उपस्थित किया है। आज के अनुसंधाता और विशेषज्ञ केवल पुस्तकों और पत्रिकाओं पर ही आश्रित नहीं रह गये हैं, अपितु फिल्मों, कम्प्यूटरों, टेपों, माइक्रोफिल्मों तथा अन्य तकनीकी उपकरणों से भी सूचनायें प्राप्त होने लगी हैं। स्थिति यह है कि प्रत्येक चौबीस घण्टे में तकनीकी सूचना के लगभग दो करोड़ शब्द अभिलिखित होते हैं और यदि कोई पाठक हजार शब्द प्रति मिनट पढ़ने की क्षमता रखता हो तो भी उसके लिए अद्यतन सूचनाओं को प्राप्त कर

पाना एक असम्भव कार्य होगा। ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में सूचनाओं-पत्रिकाओं, शोध-निबन्धों और नयी तकनीकों का व्यापक विस्फोट सुनाई पड़ता है। इसी विस्फोट को सन्तुलित करने के लिए प्रलेखन-सेवाओं की आवश्यकता हुई। प्रलेखन के विकास के पूर्व न तो अनुसंधान इतना सहज था और न शोध शक्ति ही इतनी संरक्षित रहती थी। प्रलेखन ने अपनी विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से शोध सम्बन्धी बाधाओं को समाप्त करने में सक्रियता दिखाई है और अनुसंधान कार्य को अधिकाधिक सुगम बनाया है। इससे मनुष्य की शोध शक्ति अधिकाधिक संरक्षित हुई है। प्रलेखन सेवा के प्रादुर्भाव के पूर्व अनुसंधाता को भूसे की ढेर में सूई की तलाश में अपने समय और श्रम को नष्ट करना पड़ता था। प्रलेखन ने न केवल अनुसंधाता के समय की बचत की है, अपितु उसकी शक्ति के क्षरण को भी रोका है। प्रलेखन ने शोधात्मक निर्णयों को अधिक से अधिक वैज्ञानिकता और सरलता दी। इतिहास साक्षी है कि उपयुक्त तथा विस्तृत सूचनाओं के अभाव में शोधकर्त्ता आसानी से निष्कर्ष तक नहीं पहुँचते थे। लेकिन अब प्रलेखन सेवा की सुविधा ने निर्णय की इस जटिलता का समापन कर दिया है। प्रलेखन के कारण ज्ञान और अनुसंधान देश और काल की सीमाओं को तोड़कर सार्वकालिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र ग्रहण कर चुका है। अब ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा पर किसी विशेष देश का एकाधिकार नहीं रह गया है, अपितु प्रलेखन सुविधा ने मानवीय ज्ञान- को समूची पृथ्वी के लिए समान बना दिया है।

प्रलेखन की इन सारी विलक्षणताओं ने एक ओर प्रलेखन के लक्ष्यों को अनुकूलता दी है तो दूसरी ओर प्रलेखन के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया है। प्रलेखन की बदलती हुई छवि ने मनुष्य को शोधवृत्ति को लगातार प्रोत्साहित किया है और ज्ञान के विशेषकृत क्षेत्रों को आलोकित किया है।

प्रलेखन के भेद

पर्याप्त व्यापक सन्दर्भ में प्रलेख की व्याख्यायें होती रही हैं। इसीलिए यह शब्द संग्रहालयों, पुस्तकालयों और अभिलेखागारों में एक साथ प्रयुक्त होता है। यही कारण है कि लम्बे अर्से तक ऐसा समझा जाता रहा कि प्रलेखन उन दस्तावेजों का पर्याय है जो संग्रहालयों और अभिलेखागारों में रखे जाते हैं। अब प्रलेख विषयक धारणा में परिवर्तन आया है और उन सभी संसाधनों को प्रलेख की परिसीमा में समेटा जा रहा है जिनके माध्यम से विचारों और उपलब्धियों को सुरक्षित रखा जा सके। स्वभावतः पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, मानचित्रों, छायाचित्रों, माइक्रोफिल्मों, कैसेटों और उन सभी साधनों को प्रलेख के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, जिनके विचारों और प्रलेख को इन श्रेणियों में बाँटने की अपेक्षा उनके प्रयोग की दृष्टि से प्रलेखों का वर्गीकरण अधिक समीचीन होगा। इसीलिए प्रलेख के चार भेदों का संकेतन डॉ० रंगनाथन ने किया है—

(१) **परम्परागत प्रलेख**—पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के रूप में परम्परा से

जो प्रलेख सामग्री प्राप्त होती आयी है, उसे परम्परागत प्रलेख कहा जा सकता है। ऐसे प्रलेख मौलिकता के, शोध-अभिरुचि, प्रारम्भिक ज्ञानार्थियों, सूचना और व्यवस्था के स्तर पर अलग-अलग वर्गीकृत किये जा सकते हैं। स्वरूप की दृष्टि से इन परम्परागत प्रलेखों को पुस्तक और पत्र-पत्रिका ही मुख्य खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। पुस्तकें भी अपने आकार, विषय और शैली की दृष्टि से कई किस्म की होती हैं और ठीक यही बात पत्र-पत्रिकाओं के सन्दर्भ में भी कहा जा सकती है।

(२) **अपरम्परागत प्रलेख**—जिन प्रलेखों के लिए सूक्ष्म प्रलेख संज्ञा का उपयोग पुस्तकालय विज्ञानियों ने किया है, उन्हें अपरम्परागत इसी आधार पर कहा जा सकता है कि इस श्रृंखला के प्रलेख पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के परम्परागत धारणा से भिन्न होते हैं। किसी पत्रिका में प्रकाशित लेख, किसी पुस्तक का कोई अंश और किसी प्रलेख का कोई हिस्सा अपनी सूक्ष्मता और अपरम्पारिक छवि के कारण इसे नये प्रलेख वर्ग में परिगणित किया जा सकता है।

(३) **नव परम्परागत प्रलेख**—इस कोटि के प्रलेख सूक्ष्म प्रलेखों से भी छोटे और विशिष्ट होते हैं। सूत्रों, मानकों, आधार सामग्रियों, समाचार-पत्रों की कतरनों, टिप्पणियों आदि की चर्चा नव-परम्परागत प्रलेखों के रूप में की जा सकती है। कई विचारकों ने ऐसे प्रलेखों को अतिसूक्ष्म प्रलेख भी कहा है।

(४) **अनुप्रलेख**—प्रलेखों की श्रृंखला का सबसे नवीन और सर्वाधिक वैज्ञानिक स्वरूप अनुप्रलेखों का है। ऐसे प्रलेखों का निर्माण भी लिपिबद्ध किया जाता है। शब्दों के माध्यम से की गई विचार-यात्रा के संग्रहणीय पड़ावों के रूप में प्रलेख की चर्चा की जा सकती है। विभिन्न पुस्तकालयों और प्रलेखन कार्य में संलग्न संस्थाओं में संग्रहीत होने वाले प्रलेखों का विभिन्न कोटियों का निर्धारण विभिन्न चिन्तकों ने अपने-अपने ढंग से किया है। इस दिशा में पहला प्रयास हैन्सन ने किया था, जिनके अनुसार प्रलेख को स्रोत के आधार पर दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **प्राथमिक स्रोत**—पुस्तकों, पत्रिकाओं, प्रतिवेदनों, प्रकाशन-सूचियों आदि के माध्यम से उपलब्ध प्रलेख प्राथमिक स्रोत कहे जाते हैं।

(२) **माध्यमिक स्रोत**—सारणी और अनुक्रमणी से जुड़ी पत्रिकाओं, ग्रन्थ-पुटियों, उद्धरणों, अनुक्रमणिकाओं, समीक्षाओं और सर्वेक्षणों से उपलब्ध प्रलेख इस कोटि के हैं।

हैन्सन के इस विभाजन को बाद में ग्रोगन ने विकसित किया और प्रलेख को तीन कोटियों में बाँटा—

(१) **प्राथमिक स्रोत**—पत्रिकाओं, शोध-प्रबन्धों, सम्मेलन के प्रतिवेदनों, व्यावसायिक प्रकाशनों और मानकों आदि से उपलब्ध प्रलेख प्राथमिक स्रोत से प्राप्त कहे जा सकते हैं।

(२) **माध्यमिक स्रोत**—सारणीकरण और अनुक्रमणी से जुड़ी पत्रिकाओं, सन्दर्भ-ग्रन्थों और तालिकाओं से उपलब्ध प्रलेख इस कोटि के हैं।

(३) **तृतीय स्रोत**—निदेशिकाओं, अब्दकोशों, पुस्तक-सूचियों आदि से उपलब्ध प्रलेखों को ग्रोगन ने तृतीय स्रोत से उपलब्ध माना है।

इन दिनों प्रलेख के रूप में जो सामग्री समकालीन पुस्तकालयों और अभिलेखागारों को प्राप्त हो रही है, उसे केवल स्रोत के आधार पर वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। सच तो यह है कि प्रलेख के विषय, उद्देश्य, स्वरूप, शैली और आकार की कसौटी पर प्रलेख को कई श्रेणियों में विभक्त करने की कोशिश की जा सकती है, लेकिन डॉ० रंगनाथन ने स्वीकार किया है कि प्रलेख सामान्यतया लिखित रूप में नहीं होता, अपितु नये तकनीकी साधनों से इन प्रलेखीय उपकरणों का विकास हुआ है। फिल्मों, तस्वीरों, टेपों, रेकार्डों, कम्प्यूटरों आदि के रूप में जो नवीन प्रलेख उपकरण सामने आये हैं, उन्हें अनुप्रलेख उपकरण कहना अवैज्ञानिक नहीं है।

निश्चय ही प्रलेखन के फैलते हुये कार्य-क्षेत्र के अनुसार प्रलेख के प्रभेदों में भी वैविध्य आया है, लेकिन डॉ० रंगनाथन द्वारा प्रस्तावित प्रलेख की चार कोटियाँ—परम्परागत, अपरम्परागत, नव-परम्परागत और अनुप्रलेख-सर्वथा वैज्ञानिक और तर्कसंगत है। प्रलेखन कार्य में संलग्न लोगों के लिए यह स्वाभाविक है कि वे इन विभिन्न कोटियों के प्रलेखों को अपने प्रलेखन-कार्य का आधार बनावें और अनुकूल प्रलेखन सेवा प्रदान करें।

प्रलेख-सार और सारणीकरण

प्रलेखन का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः पुस्तकालय अथवा संग्रहालय में उपलब्ध-प्रलेखों के सारणीयन से जुड़ा हुआ है। यह स्वीकार होने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि जब किसी प्रलेख में उपलब्ध विवरणों अथवा तथ्य को संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है तो इस संक्षिप्तीकरण को ही सारणीयन की संज्ञा देनी होगी। प्रलेखों के सारांश तैयार करने वाले व्यक्ति को सारणीयक कहा जाता है और प्रलेखन की दृष्टि से तैयार प्रलेख सारांश को प्रलेख-सार कहकर सम्बोधित किया गया है। यूरोपीय पुस्तकालय विज्ञानियों के अनुसार प्रलेख-सार किसी मूल प्राथमिक प्रलेख में दी गयी सूचनाओं के क्रम के अनुसार उसकी सारी महत्वपूर्ण सामग्री का यथासम्भव मूल लेखक की भाषा में तैयार किया हुआ सारांश होता है। वास्तव में प्रलेख-सार उन उपयोगकर्ताओं के लिए तैयार किया जाता है जिन्हें मूल प्रलेख उपलब्ध नहीं हो पाता और जिन्हें कम से कम समय में अधिक से अधिक सूचनायें एकत्र करने की बेचैनी होती है। डॉ० एस० आर० रंगनाथन के अनुसार प्रलेख-सार किसी कृति सामान्य पत्रिका के निबन्ध में वर्ण्य विषय की आवश्यक बातों पर सारांश होता है, जो प्रायः लेखक के अतिरिक्त किसी व्यावसायिक द्वारा तैयार किया जाता है।[१०] प्रलेख-सार प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव पुस्तकालय विज्ञान में बढ़ते

हुए उत्तरदायित्व के बीच अधिक तीव्रता से किया जा रहा है और अब यह मान लिया गया है कि प्रलेख-सारों की अनुपस्थिति में किसी भी पाठक के लिए अपने विशिष्ट ज्ञान के सभी प्रलेखों का अध्ययन-मनन एक कठिन कार्य है। प्रत्येक विषय से सम्बद्ध इतनी अधिक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें, गवेषणात्मक टिप्पणियाँ और सूचनात्मक सामग्रियाँ प्रकाशित हो रही हैं कि उन सबसे गुजरना सभी पाठकों के लिए सम्भव नहीं, लेकिन प्रलेख-सार की सहायता से पाठक कम समय में अपनी अभीष्ट पाठ्य-सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। मूल प्रलेख बहुत बड़ा होता है, जबकि प्रलेख-सार अपने संक्षिप्त आकार के कारण अधिक उपयोगी और सुविधाजनक होता है। निश्चय ही प्रलेखन-कार्य में प्रलेख-सारों की प्रस्तुति सबसे महत्त्वपूर्ण दिशा है।

प्रलेख-सारों के कई प्रभेदों का उल्लेख अलग-अलग दृष्टियों से किया गया है। सूचना की मात्रा, सूचना के स्वरूप और शैली की दृष्टि से प्रलेख-सार की कई कोटियाँ निर्धारित की जाती हैं, लेकिन मोटे तौर पर प्रलेख-सार सूचनात्मक कहे जा सकते हैं, जिनमें वर्णित विषयों की महत्त्वपूर्ण सूचनाओं और विवरणों की प्रधानता मिलती है। सूचनात्मक प्रलेख-सार को प्रत्यक्ष सार भी कहा जाता है; क्योंकि ऐसे प्रलेख-सार के माध्यम से पाठक बिना मूल प्रलेख से परिचित हुए भी प्रलेखन की अधिकतम सूचनायें प्राप्त कर लेता है। दूसरी ओर संकेतात्मक प्रलेख-सार पाठकों को यह निर्देश देता है कि मूल प्रलेख की वस्तु-सामग्री क्या है। यह सूचनात्मक प्रलेखन-सार की तरह पाठकों के सामने प्रलेख में वर्णित सामग्री का संक्षिप्त रूप नहीं परोसता, अपितु कम-से-कम शब्दों में पाठकों को मूल प्रलेख के बारे में मार्ग निर्दिष्ट करता है। आकार और शैली की कसौटी पर प्रलेख-सार के कई अन्य उपभेद निर्दिष्ट किये हुए हैं, लेकिन सारणीकरण की केन्द्रीय समस्या प्रलेख-सार के भेदों का निर्धारण नहीं हैं, अपितु श्रेष्ठ-सारण के गुणों का संचय है।

संसार में अभी ३६ सौ सारण पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं, जिनमें ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न दिशाओं के प्रलेख-सार प्रकाशित होते हैं। प्रलेख-सार के निर्माण में जिन मूलभूत जानकारियों और सावधानियों की अपेक्षा होती है, उनके मानकीकरण के बिना सारणीकरण मूर्त्त नहीं हो सकता। प्रलेख-सार के लेखन की पहली सावधानी यह होनी चाहिये कि उसमें मूल प्रलेख की वास्तविक आख्या अथवा शीर्षक का उपयोग किया जाय। शीर्षक बदलकर प्रलेख-सार तैयार करना शोध की दृष्टि से भ्रामक होगा। जैसे—मूल प्रलेख के शीर्षक मगही लोकगीतों में विकास शीर्षक तैयार किया जाय तो स्वभावतः मूल प्रलेख की विषय-सामग्री का संकेतन इस बदली हुई आख्या से नहीं मिलता। इसीलिए प्रलेख-सार में मूल प्रलेख की आख्या को स्वीकार करना चाहिये, यहाँ तक कि अनूदित प्रलेख के सारों में भी मूल भाषा की आख्या का संकेत होना चाहिये। प्रलेख-सारों के साथ लेखक का नाम अवश्य देना चाहिये, ताकि पाठक भ्रमित न हों। ऐसे प्रलेख-सारों के साथ लेखक के नाम देने की प्रक्रिया में यह अपनायी जाती है कि अधिकतर पहले लेखक की उपाधि या कुलनाम दिया जाता है और तब फिर नाम के

शेष अंश दिये जाते हैं। बड़े प्रलेखों के सन्दर्भ में यह असुविधा उत्पन्न हो जाती है कि बहुत अनुसन्धान के बाद भी उनके लेखकों के नाम ज्ञात नहीं होते। ऐसे प्रलेखों का सारणीकरण करते समय लेखक के नाम के स्थान पर अज्ञात लिखा जाता है। प्रलेख-सार से यह अपेक्षा भी की जाती है कि उसमें मूल प्रलेख की स्थिति विषयक सारी प्रामाणिक सूचनायें भी प्रारम्भ में ही हो। पत्रिका के नाम, खण्ड संख्या, अंक संख्या, वर्ष, अंक का माह तथा पृष्ठ-संख्या के उल्लेख के साथ-साथ कई प्रलेख-सारों में पत्रिका के प्रकाशन-स्थल तथा सम्पादन का भी नामोल्लेख भी किया जाता है। इन सारी सावधानियों से गुजरने के बाद जो प्रलेख-सार किसी भी विषय के मूल प्रलेख के आधार पर तैयार किये जाते हैं, उनकी सारी सामग्री इतनी संक्षिप्त और सुनियोजित होनी चाहिये कि अनुसन्धाता अथवा पाठक को पुस्तकालय की इस प्रलेखन-सेवा का अधिकाधिक लाभ मिल सके। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने सारणीकरण को अधिक प्रामाणिक और उपयोगी बनाने के लिए चार उपसूत्रों का संकेतन किया है—

(क) निषेधात्मक उपसूत्र—प्रलेख-सार में ऐसी कोई सूचना न दी जाय जो प्रलेख की आख्या द्वारा प्रकट होती है और प्रलेख में प्रयुक्त उदाहरणों का विस्तृत उपयोग भी प्रलेख-सार के लिए वर्जित है।

(ख) सकारात्मक सूत्र—प्रलेख-सार विषय के सूक्ष्म और विकसित विचारों को स्पष्ट करने के लिए लिखे जायँ और विषय को अधिकाधिक बोधगम्य बनाने से लिए यत्न किया जाय।

(ग) समय तत्व पर आधारित सूत्र—निबन्ध-सार का लेखन इतना कसा हुआ और सुगठित रहना चाहिये कि उसके लेखन तथा वाचन में कम-से-कम समय का उपयोग हो सके।

(घ) कर्मचारियों पर आधारित उपसूत्र—पुस्तकालय के जिन कर्मचारियों के जिम्मे सारणीकरण का महत्वपूर्ण कार्य होता है उन्हें अपनी क्षमता और पैठ के अनुरूप प्रलेख-सार करना चाहिये।

प्रलेख-सार की व्यवस्था जिन समर्थ पुस्तकालयों में है, वहाँ सारणीकरण एक अनिवार्य धर्म है। ऊपरी तौर पर सहज प्रतीत होने पर भी प्रलेख-सार का निर्माण एक जटिल बौद्धिक प्रक्रिया है; क्योंकि प्रलेख-सार को एक साथ सूचनात्मक, आदेशात्मक, बोधगम्य, सुगठित और प्रामाणिक होना चाहिये। हिन्दी में प्रलेख-सार तैयार करने और एकत्र करने की परम्परा अभी बहुत लोकप्रिय नहीं है, जबकि संसार भर के पुस्तकालयों से विभिन्न विषयों, विशेषतः तकनीकी विज्ञानों के लिए प्रलेख-सार लोकप्रिय है। आदर्श प्रलेख-सार का स्वरूप इस बानगी से सूचित होता है—

शर्मा, देवेन्द्रनाथ
ध्वनि-सिद्धान्त की पृष्ठभूमि और प्रेरणा
नया आलोचक (त्रैमासिक, मुजफ्फरपुर)
वर्ष २, अंक ६, अप्रैल-जून, १९८४
पृष्ठ २-७ ।

भारतीय काव्यशास्त्र में आनन्दवर्द्धन को ध्वनि-सिद्धांत का प्रतिष्ठापक कहा गया है, लेकिन ईसा की नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनके द्वारा रचित ध्वन्यालोक कोई सहसा व्युत्पन्न कृति नहीं है, अपितु उनके समूचे चिन्तन के कई स्रोत मिलते हैं। ध्वन्यालोक की सामग्री और उसके रचयिता की विवेचना-पद्धति से संकेत मिलता है कि आनन्दवर्द्धन ने अपने समय में प्रचलित भाषा के प्रयोगों, कालिदास जैसे कवियों की रचनाएँ, पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय चिन्तन और वैयाकरणों की स्थापनाओं से अपने ध्वनि-सिद्धान्त के अनुकूल तत्वों को ग्रहण किया। आनन्दवर्द्धन के पहले भी लोग व्यंग्यार्थ से सुपरिचित थे, ध्वन्यालोक में व्यंग्यार्थ को ही ध्वनि के रूप में स्थापना मिली। स्वभावतः ध्वनि-सिद्धान्त की प्रेरक शक्तियों के रूप में आनन्दवर्द्धन के सामने कई स्रोत रहे हैं।

प्रतिलिपिकरण

प्रलेखन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में प्रतिलिपिकरण का महत्त्व स्वीकारा गया है। किसी भी प्रलेख अथवा प्रलेख-सार की एकाधिक प्रतियाँ तैयार करने की पद्धति को प्रतिलिपिकरण कहते हैं। वास्तव में आर्थिक सीमाओं के कारण किसी भी पुस्तकालय अथवा संग्रहालय के लिए यह सम्भव नहीं कि वह पाठकों की आवश्यकताओं के तमाम प्रलेखों को मूल रूप में संगृहीत कर सके। इसके लिए प्रतिलिपिकरण की पद्धति विकसित हुई। कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक पाठकों को सन्तोष प्रदान करने की नीति के अन्तर्गत प्रतिलिपिकरण की कई पद्धतियाँ विकसित हुईं। अधिकांशतया प्रलेख अथवा प्रलेख-सार की यथार्थ प्रतिलिपि तैयार की जाती हैं और विज्ञान के नये संसाधनों के आविष्कार के बाद अब प्रलेख अथवा प्रलेख-सार की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ तैयार करना अवैज्ञानिक हो गया है। पुस्तकालय के किसी कर्मचारी द्वारा हाथ से प्रतिलिपियों के निर्माण में अधिक समय नष्ट होता है और यह प्रक्रिया व्यवसाध्य भी होती है इसीलिए प्रतिलिपियों के निर्माण में नवीन संसाधनों की सहायता ली जा रही है। इस क्रम की सबसे पुरानी पद्धति तो यही रही है कि उपलब्ध प्रलेख अथवा प्रलेख-सार का कैमरे के माध्यम से चित्र उतार लिया जाय, लेकिन छायांकन के द्वारा किया गया प्रतिलिपिकरण अलोकप्रिय होने लगा है। आज की सबसे लोकप्रिय पद्धति फोटो स्टेट अथवा जेरोग्राफिक पद्धति से संचालित प्रतिलिपिकरण है। इस प्रक्रिया में एक विशिष्ट लेंस के सामने मूल

प्रलेख या प्रलेख-सार की तस्वीर इतनी आसानी से और इतनी शीघ्रता से मनचाही संख्या में निकल जाती है कि आज के अधिकांश प्रतिलिपिकारों ने इस पद्धति को अपना रखा है। आज से सौ साल पहले माइक्रोफिल्मों के रूप में प्रलेखों के संग्रहण का सिलसिला आरम्भ हुआ था। माइक्रोफिल्म के रूप में प्रलेखों की प्रतिलिपियाँ भी अब तैयार होने लगी हैं। इधर जापान में जेरोग्राफिक प्रक्रिया का ही एक ऐसा विकसित रूप सामने आया है, जिससे अधिकाधिक वांछित मात्रा में प्रतिलिपियाँ अतिशीघ्र छपकर निकलने लगती हैं। प्रतिलिपिकरण के इन सारी नई तकनीकी पद्धतियों से गुजरने के लिए पुस्तकालय पर अतिरिक्त आर्थिक भार तो अवश्य पड़ता है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि प्रलेखन-सेवा में प्रतिलिपिकरण का अपना विशिष्ट महत्व है। विशेषतया रेखाचित्रों, दस्तावेजों, मानचित्रों, आँकड़ों, पुराने छायाचित्रों और अन्य दुर्लभ पाठ्य-सामग्रियों को बिना नष्ट किए उनकी प्रतिलिपि तैयार कर लेना किसी भी पुस्तकालय के लिए एक महत्त्वपूर्ण भविष्योन्मुखी कार्यक्रम है।

अनुवाद

एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासम्भव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। डॉ० भोलानाथ तिवारी की इस परिभाषा से सूचित होता है कि अनुवाद का मूल उद्देश्य स्रोत भाषा की रचना के भाव या विचारों को लक्ष्य भाषा में यथासम्भव उपस्थित करना है। पुस्तकालय में आनेवाली पत्रिकायें विभिन्न भाषाओं की होती हैं और पाठक के लिए यह सम्भव नहीं कि सभी भाषाओं में प्रकाशित प्रलेखों और उपलब्ध प्रलेख-सारों को पढ़ लें, क्योंकि पाठक अधिकतर बहुभाषाविद् नहीं होते। ऐसी स्थिति में पुस्तकालय में प्रलेखन कार्य से जुड़े लोगों की अनुवाद-सेवा सहायक होती है। पुस्तकालय में ऐसे अनुवादकों को प्रलेखन-विभाग में रखा जाता है, जो पाठकों की आवश्यकता के अनुरूप प्रलेखों और प्रलेखन-सारों का अनुवाद कर सके। अच्छी अनुवाद-सेवा के लिए आवश्यक है कि अनुवादक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों से भलीभाँति सुपरिचित हो, उसे विषय का ज्ञान भी होना चाहिये, ताकि विषय के ज्ञान के अभाव में किया गया अनुवाद अर्थ का अनर्थ न कर दे। पुस्तकालय में की गई यह अनुवाद सेवा अब केवल मनुष्य-केन्द्रित नहीं रह गई है, अपितु अनुवादन यन्त्रों का आविष्कार हो गया है। ऐसे अनुवाद कार्यों द्वारा प्रलेखन और प्रलेखन-सार को वृहत्तर पाठक समुदाय तक पहुँचाया जा सकता है। इसीलिए प्रलेख की एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में अनुवाद-सेवा स्थापित हुई है।

सन्दर्भ-संकेत

१. डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ २।
2. Paul Oplet : "Documentation is a process by which documents are brought together, classified and distributed—all the documents of all kinds, of all areas of human activity."
डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ २ पर उद्धृत।

3. S. C. Bread Ford : "Documentation is the art of collecting, classifying and making readily accessible the records of all kinds of intellectual activity.

   डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ २ पर उद्धृत ।

4. J. H. Shera : "Documentation is united to the aspect of bibliographic organisation which treats of the materials and needs of scholars and hence is concerned with the scholarly apparties of bibliographics indexes and abstracting service."

   डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ २ पर उद्धृत ।

5. L. M. Harrod : The librarians glossary and reference book, p. 285.

   "Documentation — The act of collecting, classifying and making readily accessible the records of all kinds of intellectual activity."

6. Dr. S. R. Ranganathan : (Edited) Documentation and its practice, p. 27.

   "Documentation may be defined as promotion and practice of bringing into use of nascent microthought by a specialist and pin-point exhaustive expeditious service of nascent microthought to specialist in spite of the continuous ever increasing cascade of nascent microthought on an ever multiplying number of specialised of subjects communicated through several thousands of periodicals."

७. डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय विज्ञान, पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ ३ ।

8. Herbert Cablaus : Librarianship and documentation, p. 11.

   "We communicate by language, be it spoken or written and the record provides that continuity, that accumulated knowledge transmulated at best into wisdom which has given man his place in the pattern of evolution. The safe keeping of and the proper use of that record is our business and makes our profession difficult but important and worthwhile."

९. डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ ७६ पर उद्धृत ।

१०. डॉ० भोलानाथ तिवारी : अनुवाद विज्ञान, पृष्ठ १७ ।

□ □

अध्याय २१

सूचना-सेवा

परिभाषा

नये तकनीकी और बौद्धिक जीवन में सूचना-विज्ञान ने अपनी अलग पहचान बनायी है। पुस्तकालय-विज्ञान में भी सूचना-सेवा की एक पृथक् शाखा उभरकर सामने आयी है। वास्तव में यह मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति भी है कि वह सूचनायें एकत्र करता है और उनका सम्प्रेषण भी करता है। सूचना-विज्ञान की सम्पूर्ण अवधारणा इसी सिद्धान्त पर केन्द्रित है कि मनुष्य उपलब्ध स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को अधिक से अधिक सही पात्रों तक पहुँचायें। पुस्तकालय की सूचना-सेवा इसी विचारधारा का विस्तार है। अनेक पुस्तकालय विज्ञानियों ने सूचना-विज्ञान और सूचना-सेवा की परस्पर सम्बद्ध परिभाषायें प्रस्तुत की हैं—

ए० आई० मिखाइलोव

सूचना-विज्ञान एक नयी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध ज्ञान-विज्ञान की सामान्य सामग्रियों और शैलियों के बारे में उपलब्ध सूचनाओं तथा उन सारी संचार-प्रक्रियाओं से है, जिनसे मौजूदा विज्ञान विषयक सूचनायें जुड़ी हैं।[१]

हैरोल्ड बोरको

सूचना-विज्ञान वह सही प्रविधि है जो किसी जानकारी के तत्त्वों और व्यवहारों का अध्ययन करता है, और इसके माध्यम से प्राप्त सूचनायें वस्तुओं की उपयोगिता अथवा महत्व को रेखांकित करती हैं।[२]

सी० जी० विश्वनाथन

सूचना-विज्ञान उन सिद्धान्तों और तकनीकों से सम्बद्ध है जिनके द्वारा संचालित होकर सुसंगठित विचार एक मानव मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक तथा अन्ततः समाज तक अन्तरित या संचरित होता है।[३]

पी० बी० मंगला

सूचना-विज्ञान सूचना विषयक सामग्री और व्यवहारों के अध्ययन से सम्बद्ध प्रक्रिया है और साथ ही इसके द्वारा सूचना-प्रवाह को संयमित करने वाले तत्वों का भी नियमन होता है।[४]

डॉ० कुमुद कुमार कमल

यह विज्ञान सूचना की प्रस्तुति से सम्बन्धित विधियों एवं तकनीकों से सम्बद्ध है, ताकि सूचनायें समुचित लागत पर सुलभ और उपयोग के योग्य हो सकें।[५]

इन सारी परिभाषाओं से सूचना-विज्ञान के बारे में कतिपय संकेत तो मिलते हैं, लेकिन पुस्तकालय विज्ञान की सूचना-सेवा-शाखा की सही जानकारी नहीं मिलती। वास्तव में ज्ञान के विस्तार के कारण आये सूचनात्मक विस्तार ने जिस तरह अध्ययन और अनुसंधान को जटिल बनाया है, उसी के अनुरूप पुस्तकालयों में सूचना-सेवा विकसित हुई है। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि पुस्तकालय को छत के नीचे अब एक साथ कई सेवायें उपलब्ध होने लगी हैं और वांछित सूचनाओं की प्रस्तुति, संग्रहण तथा सम्प्रेषण में पुस्तकालय की संलग्नता देखकर पुस्तकालय में सूचना-सेवा का महत्त्व स्वयं सिद्ध होता है। इसीलिए सूचना-सेवा की स्वतन्त्र पहचान के लिए इसे नये सन्दर्भ में परिभाषित करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। सूचना-वैज्ञानिक का कार्य सूचनात्मक-ज्ञान का वितरण करना है और इसीलिए पुस्तकालय की सूचना-सेवा उपलब्ध सूचनाओं की प्राप्ति और उनके शीघ्र सम्प्रेषण की सुविधा से सम्बद्ध है। कहा जा सकता है कि पुस्तकालय की सूचना-सेवा ज्ञान-विज्ञान के किसी भी क्षेत्र से सम्बद्ध सूचनाओं के संग्रह और सम्प्रेषण की ऐसी विलक्षण प्रक्रिया है, जिसके फलस्वरूप पुस्तकालय में पाठकों को यथातथ्य, सर्वांगपूर्ण तथा शीघ्र सूचना देने की व्यवस्था की जाती है। नये परिवेश में पुस्तकालय शब्द का अर्थ विस्तार ऐसी ही सेवाओं के कारण होने लगा है, क्योंकि आधुनिक पुस्तकालय अब केवल पुस्तकों की माँग की ही पूर्ति नहीं करते, अपितु सूचना केन्द्र की तरह अपने उपभोक्ताओं को उपयुक्त सूचनायें भी प्रदान करते हैं।

आवश्यकता और उद्देश्य

यह स्वीकार लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि पिछली अर्धशती में न केवल मानव-समाज अत्याधुनिक और जटिल हुआ है, अपितु लगातार अनुसंधानों के फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। १६५० के पूर्व हिन्दी में शोधोपाधि प्राप्त लोगों की संख्या बीस से अधिक नहीं थी, जबकि आज हिन्दी में पी-एच० डी० और डी० लिट्० उपाधि प्राप्त लोगों की संख्या पाँच हजार से ऊपर पहुँच गई है। ज्ञान का यह विस्फोट सभी क्षेत्रों में सामने आया है। इसके फलस्वरूप सभी विषयों के शोधक्रम में प्रामाणिक तथा विस्तृत सूचना की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। यातायात की सुविधाओं और प्रकाशन के विस्तार ने जितनी बड़ी संख्या में अध्ययन और अनुसंधान को प्रोत्साहित किया है, तदनुरूप सूचनाओं को भी सूक्ष्म एवं विशेषीकृत किया है। सूचना-विज्ञान का उद्भव इसी विस्तार और विशेषीकरण की प्रवृत्ति का परिणाम है। यह आवश्यक हो गया कि कहीं ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से सम्बद्ध अनेकमुखी सूचनायें एकत्र हों, जिनका उपयोग कर अनुसंधाता और पाठक संतुष्ट हो सकें। ऐसे ही विशिष्ट सूचना केन्द्र के रूप में उन पुस्तकालयों की पहचान बनी है, जहाँ सूचना-सेवा कार्यान्वित है। अनुभव किया गया कि पुस्तकालय की सूचना-सेवा के लिए ऐसी वैज्ञानिक पद्धति होनी चाहिये जिसके उपयोग द्वारा पाठकों और शोधकों के श्रम और

समय को बचाया जा सके। इसी उद्देश्य से सूचना सेवायें एक सुनिश्चित पद्धति और प्रविधि के अनुरूप संचालित होती हैं। पुस्तकालय में उपलब्ध सूचना-सेवा के कारण अनुसंधाता और पाठक को यह फैसला करने में सुविधा होती है कि प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनका लक्ष्य किस तरह पूरा हो सकता है। सूचना-सेवा के कारण उनकी समस्या कम समय में सुलझ जाती है और उनकी जानकारी समृद्ध एवं प्रामाणिक हो जाती है। सूचना-सेवा का उपयोग विभिन्न उत्पादक एवं लाभकारी परिणामों के लिए भी किया जा सकता है। यदि योजनाओं के निर्माण और समस्याओं के निराकरण में सूचना-सेवा का सही उपयोग किया जाय तो इसे नई दिशा मिलेगी। देश और समाज के सामने विभिन्न दिशाओं में उपलब्ध सूचनायें पेश कर पुस्तकालय एक ओर मूल्यों की स्थापना करता है, तो दूसरी ओर सामाजिक प्रगति से सहयोग कर अपनी कार्यकुशलता का परिचय देता है। वास्तविकता तो यह है कि पुस्तकालय की बदली हुई सामाजिक बौद्धिक स्थिति में उपयोग और परिणाम की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य-विधि है। मनुष्य का मन जिन नये-नये विचारों और सूचनाओं का आग्रही होता है, उन सबका संकेतन ही सूचना-सेवा का लक्ष्य है। सूचना-सेवा के उपयोग और संगठन आदि में काम आने वाले उपकरणों की संख्या और स्थिति में परिवर्तन हुये हैं, लेकिन इससे पुस्तकालय-विज्ञान में सूचना-सेवा के महत्त्व में कोई अन्तर नहीं आया है। सूचना के प्रस्तुतिकरण की सेवायें पुस्तकालय की नई सोद्देश्यता का एक अनिवार्य हिस्सा है। डॉ० कुमुद कुमार कमल ने स्वीकार किया है—सूचना-सेवा किसी सूचना केन्द्र द्वारा अथवा हेतु दी जाने वाली ऐसी सेवा है जो माँग की प्रत्याशा में अपने विभाग में उपलब्ध सूचना की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। यह सेवा समाचार संक्षेपण, साहित्य-सर्वेक्षण, पाठ-सूची, सार, सामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के विवरण आदि को तैयार कर तथा उन्हें परिसंचारित करके दी जाती है, जिसकी अपेक्षा भी की जाती है और जो सेवा के वास्तविक उपयोगकर्ताओं के लिए उपयोगी भी होती है।[६]

पुस्तकालय की सूचना-सेवा बहुआयामी होती है, इसीलिए सूचना विज्ञानियों ने इसके सम्पूर्ण क्षेत्र को उपयोग, संचालन, संगठन और उपकरण में परखने की कोशिश की है। उपयोग से तात्पर्य सूचना-सेवा की एक प्रक्रिया से है, जिसके अन्तर्गत सूचना और धारणा विषयक इकाइयों और भाषा पदों का अध्ययन किया जाता है। पुस्तकालय की एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में सूचना-सेवा संचालन का एक हिस्सा है, जिसका संगठन पुस्तकालय-विज्ञान के वर्गीकरण, व्यवस्थापन तथा चयन जैसे मूलभूत कार्यों से सम्बद्ध है। सूचना-सेवा के उपकरणों के अन्तर्गत उन सभी मशीनों और साधनों की उपयोगिता एवं प्रयोगवत्ता पर विचार किया जाता है, जिन्हें सूचना के संग्रहण और पुनर्प्राप्ति के लिए आवश्यक समझा जाय। स्वभावतः सूचना-विज्ञान केवल पुस्तकालय-विज्ञान की ही सम्पत्ति नहीं है, अपितु इसका अनिवार्य सम्बन्ध गणित, अभियांत्रिकी और भौतिकी आदि कई विशुद्ध विज्ञानों के साथ भी है। इतने व्यापक फलक से जुड़े होने के

नाते सूचना-विज्ञान की आवश्यकता और इसके लक्ष्यों की विशदता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

सूचना-सिद्धान्त

पुस्तकालयों में सूचना-विज्ञान की प्रस्तावना ने ज्ञान के एक नये आयाम का विस्फोट किया है। वास्तव में मनुष्य को सूचनायें देने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन-काल से पुस्तकालयों में पल्लवित होती रही हैं। ज्ञान के वितरण की जो कोशिशें अत्यन्त प्राचीन काल में शुरू हुई थीं, वे आज भी प्रचलित हैं, लेकिन तब से अब की सूचना स्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन आया है। आज सूचना-विज्ञानियों के लिए द्रुतसेवा और प्रलेखों की विपुलता पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है। आज के सूचना-विज्ञानी पुस्तकालयों में उपलब्ध ताजे से ताजे प्रलेखों के बारे में विभिन्न सूचना माध्यमों के सहारे अपने पाठकों को अपेक्षित सूचना प्रदान करते हैं। डोनाल्ड हैमर ने स्थापित किया है कि सूचना वैज्ञानिक केवल विज्ञ पाठकों को ही सूचनायें प्रदान करते हैं।[७] विज्ञ पाठक से तात्पर्य उन विशिष्ट पाठकों से है, जो विषय विशेष के बारे में सूचनाओं की अपेक्षा करते हैं, चाहे वह पाठक कोई शोधप्रज्ञ हो अथवा जीवन के किसी भी क्षेत्र से आया हुआ जिज्ञासु हो। सबकी सूचना विषयक अपेक्षाओं की पूर्ति करना ही पुस्तकालय के सूचना प्रभाग का लक्ष्य होता है। शोधप्रज्ञ अपने विशिष्ट शोध विषय के बारे में नवीनतम सूचनायें चाहते हैं, तो कोई साबुन का व्यापारी भी अपने क्षेत्र के बारे में नवीनतम जानकारी की अपेक्षा रख सकता है। इसीलिए पुस्तकालय में अलग से सूचना केन्द्र अथवा सूचना-प्रभाग एक अनिवार्यता है जो विभिन्न सूचना माध्यमों और उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर प्रभूत एवं प्रामाणिक सूचनायें प्रदान कर सकें। इस स्तर पर पुस्तकालय में सूचना विज्ञानी, अनुसंधाता और जीवन के किसी भी क्षेत्र से आये सूचना जिज्ञासु को एक जैसी सूचना-प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। सूचना-विज्ञान का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि सूचना आवश्यकताओं की पहचान की जाय और सूचना कार्यक्रम का सही उपयोग संबर्द्धन हो। सूचना-विज्ञान प्रभाग के माध्यम से जो लोग सूचनायें प्राप्त करते हैं, उन्हें संतोष प्रदान करने के लिए सूचना विज्ञानियों को कई सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं, तभी सूचना-सिद्धान्त मूर्त होता है।

सूचना सिद्धान्त की पहली चेष्टा यह है कि सूचना के उपयोगकर्त्ताओं की पड़ताल की जाय। साक्षात्कारों, सर्वेक्षणों और जिज्ञासाओं की व्यापक छानबीन से इस निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है कि उपयोगकर्त्ताओं की सूचना विषयक आवश्यकतायें कौन-सी हैं। इस क्रम में सूचना-सामग्रियों और उपयोगकर्त्ताओं के स्तर की जानकारी भी अपेक्षित होती है, जो उपयोगकर्त्ता अपनी सूचनात्मक माँग की व्याख्या भी नहीं कर सकते और न उपलब्ध सूचना सामग्रियों का उपयोग करना जानते है, उन्हें सूचना उपयोग के बारे में सही प्रशिक्षण देने का यत्न भी सूचना-विज्ञान करता है। कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से ऐसी योजनायें बनायी गई हैं, जिनके माध्यम से

सूचना उपयोगकर्त्ताओं को सूचना-सेवा के अधिकतम उपयोग का प्रशिक्षण दिया जा सके। इसके लिए संगोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं, मार्ग-दर्शक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, परिचयात्मक कार्यक्रम चलाये जाते हैं और अब औपचारिक शिक्षण में भी सूचना सामग्रियों के उपयोग की प्रक्रिया समाविष्ट की गई है। इन सारे प्रयासों के द्वारा सूचना-विज्ञान प्रभाग को अपेक्षित विस्तार दिया जा सकता है।

एशोसियेशन आफ स्पेशल लाइब्रेरी एण्ड इन्फोर्मेशन ब्यूरो (ASLIB, लंदन, १९२४), आल यूनियन इंस्टीच्यूट आफ साइंटिफिक एण्ड टेकनिकल इन्फोर्मेशन (VINTI, मास्को, १९५२), इंडियन एशोसियेशन आफ स्पेशल लाइब्रेरीज एण्ड इन्फॉर्मेशन सेन्टर्स (आएलक, कलकत्ता, १९५५), डिफेंस साइंस इन्फॉर्मेशन एण्ड डाक्यू-मेंटेशन सेन्टर (DESIDOC, दिल्ली, १९६७), इन्टरनेशनल इन्फॉर्मेशन सिस्टम फार अग्रिकल्चरल साइंसेस एण्ड टेक्नोलाजी (AGRIS रोम, १९६९), न्यूक्लियर इन्फॉर्मेशन सर्विस (INIS, वियाना, १९७०), नेशनल इन्फॉर्मेशन सिस्टम साइंस एण्ड टेक्नोलाजी (NISS, दिल्ली, १९७३) जैसी संस्थाओं के द्वारा सूचना विज्ञान का विस्तार लगातार हो रहा है और सूचना सामग्री पाठकों को यथातथ्य, सर्वांगपूर्ण और शीघ्र प्रदान करने की सेवा के रूप में सूचना सेवी संस्थायें लोकप्रिय हो रही हैं। सूचनायें इतनी अधिक और इतनी आवश्यक हैं कि उन सबको एकत्र कर पाना किसी मनुष्य अथवा किसी संस्था के लिए भी कठिन है। यूनेस्को के एक अनुमान के अनुसार संसार में हर वर्ष कम-से-कम छ: लाख प्रलेख प्रकाशित होते हैं और २४ घण्टों में लगभग पाँच हजार पृष्ठों का प्रकाशन तो संसार भर की विभिन्न भाषाओं में अवश्य होता है। इतने फैले हुए सूचना-संसार से अपेक्षित सूचनाओं को प्राप्त करना और उनके द्वारा सही पाठकों को सही संतोष प्रदान करना ही सूचना विज्ञान का मूल सिद्धान्त है।

सूचना संग्रहण और सूचना पुनर्स्थापना

सूचना विज्ञान की प्राथमिक प्रक्रिया सूचनाओं से सम्बन्ध है। यदि पुस्तकालय अथवा सूचना केन्द्र के लिए उपलब्ध सूचनाओं के संग्रहण की सही व्यवस्था न हो तो न केवल जिज्ञासुओं और अनुसंधाताओं को अपार असुविधा होगी, अपितु स्वयं सूचना सेवियों को भी लगातार शर्मिन्दगी और कष्ट का सामना करना पड़ेगा। इसीलिए सूचना के संग्रहण और उसकी पुनर्स्थापन के यत्न को अधिकतर एक दूसरे से संयुक्त कर परखा गया है। कैलविन मूर्स ने इस प्रक्रिया को ज्ञान भण्डार से विषय विशेष के अन्तर्गत विशिष्टता के अनुसार सूचना की खोज और उसको पुनः प्रतिष्ठापन बतलाया है।[८] तात्पर्य यह है कि उपलब्ध और उत्पादित सूचनाओं का संग्रहण जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही प्रासंगिक भी है। सूचना की यह प्रस्तुति वास्तव में एक किस्म की पुनर्स्थापना ही है। पुस्तकालय का सूचना प्रभाग अपने यहाँ नवीन और प्राचीन विविध विषयात्मक सूचनायें उपलब्ध रखता है, सूचनाओं के प्रमाणीकरण के बारे में सुनिश्चित होता है, उपलब्ध सूचनाओं के संग्रहण की एक सही व्यवस्था देता है और तब अपने विज्ञ जिज्ञासुओं

के सामने अभीष्ट सूचना प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। सूचना-संग्रहण और पुनर्स्थापना की दिशा में कई प्रक्रियायें एक साथ पल्लवित हुई हैं। सूचना-संग्रहण की परम्परागत पद्धति तो यही है कि तमाम उपलब्ध सूचनाओं की वर्णानुक्रम से अनुक्रमणी बना ली जाय, ताकि सूचनाओं की प्रस्तुति में सुविधा मिले। यह वर्णानुक्रम पर आधारित अनुक्रमणी विषय, विशिष्ट विषय, लेखक और शृङ्खला आदि के धरातल पर कई किस्म से बनाई जा सकती है। वर्गीकरण और सूचीकरण की मूलभूत पद्धतियों को अपनाते हुए सूचनाओं की अनुक्रमणी तैयार की जाती है। अनुक्रमणी के अनेक प्रभेद स्वीकारे गये हैं और उसके निर्माण की भी परम्परागत एवं अपरंपरागत कई विधियाँ प्रचलित हैं, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि अनुक्रमणी ही वह क्रमबद्ध सुव्यवस्थित सूची है, जिसमें प्रत्येक विषय की प्रत्येक रचना या लेख के बारे में इतनी प्राथमिक सूचना मिल जाती है कि उसके आधार पर सूचित विषय को पहचाना जाय अथवा उसे खोजा-पाया जा सके। अनुसंधाता जो भी सूचनायें प्राप्त करना चाहता है, उसकी जानकारी के लिए अनुक्रमणी से बेहतर सूचना-संग्रहण की प्रक्रिया नहीं हो सकती। डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने अनुक्रमणी के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रलेख अथवा सूच्य विषय को व्यावहारिक सिद्धान्तों के आधार पर इस तरह निरूपित किया जाता है कि विषय शीर्षकों में कम-से कम शब्दों का प्रयोग करते हुए एक मानक सूची तैयार हो सके। इस पद्धति को अपेक्षित लोकप्रियता नहीं मिली है, लेकिन सूचना-संग्रहण और पुनर्स्थापना के लिए अपनायी गई कुछ नई अपरम्परागत पद्धतियाँ विदेशों में बड़ी लोकप्रिय हुई हैं। इन नवीन पद्धतियों का सम्बन्ध नये तकनीकी संसाधनों से है, इसीलिए फिचर कार्ड, पंचकार्ड, क्विक पद्धति और स्वचालित कम्प्यूटर पद्धति जैसी नव्यतम पद्धतियों के कारण सूचना-संग्रहण के नये-नये उपकरण सामने आये हैं। वास्तव में सूचना-संग्रहण और, सूचना-पुनर्स्थापना की प्रक्रिया अब पहले की तरह आसान और केवल अनुक्रमणी पर आधृत नहीं रह गयी है। कम्प्यूटरों, माइक्रो-फिल्मों और अन्य नवीन आविष्करों ने अनेक यांत्रिक विधियों को पल्लवित किया है।

सूचनाओं के संग्रहण एवं पुनर्स्थापना में संक्षेपण और अनुवाद के महत्व को भी रेखांकित किया जा सकता है। संक्षेपण के माध्यम से उपलब्ध सूचनाओं का सारांश इस तरह व्यवस्थित होना चाहिए कि सूचनाओं का सही प्रक्षेपण हो सके। बहुत सारी सूचनायें अन्य भाषा में प्राप्त होती हैं, जिनका अनुवाद करके ही सूचना को उयपोग में लाया जा सकता है। इस प्रकार सूचनाओं के संग्रहण और पुनर्स्थापन में अनुवाद-कार्य की भी भूमिका है। संक्षेपण और अनुवादन की कई निजी समस्यायें सामने आती हैं, लेकिन पाठकों को संतोष को प्राथमिकता देने वाले सूचना विज्ञानी इन समस्याओं को अपनी कुशलता से समाधान कर लेते हैं।

सूचना-सेवा का सारा संगठन इस बिन्दु पर आधारित है कि सूचना केन्द्र अथवा पुस्तकालय में विभिन्न विषयों के बारे में विविध सूचनायें प्रामाणिक और अंतिम तौर पर कितने व्यवस्थित ढंग से संगृहीत है और उनके सही समय पर पुनर्स्थापना की कितनी सुगम प्रक्रिया है। इन्हीं व्यवस्थागत सुचारुताओं के कारण सूचना-सेवा उपयोगी और वैज्ञानिक हो सकती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ १०२।

"Information science is a new scientific discipline concerned with the patterns and general properties of science information as well as the laws governing all communication processes actually those of science information activities."

२. उपरिवत्

"Information science is a true discipline that investigates the properties and behaviour of information and the means for processing information of optimal accessibility and usability."

३. उपरिवत्, पृष्ठ १३०।

"Information science as a discipline which is concerned with the study of the properties and behaviour of information as well as the factors influencing the flow of information."

४. डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ १०३।

५. उपरिवत्, पृष्ठ १२४।

६. डोनाल्ड पी० हैमर : दि इन्फार्मेशन एज, पृष्ठ १४।

७. द्वारकाप्रसाद शास्त्री : वांग्मय सूची और प्रलेखन, पृष्ठ १२९ पर उद्धृत।

□ □

अध्याय २२

कम्प्यूटर-सेवा

कम्प्यूटर का स्वरूप

विज्ञान की उच्च तकनीक और मनुष्य की विकास-यात्रा का सबसे नवीन उपक्रम कम्प्यूटर है। इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने को उद्यत वर्तमान मानव-सभ्यता कम्प्यूटर के रूप में एक ऐसे यन्त्र का उत्तरोत्तर पक्षधर बनती जा रही है, जो हमारे लगभग सभी कार्य-व्यापार में विश्वसनीय साथी बनकर उभरा है। शिक्षा और उद्योग, व्यवस्था और संचालन, संचार और नियन्त्रण, जैसे क्रिया-क्षेत्रों की तरह पुस्तकालय विज्ञान का भविष्य भी धीरे-धीरे कम्प्यूटरों से जुड़ता जा रहा है। इसीलिए आने वाले वर्षों में पुस्तकालय की संकल्पना कम्प्यूटरों के बिना नहीं की जा सकेगी और पुस्तकालयों में अनिवार्यतः कम्प्यूटर सेवा का एक विशिष्ट प्रभाव होगा।

कम्प्यूटर को एक ऐसे यन्त्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो सूचनाओं के ग्रहण, संरक्षण, प्रस्तुतिकरण और प्रस्तावन में सक्रिय होती हैं। कम्प्यूटर से प्राप्त सूचनायें ही कम्प्यूटर की सम्पूर्ण कार्य-विधि का मूलाधार हैं। कम्प्यूटर एक विद्युत-कीय उपकरण है, जिसके आविष्कार के पहले समस्याओं के समाधान के लिए बहुत सारी मानसिक और यान्त्रिक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता था, जबकि कम्प्यूटर ने ऐसी तमाम विसंगतियों और परेशानियों को समाप्त कर दिया है। प्रारम्भ में कम्प्यूटरों को एक तीव्र-तर गणना यन्त्र के रूप में विकसित किया गया था, लेकिन अब कम्प्यूटरों का उपयोग इतना बहुआयामी हो गया है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी गति, संरक्षण क्षमता, नियन्त्रण-कौशल, निवेश (input) और निर्गम (output) की विलक्षणता के कारण कम्प्यूटर भावी जीवन का सबसे अनिवार्य हिस्सा होगा। कम्प्यूटर की जिन मूलभूत विलक्षणताओं के कारण इस अनूठे यन्त्र को व्यापक विस्तार मिला है, उनमें कम्प्यूटर की अत्यन्त तीव्र गति सर्वप्रमुख है। थॉमस एक्वीनस के सम्पूर्ण साहित्य में उपलब्ध लगभग तेरह करोड़ शब्दों की प्रामाणिक अनुक्रमणिका तैयार करने में पचास विद्वानों को चालीस वर्ष लग सकते हैं, जबकि कम्प्यूटर की सहायता से कुल दो आदमी मिलकर यह काम एक वर्ष से भी कम समय में समाप्त कर सकते हैं। इस तेजी के समानान्तर कम्प्यूटरों में सूच-नाओं के संरक्षण की अपूर्व क्षमता होती है। इतनी बड़ी मात्रा में सूचनाओं और अन्य विचार-सामग्रियों का संरक्षण किसी मानव मस्तिष्क अथवा संग्रहालय के वश की बात नहीं। अपनी तीव्रता और भण्डारण की विशाल क्षमता के बावजूद कम्प्यूटर नितान्त शुद्ध निष्कर्ष तक पहुँचता है और उसकी बहुविज्ञता से इन्कार नहीं किया जा सकता। निश्चय ही कम्प्यूटर कोई सहायक यन्त्र, परिगणक अथवा निर्णायक साधन नहीं है, यह तो मनुष्य की सभी उपलब्धियों के क्षेत्र में उसकी सहायता करने वाला स्व-चालित यन्त्र है। यन्त्र

होने के नाते कम्प्यूटर मनुष्य की तरह थकान की शिकायत नहीं करता और न उसकी एकाग्रता भंग होती है। कम्प्यूटर की कर्मठता अनूठी है, इसीलिए अमेरिका में १५ फरवरी १९४६ के जन्मे इस यन्त्र ने आज के समूचे जीवन-व्यापार को अपने कार्य-क्षेत्र में समेट लिया है। पुस्तकालय भी कम्प्यूटर के कार्य-क्षेत्र का अपवाद नहीं है।

पुस्तकालय में कम्प्यूटर की उपादेयता

पुस्तकालयों में कम्प्यूटर के उपयोग की दिशायें बहुआयामी हैं। अत्याधुनिक सांख्यिकी और व्यवस्थापन की सारी दिशाओं में कम्प्यूटर आज मनुष्य का सबसे विश्वसनीय साथी बन गया है तो पुस्तकालय विज्ञान इससे अछूता कैसे रह सकता है। अध्ययन और अनुसंधान को कम-से-कम समय में अधिक से अधिक पाठकों के बीच विस्तार देने के पुस्तकालयीन संकल्प की सिद्धि में कम्प्यूटर सबसे नवीन और गतिशील सहायक है। यही कारण है कि संसार के आधुनिकतम पुस्तकालयों में कम्प्यूटरों का विनियोग प्रचुर मात्रा में होने लगा है। पुस्तकालयों के बढ़ते हुए कार्य-व्यापार, पाठकों और पुस्तकों की बढ़ती हुई संख्या, पत्रिकाओं और प्रलेखों के फैलते हुए अम्बार तथा पुस्तकालय की लगातार बढ़ती जा रही जिम्मेदारियों के बीच यह सर्वथा स्वाभाविक है कि कम्प्यूटर जैसे तीव्र और बहुआयामी साधन का उपयोग किया जाय। पुस्तकालय की कार्यक्षमता को अधिक विस्तार देने तथा उपयोगी बनाने में कम्प्यूटरों के योगदान से सहायता मिल सकती है। इनसे न केवल कर्मचारियों तथा पाठकों के समय की बचत होगी, अपितु धन की बचत भी होगी और काम अधिक तेजी से अधिक व्यवस्थित रूप में होगा। पुस्तकालय में कम्प्यूटरों के प्रवेश से कई नयी सेवायें साकार होंगी और पुस्तकालय में पारस्परिक सहयोग को प्रोत्साहन मिलेगा। संसार के जिन पुस्तकालयों में कम्प्यूटरों का विनियोग प्रचलित है, वहाँ पुस्तकालय की कार्यक्षमता, लोकप्रियता और व्यवस्था में आश्चर्यजनक नवीनता आयी है। भारत जैसे गरीब देश में सभी पुस्तकालयों के लिए कम्प्यूटरों को खरीद पाना अभी दुष्कर प्रतीत होता है, लेकिन आने वाली शताब्दी में कम्प्यूटर-विहीन पुस्तकालय की कल्पना नहीं की जा सकेगी। बेहतर तो यह होगा कि पुस्तकालय में कम्प्यूटरों के वैविध्यपूर्ण उपयोग और महत्त्व को देखते हुये किसी विशिष्ट नगर या क्षेत्र के कई पुस्तकालय मिलकर भी कम्प्यूटर की सहकारी तौर पर व्यवस्था करें। आने वाले दशकों में कम्प्यूटर पुस्तकालय की प्रत्येक शाखा में समान रूप से सहायक सिद्ध होने वाले हैं। पुस्तकालय की व्यवस्था और संचालन से लेकर पुस्तक चयन, परिग्रहण, वर्गीकरण, सूचीकरण, प्रलेखन, और संदर्भ-सेवा जैसे सभी प्रभागों में कम्प्यूटर का बहुआयामी उपयोग आने वाले दिनों में होगा। जितनी तेजी के साथ कम्प्यूटर का विनियोग ज्ञान और संचार, उद्योग और व्यवसाय, प्रशासन और चिकित्सा जैसे सभी क्षेत्रों में होने लगा है, उतनी ही तीव्रता से कम्प्यूटर-सेवा का समावेशन पुस्तकालय विज्ञान की विविध दिशाओं में सम्भव है।

पुस्तकालय-व्यवस्थापन में कम्प्यूटर

जिस तरह कम्प्यूटर कानून और व्यवस्था, प्रशासन और प्रबन्धन को समाज के अन्य क्षेत्रों में सहायता देता है, उसी तरह यह पुस्तकालय के संचालन और व्यवस्था में भी सहायक है। ऐसे किसी पुस्तकालय की कल्पना हम नहीं कर सकते, जिसमें सारा काम अस्त-व्यस्त तथा बिना किसी नियन्त्रण के हो। व्यवस्था को अधिकाधिक वैज्ञानिक तथा गतिशील बनाने के लिए कम्प्यूटर की सहायता पुस्तकालय के संचालन में ली जा सकती है। कम्प्यूटर यह संकेत देगा कि पुस्तकालय में कार्यरत लोग अपना काम कितनी दक्षता से कर रहे हैं और पुस्तकालय की कुल सम्पदा का कैसा उपयोग किया जा रहा है। इसे ही नये पुस्तकालय विज्ञानियों ने पुस्तकालय गृह-प्रबन्ध संक्रिया (Library house keeping operation) कहा है। कम्प्यूटरीकृत प्रबन्धन कुछ विशिष्ट पुस्तकालयों के लिए ही कारगर नहीं होगा, बल्कि सार्वजनिक और अकादमिक सभी कोटियों के पुस्तकालयों में समान रूप से प्रयुक्त होगा। यह प्रक्रिया अधिक सस्ती, तेज और सार्थक होगी। कम्प्यूटरों के माध्यम से यह आसानी से ज्ञात हो सकेगा कि पुस्तकालय की कुल संपदा कितनी है अथवा कौन-सी सामग्री किसे प्रदान की गई। स्वभावतः कम्प्यूटर पर आधारित व्यवस्था में पुस्तकालय की समूची चल-अचल सम्पदा के नियन्त्रण के साथ-साथ व्यवस्था की सामान्य कार्य-विधियों की सुविधा मिलती है। प्रत्येक पुस्तकालय में पुस्तकों एवं अन्य ज्ञान-सामग्रियों का आगम और निर्गम एक नियमित चक्र के अधीन होता है। इस चक्र के नियंत्रण की पूरी जिम्मेदारी पुस्तकालय के अधिकारियों और प्रबन्धकों पर रहती है। कम्प्यूटर के माध्यम से पुस्तकालय की इस चक्र क्रमानुसार व्यवस्था का वैज्ञानिक नियन्त्रण सम्भव है। पुस्तकालय की कुल सामग्री कितनी है, कौन-सी सामग्री पाठकों और जिज्ञासुओं को दी गई है, किस सामग्री कब तक वापस होगी और वह सामग्री कब तक अन्य उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध होगी, इस सब का लेखा-जोखा कम्प्यूटर उपस्थित करेगा। पुस्तकालय के व्यवस्थापन में कम्प्यूटर की शुरूआत १९६० के बाद ब्रिटेन के कई पुस्तकालयों में हुई और क्रमशः इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

कम्प्यूटर द्वारा पुस्तक-चयन, पुस्तकादेश एवं परिग्रहण

पुस्तकालय के संचालन में कम्प्यूटर के उपयोग का एक विशिष्ट क्षेत्र पुस्तक-चयन, पुस्तकादेश और पुस्तकों के परिग्रहण से जुड़ा हुआ है। कम्प्यूटरों ने पुस्तकालय में पुस्तक-चयन प्रक्रिया को अत्यधिक वैज्ञानिक एवं नवीन संस्कार प्रदान किये हैं। इस यन्त्र के आविष्कार ने पुस्तकालयों को सहायक सूचनाओं और उपलब्धियों से समृद्ध किया है। अधुनातन पुस्तकालयों में पुस्तक-चयन अब पहले की तरह उलझा हुआ और श्रमसाध्य कार्य नहीं रह जायेगा, क्योंकि कम्प्यूटर की सहायता से अध्ययन और अनुसंधान की भावी दिशाओं के बारे में पूर्वानुमान लगाये जा सकते हैं तथा समकालीन रुचि का आसानी से पता लगाया जा सकता है। कम्प्यूटरीकृत पुस्तकालय में व्यवस्थापकों,

अधिकारियों और चयन-समिति के सदस्यों के सामने नये-से-नये क्षेत्र की ताजी सूचनायें कम्प्यूटर उपस्थित कर सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन और कई यूरोपीय देशों में पुस्तकालयों की पुस्तक-चयन प्रक्रिया अब पूरी तरह कम्प्यूटरों पर आश्रित हो गई है। पुस्तकालय और उसके उपभोक्ताओं के लिए उपयुक्त सही पाठ्य-सामग्री के संधान का कार्य जितने कम समय में जितनी कुशलता से कम्प्यूटर कर सकता है, कर्मचारियों और अधिकारियों की लम्बी कतार भी उतनी दक्ष नहीं हो सकती। पुस्तक-चयन की ही तरह पुस्तकादेश और परिग्रहण की प्रक्रियायें भी अब कम्प्यूटरीकृत हो गई हैं। सामान्यतया पुस्तकादेश की प्रक्रिया को पुस्तकालय में एक मामूली कार्यालय सहायक द्वारा सम्पन्न कराया जाता है, जबकि कम्प्यूटरों ने इस कार्य को अधिक सरल और वैज्ञानिक बना दिया है। पुस्तकादेश और परिग्रहण की सारी कार्यविधि कम्प्यूटर के लिए प्रधानतया इस जानकारी पर आधारित होती है कि वांछित पाठ्य-सामग्री का उपलब्धि स्थल कौन-सा होगा, वांछित सामग्री की पुस्तकालय में स्थिति क्या है, अपेक्षित सामग्री का आदेश कभी पहले तो नहीं दिया गया है, अपेक्षित सामग्री के आ जाने पर भुगतान हुआ अथवा नहीं और पुस्तक-चयन सूची तथा प्राप्त सामग्री में कितनी समानता है। इन सारी बातों पर ध्यान देते हुये कम्प्यूटर में निवेश और निर्गम की प्रक्रिया समस्याओं का समाधान करती है। पुस्तक-चयन से लेकर पुस्तकादेश देने और फिर उनके उचित स्थान पर परिग्रहण में कम्प्यूटर सहायक होते हैं।

कम्प्यूटर द्वारा वर्गीकरण

पुस्तकालय में उपलब्ध पाठ्य-सामग्री के समीचीन वर्गीकरण में भी कम्प्यूटर का योगदान लिया जाता है। कम्प्यूटरों के सहारे विभिन्न भाषाओं में विविध विषयात्मक पाठ्य-सामग्री को विविध वर्गों में विभाजित करना सुगम हो गया है। पुस्तकालय की गृह प्रबन्ध संक्रियाओं में सम्पूर्ण बाह्य सामग्रियों का व्यवस्थित वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण कार्य है। कम्प्यूटर द्वारा स्वीकृत विशिष्ट कोड के सहारे यदि वर्गीकरण की प्रक्रिया अपनायी जाय तो यह अधिक सुविधाजनक ढंग होगा। पुस्तक-चयन की वैज्ञानिकता और परिग्रहण की सुव्यवस्था के अनुरूप उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण भी अपेक्षित है। इसके लिए कम्प्यूटरों ने कोर फाइल (Core Files) की प्रविधि अपनायी है। जिसके अन्तर्गत अलग-अलग श्रेणियों में पुस्तकों एवं अन्य सामग्रियों को विषयानुसार विभाजित किया जाता है। इसके लिए कम्प्यूटर जिस विशिष्ट प्रारूप को अपनाता है, उसका मूलाधार कम्प्यूटर की वर्गीकृत फाइलें होती हैं। प्रत्येक फाइल अथवा डाटा बेस (Data Base) विशिष्ट विषय वर्गों की अलग पहचान का सूचक होता है। कम्प्यूटरों द्वारा इन्हीं के सहारे सारी उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण किया जाता है। रोजर हन्ट ने कहा है कि कम्प्यूटर के प्रवेश से न केवल पुस्तकों को विषयानुसार वर्गीकृत किया जा सकेगा, बल्कि पृष्ठ, अनुच्छेद और सन्दर्भ के विशिष्ट केन्द्रीय क्षेत्रों के अनुसार भी उन्हें विश्लेषित करना सुगम हो जायेगा।[1]

नये पुस्तकालय विज्ञानियों ने लक्षित किया है कि वर्गीकरण की अपेक्षा सूचीकरण के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग अधिक कारगर और उपयोगी है। एरिक जे० हन्टर ने लिखा है कि पुस्तकालय सूची ज्ञान के द्वार की कुंजी है, जो अब तक हमेशा बहुत ही कार्यदक्ष प्रक्रिया नहीं रही, लेकिन कम्प्यूटरीकृत होने के बाद यह सुनहरे भविष्यवाली सुनहरी कुंजी होगी।[2]

कम्प्यूटर से सूचीकरण

पुस्तकालय में कम्प्यूटरों के प्रवेश का सबसे व्यापक और महत्वपूर्ण प्रभाव पुस्तकालय की सूचीकरण प्रक्रिया पर पड़ेगा। पिछले दशक से सूचीकरण की प्रविधि में जो क्रान्ति आयी है, उसका बहुत सारा श्रेय कम्प्यूटरों को दिया जा सकता है। अब तक पुस्तकालय को सूचियाँ कुल सम्पदा की जानकारी ही देती थीं, लेकिन अब इनका वृहत्तर उपयोग होने लगा है। सूचीकरण की कम्प्यूटरीकृत प्रक्रिया में न केवल नये सूचनांक व्यवस्थित होंगे, बल्कि पुस्तकालय में कई नये उपकरण भी समाविष्ट होंगे। सूचीकरण की नयी संकल्पना की दिशा में १९६४ से प्रयोग आरम्भ हुये हैं और तब से अब तक कम्प्यूटरों ने पुस्तकालय की सम्पूर्ण सम्पदा का अनूठा, वैज्ञानिक और सुविधाजनक सूचीकरण किया है। कम्प्यूटर ने सूचीकरण के विधान को न केवल यांत्रिक बनाया है, बल्कि विभिन्न फाइलों, अभिलेखों और अध्ययन-दिशाओं का मानकीकरण भी किया है। इसीलिए सूचीकरण की प्रक्रिया में सूचीकृत किये जाने योग्य जानकारी के निर्माण से लेकर उक्त जानकारी का सूची के रूप में उपयोग तक नये किस्म से होने लगा है। इससे न केवल समय और श्रम, धन और असुविधा में बचत होगी, पुस्तकालय अधिक सक्रियता से अधिक दक्षतापूर्वक कार्य कर सकेंगे। ऐसे सूचीकरण में कम्प्यूटरों में पुस्तकालय की सम्पूर्ण सम्पदा के बारे में जानकारी विद्यमान रहती है। यह पाठकों के लिए बहुत ही सुविधाजनक होता है। लेखक अथवा पुस्तक की आख्या के अनुसार कम्प्यूटर को आरम्भ कर यदि उसके वांछित बटन को दबाया जाय तो कम्प्यूटर के पर्दे पर पुस्तक की क्रामक संख्या उभर आयेगी। कम्प्यूटर द्वारा प्राप्त इस क्रामक संख्या के सहारे पुस्तकालय में विद्यमान अथवा अभिलेख को प्राप्त करना बहुत कठिन नहीं होगा। निश्चय ही पुस्तकालय के कर्मचारियों और उपभोक्ताओं को एक साथ हर स्तर पर सहायता देने में कम्प्यूटर सहायक होता है।

सूचीकरण की ही तरह कम्प्यूटरों का उपयोग प्रलेखन-सेवा में भी किया जा रहा है। उपयोगकर्त्ता और प्रलेखक दोनों की सहायता की दिशा में कम्प्यूटर का योगदान अधुनातन पुस्तकालयों में अनिवार्य हो गया है। विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक ग्रन्थ-सूचियों के निर्माण में कम्प्यूटरों के उपयोग का जैसा विस्तार हुआ है, उसी अनुपात में पाठ्य-सामग्री विषयक सूचनाओं की पुनर्प्राप्ति में भी कम्प्यूटर सहायक है। यद्यपि कम्प्यूटर का उपयोग अभी सारणीकरण के कार्य में नहीं किया जा रहा है, लेकिन समय की बचत और धन की न्यूनता की दृष्टि से इस दिशा में अध्ययन हो रहे

हैं कि सारणीयन में कम्प्यूटर को किस प्रकार सक्रिय बनाया जाय। अनुक्रमणिका तैयार करने की पारम्परिक प्रणाली में कम्प्यूटर की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन नयी अनुक्रमणिका-विधियों में कम्प्यूटर की सहायता आवश्यक हो गई है। डॉ० कुमुद कुमार कमल ने कहा है—पुस्तकालयों के बहुत से ऐसे काम जो पुस्तकालयों के कार्मिक स्वयं सम्पादित करते रहे हैं, अब कम्प्यूटरों द्वारा किये जाते हैं। कम्प्यूटरों की कार्यक्षमता और स्मरण शक्ति चूंकि बहुत अधिक होती है, इसलिए कम्प्यूटरों का उपयोग प्रलेखन और सूचना-विज्ञान के क्षेत्र में भी किया जाने लगा है। वर्तमान समय में तो अब बहुत-सी पद्धतियां कम्प्यूटरों को ध्यान में रखकर ही विकसित की जा रही हैं।[3]

प्रलेखन-सेवा के समानान्तर सूचना-सेवा में भी कम्प्यूटर का सक्रिय योगदान सहायक है। सूचना की विषय-वस्तु के विश्लेषण, विषय-वस्तु की सुगम माध्यम द्वारा प्रस्तुति और आवश्यकतानुसार सूचना पुनर्प्राप्ति करने में कम्प्यूटर की कार्यकुशलता अप्रतिम सिद्ध हुई है। कम्प्यूटर से प्राप्त प्रलेखन और सूचना-सेवा का चरम रूप तो यह है कि कई बार दूरस्थ सूचनायें भी कम्प्यूटर द्वारा शीघ्रतापूर्वक प्राप्त हो जाती हैं, यहाँ तक कि चित्र-प्रतिलिपियाँ भी टेलेक्स द्वारा दूर-दराज से उपलब्ध हो जाती हैं।

कम्प्यूटर की सूचना-सेवा का ही वृहत्तर रूप सन्दर्भ-सेवा की सुविधा बनकर सामने आता है। कम्प्यूटर के सहारे अध्ययन और अनुसंधान के नव्यतम सन्दर्भों और तद्विषयी सूचनाओं को प्राप्त करना पुस्तकालय के उपभोक्ताओं के लिए अब चुटकियों का खेल रह गया है। कम्प्यूटर ने अपने आपको इलेक्ट्रॉनिक पत्रिका के रूप में बदल दिया है, जिसमें नयी-से-नयी सूचनायें और सन्दर्भ सामग्रियाँ सुगमतापूर्वक प्राप्त की जाती हैं। सन्दर्भ की तलाश में भटकने वाले अनुसंधाताओं के लिए विज्ञान का यह एक ऐसा वरदान है, जो सन्दर्भ सूचनाओं के संग्रहण और प्रस्तावन के तमाम परम्परागत साधनों से अधिक उपयोगी और शीघ्रकामी है। सन्दर्भ-सेवा जिस नयेपन, शीघ्रता और तत्परता की अपेक्षा रखती है, उसकी तमाम शर्तों को कम्प्यूटर पूरा करता है।

पुस्तकालय में कम्प्यूटर की आवश्यकता और उपयोग के विविध आयामों की परिक्रमा से स्पष्ट है कि विज्ञान की इस नव्यतम उपलब्धि ने पुस्तकालय के वर्तमान ढाँचे को एक नया आकार दिया है और यह तनिक भी अस्वाभाविक न होगा कि कम्प्यूटरों के इतने व्यापक और महत्त्वपूर्ण उपयोग के सन्दर्भ में अगली शताब्दी के पुस्तकालय पूरी तरह कम्प्यूटरीकृत हो जाय। भविष्य के पुस्तकालय कितने वैज्ञानिक और आधुनिक होंगे, इस बारे में अभी केवल कल्पनायें नहीं की जा सकतीं। जितनी तेजी के साथ पुस्तकालयों का विस्तार हो रहा है उतनी ही तेजी से पुस्तकालय की तकनीकी संरचना में भी बदलाव आयेगा। टी० के० एस० आयंगर ने कल्पना की है कि आने वाले पचीस वर्षों में सूचना स्थानान्तरण प्रक्रिया का यह नयापन न केवल पुस्तकों, अभिलेखों और सूचनाओं के संग्रहण और उपयोग को प्रभावित करेगा, अपितु प्रकाशन की प्रक्रियाओं, विश्लेषण और पुस्तकालय तथा सूचना-विज्ञान सम्बन्धी मूलभूत अनुसंधान

को भी प्रभावित करेगा।[४] पुस्तकालय सेवा का परम्परागत ढाँचा पूरी तरह अप्रासंगिक हो जायेगा और कम्प्यूटरों के सहारे पुस्तकालय की नयी संरचना साकार होगी। कम्प्यूटरीकृत पुस्तकालय की संकल्पना पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों से लेकर उपभोक्ताओं तक की बेहतर सुविधा देने में समर्थ होगी। कम्प्यूटर की प्रक्रिया पुस्तकालय में सहयोग और तकनीकी गति को प्रोत्साहित करेगी, इस नाते यह सर्वथा आवश्यक होगा कि पूरी सावधानी से यान्त्रिक पुस्तकालय की व्यवस्था संयोजित की जाय। जे० इ० रावले के अनुसार कम्प्यूटरीकरण पुस्तकालय और सूचना-सेवा की आधारभूत प्रक्रिया को प्रभावित करेगा और सूचीकरण, परिग्रहण और निर्गम-आगम सेवाओं में आये बदलाव के कारण पुस्तकालय-सेवा का चरित्र ही बदल जायेगा।[५] कम्प्यूटरों के उपयोग के साथ ही पुस्तकालय में कार्य-प्रणाली का नवीकरण होगा और ऐसे नये पुस्तकालयों के लिए कई नये उपकरण भी अपेक्षित होंगे। भारत जैसे अल्प-विकसित देश में स्थानीय भाषाओं, विशेषतः हिन्दी की तकनीकी सम्भावनायें भी भविष्य के पुस्तकालयों में अपेक्षित होंगी। अब हिन्दी कम्प्यूटर का आविष्कार हो गया है, जो पुस्तकालय के उपभोक्ताओं और कर्मचारियों की अपनी भाषा में काम करने में सक्षम हो। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि मानवीय परिवेश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप पुस्तकालयों को भी अधिकाधिक मशीनीकृत किया जाय। भविष्य के कम्प्यूटरीकृत पुस्तकालय इसी दिशा में सक्रिय होंगे। कल के पुस्तकालयों में परम्परागत सेवाओं से भी अधिक कम्प्यूटर-सेवा की उपादेयता होगी। भविष्य के पुस्तकालय कम्प्यूटर को तेज चाल और पैनी प्रक्रिया द्वारा ही संचालित होंगे।

सन्दर्भ-संकेत।

1. Roger Hunt, Jon Shelley; Computer and Common Sense.
2. Eric J. Hunter : Computerized Catalogue p. 178.
३. डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान, पृष्ठ १३०।
4. T. K. S. Iyengar : New Dimensions in Library Science, p. 205.
5. J. E. Rowley : Computers for Libraries, p. 8.



सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

(क) हिन्दी पुस्तकें

ए० टी० मूर्ति : प्रलेखकीय ग्रन्थ वर्णना, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९८१।

डॉ० एस० आर० रंगनाथन, मुरारिलाल नागर : अनुवर्ग सूची कल्प, भारतीय ग्रन्थालय संघ, दिल्ली, १९५३।

डॉ० एस० आर० रंगनाथन, मुरारिलाल नागर : ग्रन्थालय-प्रक्रिया, भारतीय ग्रन्थालय संघ, दिल्ली, १९५१।

एस० पी० सूद, डी० जोतवाणी : प्रलेखन, मेट्रोपोलिटन बुक कम्पनी प्रा० लि०, दिल्ली, १९८१।

डॉ० कुमुद कुमार कमल : प्रलेखन एवं सूचना-विज्ञान, जानकी प्रकाशन, पटना, १९८४।

गिरजा कुमार, कृष्ण कुमार : ग्रन्थ-विज्ञान, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८३।

गिरजा कुमार, कृष्ण कुमार : सूचीकरण के सिद्धान्त, वाणी एजुकेशनल बुक्स, दिल्ली, १९८४।

डॉ० गोपालदत्त भार्गव : ग्रन्थालय वर्गीकरण, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ-अकादमी, भोपाल, १९७९।

डॉ० चन्द्रकान्त शर्मा : पुस्तक-चयन एवं रचना, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९७५।

डॉ० चन्द्रकान्त शर्मा : ग्रन्थालय में सन्दर्भ-सेवा, मेट्रोपोलिटन कम्पनी प्रा० लि०, दिल्ली, १९७८।

चन्द्रभान भारद्वाज : वर्गीकरण : सिद्धान्त और व्यवहार, प्रिंटवेल पब्लिशर्स, जयपुर, १९८४।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तक-चयन और सन्दर्भ-सेवा, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९७६।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तक-सूचीकरण कला, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १९६४।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तकालय-प्रबन्ध, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १९६३।

द्वाकराप्रसाद शास्त्री : पुस्तकालय में सन्दर्भ-सेवा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १९६०।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तक वर्गीकरण कला, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १९६२।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तकालय-विज्ञान परिचय, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९८४।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : पुस्तकालय संगठन तथा संचालन, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १९६३।

द्वारकाप्रसाद शास्त्री : वांग्मय-सूची और प्रलेखन, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९८३।

ना० द० बगरी : पुस्तकालय पद्धति, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७३।

डॉ० पाण्डेय सूर्यकान्त शर्मा : पुस्तक-सूचीकरण सिद्धान्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६१।

डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय-विज्ञान कोश, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना, १९६१।

डॉ० प्रभुनारायण गौड़ : पुस्तकालय-विज्ञान : पारिभाषिक शब्दावली, लाइब्रेरी पब्लिकेशन, पटना, १९८२।

भास्करनाथ तिवारी : ग्रन्थालय वर्गीकरण के मूल सिद्धान्त, साहित्य निकेतन, बरेली, १९५७।

विन्देश्वरीप्रसाद मिश्र : सूचीकरण : सिद्धान्त एवं अभ्यास, अमर प्रकाशन, पटना, १९७२।

बी० एन० शर्मा : पुस्तकालय : सिद्धान्त और व्यवहार, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, १९७७।

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह : पुस्तकालय संगठन और प्रशासन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, १९७३।

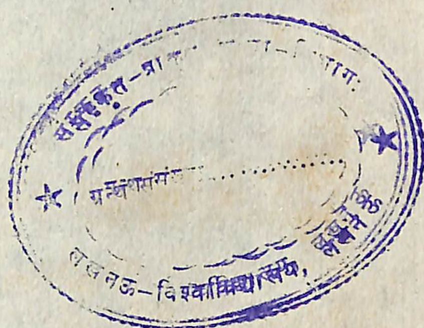
डॉ० शमशेर गुप्ता : सन्दर्भ ग्रन्थ-स्वरूप, परम्परा और इतिहास, इतिहास शोध-संस्थान, दिल्ली, १९८३।

डॉ० शत्रुघ्नमणि त्रिपाठी : आधुनिक ग्रन्थालय व्यवस्था एवं संचालन के मूल तत्व, अजन्ता पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८३।

डॉ० शत्रुघ्नमणि त्रिपाठी : आधुनिक प्रसूचीकरण-सिद्धान्त एवं प्रयोग, श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, १९७८।

श्यामनाथ श्रीवास्तव, सुभाषचन्द्र वर्मा : पुस्तकालय संगठन एवं प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९८४।

श्यामसुन्दर अग्रवाल : ग्रन्थालय संचालन तथा प्रशासन, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, १९७६।


लखनऊ-विश्वविद्यालय,